# दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

# DIRECTORATE OF DISTANCE EDUCATION

जम्मू विश्वविद्यालय

# UNIVERSITY OF JAMMU

जम्मू

**JAMMU**

# पाठ्य सामग्री

## STUDY MATERIAL

# एम.ए.हिन्दी

## M.A. HINDI

**SESSION - 2021 ONWARDS**

**पाठ्यक्रम संख्या 202** | **पाठ्यक्रम शीर्षक : हिन्दी उपन्यास**

**COURSE CODE : 202** | **TITLE OF THE COURSE : HINDI UPNAYAS**

**सत्र-f}तीय** | **आलेख संख्या : 1 से 16 तक**

**SEMESTER - II** | **LESSON NO. : 1–16**

**Dr. Anju Thappa**

**COURSE CO-ORDINATOR, P.G. HINDI**

http:/www.distanceeducationju.in

**इस पाठ्य सामग्री का रचना स्वत्व/ प्रकाशनाधिकार दूरस्थ शिक्षा निदेशालय, जम्मू विश्वविद्यालय जम्मू के पास सुरक्षित है।**

Printed and Published on behalf of the Directorate of Distance Education, University of Jammu, Jammu by the Director, DDE, University of Jammu, Jammu

## M.A. HINDI (C.No. HIN-202)

### COURSE CONTRIBUTORS :


* **Prof. Neelam Saraf** — Lesson Nos. 1 to 4
HOD
Department of Hindi,
University of Jammu

* **Dr. Anju Thappa** — Lesson Nos. 5 to 8
Associate Professor,
Department of Hindi, — Lesson Nos. 13 to 14
Directorate of Distance Education,
University of Jammu.

* **Dr. Vandana Sharma**
Assistant Professor,
Department of Hindi,
Central University of Jammu.

* **Ms. Pooja Sharma** — Lesson Nos. 15 to 16
Department of Hindi,
Ph. D Scholar
SET


### REVIEW, PROOF READING AND CONTENT EDITING, :


• **DR. ANJU THAPPA**
Associate Professor of Hindi , DDE



© Directorate of Distance Education, University of Jammu, Jammu 2021

- All rights reserved. No part of this work may be reproduced in any form, by mimeograph or any other means, without permission in writing from the DDE, University of Jammu.
- The Script writer shall be responsible for the lesson/script submitted to the DDE and any plagiarism shall be his/her entire responsibility.



Printed by : Chenab Offset Printer/2021/500

# M.A. HINDI
# एम.ए. हिन्दी

## CONTENTS

## विषय–सूची


| Lesson No. आलेख सं० | Title आलेख | Page No. पृष्ठ संख्या |
|---|---|---|
| **इकाई – I** | | |
| **1.** | **मैला आँचल की समस्याएँ** | **1-20** |
| **2.** | **मैला आँचल की लोक संस्कृति** | **21-35** |
| **3.** | **आँचलिक उपन्यास परम्परा और मैला आँचल** | **36-47** |
| **4.** | **मैला आँचल के पात्र** | **48-115** |
| **इकाई – II** | | |
| **5.** | **त्यागपत्र की समस्याएँ** | **116-125** |
| **6.** | **त्यागपत्र में नारी मनोविज्ञान** | **126-132** |
| **7.** | **मनोविश्लेषणवादी उपन्यास और त्यागपत्र** | **133-147** |
| **8.** | **त्यागपत्र के पात्र** | **148-159** |
| **इकाई – III** | | |
| **9.** | **'ग्लोबल गाँव के देवता' की समस्याएँ** | **160-168** |
| **10.** | **'ग्लोबल गाँव के देवता' में स्त्री विमर्श** | **169-181** |
| **11.** | **'ग्लोबल गाँव के देवता' में आदिवासी विमर्श** | **182-196** |
| **12.** | **'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास के प्रमुख चरित्र** | **197-208** |

**इकाई – IV**


| | | |
|---|---|---|
| **13.** | किन्नर : अर्थ एवं इतिहास | **209-216** |
| **14.** | उपन्यास पोस्ट बॉक्स नं. 203 'नाला सोपारा' में अभिव्यक्त समस्याएँ | **217-234** |
| **15.** | 'नाला सोपारा' का कथ्य और शिल्प | **235-245** |
| **16.** | 'नाला सोपारा' के चरित्र | **246-258** |

# मैला आँचल की समस्याएँ

**1.0 रूपरेखा**

**1.1 उद्देश्य**

**1.2 प्रस्तावना**

**1.3 मैला आँचल की समस्याएँ**

**1.3.1 अँचल का भौगोलिक परिवेश**

**1.3.2 मैला आँचल की सामाजिक समस्याएँ**

**1.3.3 धार्मिक समस्याएँ**

**1.3.4 राजनीतिक समस्याएँ**

**1.4 सारांश**

**1.5 कठिन शब्द**

**1.6 अभ्यासार्थ प्रश्न**

**1.7 पठनीय पुस्तकें**

## 1.1 उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरान्त आप –

- आँचलिक उपन्यासों के बारे में जानेंगे।
- मैला आँचल उपन्यास आँचलिक उपन्यासों में विशेष स्थान क्यों रखता है, इससे अवगत होंगे।
- इस समस्त उपन्यास के माध्यम से लेखक ने समस्त ग्रामीण जीवन की समस्याओं को उकेरा है, जानेंगे।

## 1.2 प्रस्तावना

आँचलिक उपन्यासों की कथावस्तु के निर्माण का धरातल व्यापक, बहुआयामी और वैविध्यपूर्ण होता है। उनमें समसामयिक राजनीति से लेकर सामाजिक–आर्थिक समस्याएँ, मानवीय रिश्ते तथा धार्मिक–नैतिक समस्या जैसी व्यापक मानवीय समस्याएँ होती हैं। आँचलिक उपन्यास उस सीमित क्षेत्र में रहने वाले लोगों की ही आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक तथा राजनीतिक आदि समस्याओं के आधार पर निर्मित होता है । ये आँचलिक समस्याएं इतनी प्रबल और प्रभावशाली होती हैं कि इनका तात्कालिक प्रभाव अँचलवासियों के आर्थिक, सामाजिक जीवन पर पड़ता है और दूरगामी प्रभाव उनकी मानसिकता पर। उस क्षेत्र के सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और नैतिक मूल्यों तथा चेतना के निर्माण में इन समस्याओं की बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका होती है यह कहा जा सकता है कि किसी अंचल विशेष को उसके आस–पास के क्षेत्रों से भिन्न तथा विशिष्ट इकाई बनाने में उस अँचल की अपनी विशिष्ट समस्याओं की ही सर्वाधिक महत्ता होती है।

## 1.3 मैला आँचल की समस्याएँ

रेणु का 'मैला आँचल' तो एक तरह से संपूर्ण आँचलिक–समस्याओं का जीता–जागता उदाहरण है। आर्थिक, सामाजिक, भौगोलिक और राजनीतिक हर तरह की समस्याओं से ग्रस्त बिहार के पूर्णिया जिले का 'मेरीगंज' गांव इस अँचल का प्रतीक है।

### 1.3.1 अँचल का भौगोलिक परिवेश

मेरीगंज का परिचय देते हुए रेणु लिखते हैं– "मेरीगंज! रौहतट स्टेशन से सात कोस पूरब, बूढ़ी कोशी के किनारे–किनारे बहुत दूर तक ताड़ और खजूर के पेड़ों से भरा हुआ जंगल तड़बन्ना के बाद ही एक बड़ा मैदान है, जो नेपाल की तराई से शुरू होकर गंगाजी के किनारे खत्म हुआ है। लाखों एकड़ ज़मीन। बंध्या धरती का विशाल अँचल। इसमें दूब भी नहीं पनपती है।" इस वर्णन से हमारी आँखों के सामने एक विशिष्ट आँचलिक भूखंड का चित्र घूम जाता है। मेरीगंज एक वज्र देहात है। यह बिहार प्रांत के पूर्णिया जिले का अत्यंत पिछड़ा हुआ अंचल (गांव) है। "पूर्णिया जिले में ऐसे बहुत से गांव और कस्बे हैं, जो आज भी अपने नाम पर नीलहे साहबों का बोझा ढो रहे हैं। वीरान जंगलों और मैदानों में नील कोठी के खंडहर राही, बटोहियों को आज भी नील युग की भूली हुई कहानियां याद दिला देती है।" इन्हीं खण्डहरों में घने जंगलों में गांव के लोग जड़ी–बूटी ढूंढते फिरते हैं। रौहतट स्टेशन पूर्णिया से बारह कोस दूर है मेरीगंज एक बड़ा गांव है। रेणु ने इसका परिचय इस प्रकार दिया है – "मेरीगंज एक बड़ा गांव है बारहो बरन के लोग रहते हैं। गाँव के पूरब में एक धारा है जिसे कमला नदी कहते हैं। बरसात में कमला भर जाती है, बाकी मौसम में बड़े–बड़े गड्ढों में पानी जमा रहता है। मछलियों और कमल के फूलों से भरे हुए गड्ढे।"

इस प्रकार मेरीगंज एक पिछड़ा हुआ गांव है, जिसकी ज्यादातर धरती लगभग बंध्या है। यह घोर देहात है। मेरीगंज जिला पूर्णिया का पूर्वी अंचल है, जहाँ मलेरिया, कालाज़ार रोग हर साल आते हैं जिसके कारण अनेक लोग

मर जाते हैं। रेणु ने इस अँचल का सजीव एवं यथार्थ चित्रण किया है इस प्रकार मेरीगंज गांव का चित्र पाठकों के सामने साकार हो उठा है।

उपन्यास का उद्देश्य व्यक्ति की कथा नहीं है, रेणु का मकसद तो ग्राम या अंचल की कथा कहना है। अँचल के प्राकृतिक परिवेश के चित्रण के बिना अंचल का सजीव चित्रण संभव नहीं हो सकता इसीलिए रेणु ने 'मैला आँचल' में मेरीगंज के प्राकृतिक परिवेश का जीता जागता चित्र प्रस्तुत किया है। रेणु की वर्णन शैली संपूर्ण परिवेश को जीवित बना देती है प्रकृति के अंतर्गत वे भौगोलिक दृश्यों के साथ मनुष्य और पशु–पक्षी सबको शामिल देखते हैं। "खूंटे में बंधे हुए बैलों ने चौकन्ना होकर कान खड़े किये। गांव के बाहर चरती हुई बकरियाँ दौड़ती मिमियाती हुई गांव में भागी आ रही हैं। कुत्ते भौंकने लगे।"

### 1.3.2 मैला आंचल की सामाजिक समस्याएँ

'मैला आँचल' उपन्यास में मेरीगंज अँचल की समग्र विशेषताओं के साथ वहाँ के ग्राम जीवन, निवासियों के रहन–सहन, उनके आपसी संबंध स्थितियों का सहज, वास्तविक तथा यथार्थ चित्रण हुआ है। गांव में तीन प्रमुख दल हैं। कायस्थ, राजपूत और यादव। ब्राह्मण अभी भी केन्द्रीय शक्ति हैं। गांव के अन्य जाति के लोग भी सुविधानुसार इन्हीं तीनों दलों में बंटे हुए हैं।

मेरीगंज का अधिकांश समाज मूर्ख और अज्ञानी है। उसकी मानसिकता अविकसित है, बौद्धिक चेतना पिछड़ी है। मलेरिया सेंटर का निर्माण करने के लिए जब डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के लोग जमीन की पैमाइश करने आते हैं तब गांव वाले समझते हैं कि मिलटरी आई है स्वराजियों को पकड़कर ले जाने को और वे सब स्वराजी बालदेव को बांध कर ले जाते हैं। 1942 के आन्दोलन के समय गोरी मिलटरी ने गांव–गांव जाकर स्वराजियों को पकड़ने के लिए उत्पात मचाया था, अब चार साल बाद हमारे गांव की बारी आई है। यह मेरीगंज के समाज की अज्ञानता, अशिक्षा का परिणाम है। "सारे मेरीगंज में दस आदमी पढ़े–लिखे हैं। पढ़े–लिखे का मतलब हुआ अपना दस्तखत करने से लेकर तहसीलदारी करने तक की पढ़ाई। नये पढ़ने वालों की संख्या है पन्द्रह।" गांव के लोग बड़े अंधविश्वासी हैं। भूत–प्रेत, जादू–टोना पर इनका विश्वास है। आंचलिक उपन्यास में स्थानीय रंग को प्रस्तुत करने के लिए किसी अंचल के रहन–सहन व आचार–विचार का वस्तुनिष्ठ चित्रण विस्तार से किया जाता है। मैला आंचल के लोगों के आचार–विचार में नैतिकता, अच्छाई के साथ अनैतिकता, कुरूपता तथा बुराईयों आदि का प्रधान्य है। गांव वासियों के जीवन का रेणु ने उसकी (मेरीगंज की) समस्त दुर्बलताओं और सबलताओं के साथ चित्रण किया है। मैला आँचल में पिछड़े हुए गांव व पिछड़े हुए वर्ग–विशेष के लोक–जीवन का यथातथ्य चित्रण हुआ है। मैला आँचल की लक्ष्मी से बलदेव के विषय में महंत साहब कहते थे– "शुद्ध विचार का आदमी है। संस्कार बहुत अच्छा है।" लक्ष्मी कहती है, "कालीचरण असल नियमी आदमी है। पर उसका स्वभाव जरा तीव्र है। लेकिन दुनिया के लोग अब इतने कुटिल हो गए हैं कि सीधे लोगों की गुज़र नहीं। फिर सुभाव में जरा कड़ापन तो सुपुरुष का लच्छन है।" अनैतिक व्यवहार के संदर्भ भी 'मैला आंचल' में बड़ी खूबी व स्वभाविकता से चित्रित हुए हैं मानसिक दुर्बलताओं आदि का यहाँ यथार्थ चित्रण हुआ है। फुलिया की रंगरलियाँ एवं

अनैतिक जीवन के चित्रण, रमजूदास की स्त्री के कारनामे, अंध सेवादास की करतूत, मठ–जैसे पवित्र स्थल पर महंत रामदास व साधू–राक्षस नागबाबा और जोतखी जी की पत्नियों का व्यवहार आदि – ये सब नैतिक ढीलेपन तथा लोक–जीवन के स्थानीय आचार–विचारों के नहीं हैं। इसका मतलब यह नहीं कि मैला आंचल में सीधे–सादे लोग व आचार–विचार नहीं हैं मेरीगंज के स्थानीय जीवन की ये विशेषताएँ हैं। दूराग्रहपूर्ण नैतिकता कहीं नहीं थोपी गई है। लोक जीवन का खुला चित्रण हुआ है।

**रीति–रिवाज–** लेखक ने स्थानीय जीवन के रीति–रिवाजों का भी चित्रण किया है। मैला आँचल में अँचल–विशेष के समग्र चित्रण को प्रस्तुत करने के लिए मेरीगंज के जन–जीवन के रीति–रिवाजों का चित्रण बड़ा ही स्वाभाविक एवं वस्तुनिष्ठ हुआ है। ये रीति–रिवाज किसी अंचल–विशेष के विशिष्ट सामाजिक जन–जीवन की गतिशीलता के परिचायक होते हैं, सामूहिक जीवन की पहचान होते हैं। 'मैला आँचल' में महंत द्वारा दिये गए भंडारे के समय– "सबसे पहले कालीथान में पूड़ी चढ़ाई जाती है, इसके बाद कोठी के जंगल की ओर दो पूड़ियाँ फेंक दी जाती हैं– जंगल के देव–देवी और भूतपिसाच के लिये। इसके बाद साधु और बांमन भोजन।" यह अंचल विशेष में दिये जाने वाले भंडारे सामूहिक भोज के अवसर पर प्रचलित सामाजिक रिवाज का उदाहरण है। इसके साथ अनेक रीति–रिवाजों का उल्लेख मैला आंचल में मिला है– जैसे–गौना, चुमौना, तिलक पर दान देने की रस्म, शादी–ब्याह पर सोहर गाने की रस्म, आदि का मैला आंचल में बड़ी ही स्वाभाविकता के साथ भरपूर चित्रण मिलता है। रेणु में सत्य के प्रति आग्रह है। गाँवों की समस्याओं के प्रति वे सजग हैं।

**शिक्षा की स्थिति–** मेरीगंज अँचल–विशेष के जन–जीवन में शिक्षा के प्रचार–प्रसार का अभाव है। रेणु लिखते हैं– "सारे मेरीगंज में दस आदमी पढ़े–लिखे हैं– पढ़े लिखे का मतलब हुआ अपना दस्तखत करने से लेकर तहसीलदारी करने तक की पढ़ाई। नए पढ़ने वालों की संख्या पंद्रह।" अशिक्षित होते हुए भी मेरीगंज के लोग सांसारिक बुद्धि वाले, अनुभवी, स्वार्थी और चालाक भी हैं। डॉ० प्रशान्त ममता को पत्र में लिखता है। "गांव के लोग बड़े सीधे हैं। जहाँ तक सांसारिक बुद्धि का सवाल है, वे हमारे तुम्हारे जैसे लोगों को दिन मे पांच बार ठग लेंगे। और तारीफ यह कि तुम ठगी जाकर भी उनकी सरलता पर मुग्ध होने के लिए मज़बूर हो जाओगी।" मेरीगंज के लोग अनपढ़ अज्ञानी होते हुए भी सांसारिक बुद्धि से होशियार एवं चालाक हैं। मैला आंचल के पात्रों में ममता एवं कमली पढ़ी–लिखी स्त्रियाँ हैं।

**आर्थिक दशा–** मेरीगंज की आर्थिक दशा बड़ी शोचनीय है। गांव की लगभग सारी जमीन, तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद, रामकिरपाल सिंह और खेलावन यादव के पास हैं। बाकी गांव वाले इन तीनों के पास मानो मजदूर की भांति हैं। संथालों से झगड़े के बाद तो सारे गांव की जमीन के इकलौते मालिक विश्वनाथ प्रसाद तहसीलदार ही हो जाते हैं। डॉ० प्रशान्त सेवा भाव से मेरीगंज आता है। गांव वालों की चिकित्सा के साथ–साथ वह मलेरिया रोग पर शोध भी करता है। वह देखता है कि यहाँ सात महीने के बच्चे को बथुआ और पाठ के साग पर पाला जाता है। "यहाँ के लोग सुबह को बासी भात खाकर, पाट धोने के लिए गंदे गड्ढों में घुसते हैं और करीब सात घंटे तक पानी में रहते

हैं।" मज़दूरी करके पेट भरने वाले मज़दूरों की स्थिति तो और भी दयनीय है। "यहाँ के मज़दूरों को सवा रूपये रोज़ मज़दूरी मिलती है, लेकिन एक आदमी का भी पेट नहीं भरता । कपड़े के बिना सारे गांव के लोग अर्धनग्न हैं।" इस प्रकार मेरीगंज के तीन चार लोग ही धनवान हैं और पेट भर खाते हैं। बाकी सब गरीब एवं पिछड़ा हुआ अंचल है।

**स्त्री–पुरुष सम्बन्ध–** स्त्री पुरुष सम्बन्धों के सन्दर्भ में लेखक ने सामाजिक प्रतिष्ठा की दृष्टि से अनैतिक, रुग्ण और गर्हित प्रवृत्ति को ही अधिक अभिव्यक्ति दी है। गाँव के स्त्री–पुरुषों के गलत शारीरिक सम्बन्धों की उपकथाएँ 'मैला आँचल' शीर्षक की सार्थकता को स्पष्ट करती हैं। इन सम्बन्धों को लेकर यह नहीं कहा जा सकता कि ये एक विशिष्ट वर्ग में ही व्यवहृत होते हैं। सभी वर्गों में इस प्रकार के अनैतिक सम्बन्धों की स्थिति है– यहाँ तक कि डॉ० प्रशान्त भी इससे अछूते नहीं रहते। तहसीलदार की बेटी कमला उनके प्रति आकर्षित होती है। यह आकर्षण परस्पर आकर्षण में बदलता है विवाह से पहले ही कमला डॉ० प्रशान्त का गर्भ धारण करती है और जब घर में बात खुलती है और शिशु का जन्म होने वाला होता है, उस समय डॉ० प्रशान्त के नायकत्व की प्रतिष्ठा के लिए लेखक ने यह योजना अवश्य प्रस्तुत की है कि जेल से छूटने के पश्चात् कमला को अपनी पत्नी और उसके शिशु को अपना शिशु स्वीकार कर लेते हैं। इस स्वीकारोक्ति में स्त्री–पुरुष का यह सम्बन्ध विशेष रूप से गरिमायुक्त हो जाता है। अन्यथा अन्य स्त्री–पुरुष सम्बन्धों में अशिक्षा, कुंठा, गलत संस्कारों और रुग्ण परिवेश की छाया ही अधिक परिलक्षित होती है। मठ की दासिन लछमी को सेवादास, रामदास, नागा बाबा सभी भोगना चाहते हैं लेकिन वह कांग्रेसी कार्यकर्त्ता बालदेव से अपने सम्बन्ध अनुभव करती है। फुलिया खलासी से विवाह रचाती है और 'पैटमान' तथा 'सहदेव मिसिर' से अनैतिक सम्बन्ध रखती है। यही स्थिति रामपियारिया और रधिया की है। चरखा संघ की मंगल देवी के बारे में अनेक किस्से प्रचलित हैं। नैतिक दृष्टि से अवांछित इन समस्त सम्बन्धों को निरूपित करने के पीछे लेख का उद्देश्य मेरीगंज के अंचल में व्याप्त रुग्णता को उभार–कर प्रस्तुत कर देना है। इस योजना के द्वारा लेखक ने जैसे यह कहना चाहा है कि अशिक्षा, कुसंस्कार और असंस्कृत परिवेश में इस सबका होना बहुत स्वाभाविक है। लेकिन स्वाभाविक होते हुए भी यह गलत है। डॉ० प्रशान्त एक सुसंस्कृत व्यक्ति है। यद्यपि यह गलती उससे भी होती है लेकिन अपने शिष्ट और परिष्कृत संस्कारों के माध्यम से वह अपनी इस गलती को सुधार लेता है। तब उसकी गलती, गलती न रहकर उसके लिए गरिमा प्राप्ति का साधन बन जाती है। सैक्स की प्रवृत्ति–स्त्री–पुरुष के परस्पर आकर्षण की यह भावना बहुत नैसर्गिक है, यह ठीक है। लेकिन जब यह सस्ती भूमिका पर व्यवहृत होती है तब उसकी उदात्तता समाप्त हो जाती है और जीवन गर्हित हो जाती है। स्त्री–पुरुष सम्बन्ध उच्चतर और स्वस्थ भूमिका पर प्रतिष्ठित होने पर ही आभामय बन पाते हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि अविकसित अँचलों में ही स्त्री– पुरुषों के बीच में रुग्ण सम्बन्ध बनते विकसित होते हैं। इन सम्बन्धों के पीछे यदि लेखक ने आर्थिक कारणों की हल्की– सी झलक दी है, फिर भी मूलतः ये सम्बन्ध व्यक्तियों की रुग्ण प्रवृत्तियों से जुड़े हुए ही अधिक प्रतीत होते हैं। नगरीय जीवन भी इससे अछूता नहीं है। अमलेश शहरी पात्र है। वह शिक्षित है। लेकिन उसकी स्थिति यह है कि पहले वह नौकरानियों के पीछे पड़ा रहता था अब अपनी चचेरी बहन बीना के साथ उसके सम्बन्ध बनते हैं। रेणु ने वस्तुतः स्त्री–पुरुष सम्बन्धों की इस जटिलता को अधिक विस्तार देकर, इस रुग्ण प्रवृति के प्रति अपनी चिन्ता प्रकट करनी चाही है। उन्होंने इन सम्बन्धों के नियोजन में कहीं रस नहीं लिया है। इन सन्दर्भों में

लेखक की सफल तटस्थता ही लेखक की प्रवृत्ति और उसके आशय को भली–भाँति स्पष्ट कर देती है। कुछ समीक्षकों ने रेणु की इसलिए आलोचना की है कि स्त्री–पुरुष सम्बन्धों को लेकर उन्होंने एकांगी दृष्टि ही अपनाई है और उसके स्वस्थ पक्ष को उपेक्षित कर दिया है। इसका स्पष्टीकरण इसी प्रकार दिया जा सकता है कि रेणु अपने प्रतिपाद्य के प्रति संकल्पबद्ध हैं। इस कृति में उनका आशय "मैला आँचल" को दर्शाना रहा है। इसीलिए स्त्री–पुरुष सम्बन्धों के हीन पक्ष को प्रस्तुत करने में भी उन्होंने विशेष परिश्रम किया है।

### 1.3.3 धार्मिक समस्याएँ

#### धार्मिक पाखंड एवं आडम्बर

अविकसित समाज में धर्म के नाम पर पाखंड, आडम्बर, अंधविश्वास और व्यभिचार का प्रचार और प्रसार बहुत पुरानी परम्परा है। धर्म, चाहे वह किसी भी जाति और देश का हो, मूलतः मानवीयता के उदात्त आदर्शों का प्रवक्ता होता है लेकिन जब धर्म कुछ निठल्ले, स्वार्थी और हीन–प्रवृत्ति वाले व्यक्तियों द्वारा एक व्यवसाय के रूप में अपना लिया जाता है तब उसकी उदात्त भावना का तिरोहण हो जाता है और उसकी आड़ में अनेक विसंगतियाँ पनपने लगती हैं। भारतीय समाज में बहुत पहले से धर्म का इसी प्रकार का व्यवसाय होता आया है। यह धार्मिक पाखंड अपने सर्वाधिक ग्रहित रूप में ग्रामीण अंचलों में परिव्याप्त हुआ। परिलक्षित होता है 'मैला आँचल' में महन्तों, सन्तों और ज्योतिषयों के चरित्र उद्‌घाटन द्वारा लेखक ने धर्म के इसी ग्रहित स्वरूप का परिचय देना चाहा है। महंत सेवादास, रामदास, लरसिंघदास, बूढ़े जोतिखी (ज्योतिषी) नागा बाबा – ये सभी चरित्र धार्मिक पाखंड के नामांकित नमूने हैं। महंत सेवादास ने लक्ष्मी कोठारिन को अपने मठ में दासी के आवरण में रखैल बनाकर रखा है। "महंत जब लक्ष्मी को मठ पर लाया था तो वह एकदम अबोध थी, एकदम नादान एक ही कपड़ा पहनती थी। कहाँ वह बच्ची और कहाँ पचास बरस का बूढ़ा गिद्ध। रोज रात में लक्ष्मी रोती थी– ऐसा रोती कि जिसे सुनकर पत्थर भी पिघल जाए।" सेवादास की भाँति ही रामदास भी व्यभिचारी ही है। इसी लक्ष्मी को लेकर सेवादास की बसुमतिया मठ के महंत के साथ कानूनी लड़ाई हुई। इसमें सेवादास विजयी हुआ और लक्ष्मी उसको मिल गई। सेवादास के वकील ने उसको समझाकर कहा था कि 'इस लड़की को पढ़ा–लिखाकर इसकी शादी करवा दीजिएगा और महंत ने उसे विश्वास दिलाया था कि लक्ष्मी हमारी बेटी की तरह रहेगी।' पर मठ पर लाते ही किशोरी लक्ष्मी को उसने अपनी दासी बना लिया। इतना ही नहीं, इस धूर्त और स्वार्थ–लोलुप महंत के पाखंड की चरम परिणति इस बात को लेकर है कि एक ब्रह्मचारी का धर्म भ्रष्ट करने का पाप उसके माथे पर है।

महंत सेवादास का सेवक रामदास भी अपने स्वामी से कम पाखंडी नहीं है। सेवादास की मृत्यु के पश्चात् मेरीगंज मठ की महंती उसे मिलती है। वह सेवादास का एकमात्र चेला है। रामदास के लिए भी महंती प्राप्त करना ध र्मप्राण और लोक–सेवा में रत जीवन व्यतीत करना नहीं है बल्कि सुख–सुविधा और विलास को भोगना है। लक्ष्मी को भोगने की इच्छा उसके मन में भी बलवती होने लगती है, "वह लक्ष्मी को अपने निकट बुलाने लगता है– लक्ष्मी जरा इधर आना तो।" अपने इस कुकर्म में वह सफल नहीं हो पाता, यह बात दूसरी है। लेकिन लक्ष्मी को भोगने और भ्रष्ट

करने का उसका यह प्रयास हमारे मठों–मन्दिरों में व्याप्त पाखंड और व्यभिचार को अभिव्यक्त करने में पर्याप्त सक्षम है। रामदास के प्रति लक्ष्मी का व्यवहार उसके लिए चेतावनी है। वह जानता है कि वह नाम का महंत है। ".....  ..... वह समझ गया है कि यदि इज्जत के साथ बैठकर दूध–मलाई भोग करना हो तो लक्ष्मी को जरा भी अप्रसन्न नहीं किया जाये। .....यदि एक दासिन रखने का हुकुम लक्ष्मी दे दे तो.....।" रामदास की इस प्रवृत्ति को अभिव्यक्ति देकर लेखक ने मठों–मन्दिरों में प्रतिष्ठित मोटे पेट वाले महंतों–पुजारियों में व्याप्त व्यभिचार की जैसे पोल खोलकर रख दी है।

इसी सन्दर्भ में एक और चरित्र की निर्मिति हुई है। यह चरित्र है लरसिंघदास। महंत सेवादास के निधन के बाद नये बनने वाले महंत (रामदास) को चादर–टीका देने के लिए आने वाले आचारणगुरू के आने की सूचना लेकर मेरीगंज में आता है तो मेरीगंज मठ पर केवल एक रात रहने के बाद उस पर महंती का मोह सवार होने लगता है। मेरीगंज मठ की सम्पत्ति विशाल है। "नौ सौ बीघे की काश्तकारी। कलमी आम का बाग। दस बीघे में केले की फसल। गायें, भैसे । और इन सबसे ऊपर लक्ष्मी दासिन।"

'कासी' से आए आचारजगुरु नागा बाबा है जो सभी मठों के नेता हैं। वे लक्ष्मी और रामदास से भद्दी–भद्दी गालियों के साथ बात करते हैं। नागा बाबा सबूत के अभाव में रामदास को महंती का टीका नहीं देना चाहते। लक्ष्मी क्योंकि सेवादास की रखैलिन थी, सो अब वह मठ में नहीं रह सकती। नागा बाबा के आदेशों के विरुद्ध कोई फरियाद नहीं हो सकती। फिर भी लक्ष्मी अपना दुखड़ा रोने के लिए गाँव के सम्भ्रान्त लोगों के पास जाती है। 'साधु–सती, बाबू–बबुआन तथा दास– सेवकान' से मठ का शामियाना भरा पड़ा है। आचारण गुरु का मुंशी एकरारनामा लिखता है जिसके अनुसार मेरीगंज मठ की महंती लरसिंघदास को दे दी जाती है। सब लोग उस पर हस्ताक्षर करने लगते हैं। लेकिन कागज का यह टुकड़ा जब हस्ताक्षर के लिए कालीचरन के पास आता है तो वह इस कागज़ पर लिखी दलील का विरोध करता है। वह ज़ोर देकर कहता है कि रामदास इस मठ का चेला है अतः महंती उसे ही मिलनी चाहिए। नागा बाबा उसे भी गाली देकर चुप कराने की कोशिश करते हैं। लेकिन कालीचरन मार–पीट पर उतर आता है। आचारजगुरु नागा बाबा का गाँजे का नशा उतर जाता है आचारजगुरु कालीचरण के निर्देशों के अनुसार रामदास को ही महंती का टीका देते हैं। इस सम्पूर्ण योजना के माध्यम से लेखक ने धार्मिक विश्वासों के खोखलेपन और धर्म तथा आस्था के उस पाखंड पर करारा व्यंग्य किया है जो तर्क और साहस के सामने अधिक समय तक खड़ा नहीं रह सकता।

अशिक्षितों और भोले–भाले ग्रामीणों के बीच इस पाखंड–प्रसार में ज्योतिषी कहलाने वाले लुटेरों का भी कम योग नहीं है। मेरीगंज में भी एक बूढ़े जोतखी जी हैं जो हमेशा भविष्य में किसी अहित की चिन्ता से व्यग्र रहते हैं। भविष्य की चिन्ता बतलाकर अपना उल्लू सीधा करना और ग्रामीणों में भय को बनाए रखना ही जैसे इनका कर्त्तव्य है इस वर्ग के लोगों की भविष्यवाणियों में कभी कोई आस्था रचनात्मकता का स्वर नहीं होता। उनमें हमेशा किसी न किसी प्रकार के अनिष्ट की ही आशंका होती है– 'कोई माने या न माने, हम कहते हैं कि एक दिन इस गाँव में गिद्ध–कौआ उड़ेगा लक्षण अच्छे नहीं हैं। गाँव का ग्रह बिगड़ा हुआ है।"

लेखक ने इन चरित्रों के माध्यम से यह बतलाना चाहा है कि हमारे समाज में एक वर्ग ऐसा है जो अपने स्वार्थ के लिए एक ओर समाज में होने वाली प्रत्येक प्रकार की प्रगति का विरोध करता है और दूसरी ओर धर्म के नाम पर अनेक प्रकार की विसंगतियों और पाखंडों को बढ़ावा देकर अधर्म फैलाता है और चारित्रिक पतन का कारण बनता है। ये सन्त और महन्त कहलाने वाले लोग वैयक्तिक कुंठाओं के शिकार होते हैं और भोली जनता का शोषण करके यह अपने लिए दूध–मलाई बटोर लेते हैं। सामाजिक हित से इनका कोई सरोकार नहीं होता लेकिन जन–सम्मत बनने और उनके बीच प्रतिष्ठित होने के लिए इन्हें त्याग और साधना का मुखौटा पहनना पड़ता है। अशिक्षित जनता इस मुखौटे में छिपे हुए इनके असली रूप को नहीं देख पाती और इसलिए पीढ़ी–दर–पीढ़ी उनका शोषण होता रहता है। परिणामस्वरूप नैतिक रूप से भ्रष्ट व्यवस्था की यह परम्परा चलती रहती है। लेखक ने बड़े सूक्ष्म संकेतों के माध्यम से यह निर्दिष्ट करना चाहा है कि धार्मिक पाखंड की इस प्रवृत्ति को जन–चेतना और शिक्षा के विकास द्वारा रोका जा सकता है।

**जातिगत वैमनस्य –**

'मैला आँचल' में ग्रामीण जीवन में व्याप्त जातिगत वैमनस्य का चित्रण भी हुआ है। मेरीगंज के लोग जातीय वर्गों में बंटे हुए हैं। राजपूतों और कायस्थों में पुश्तैनी मन–मुटाव और झगड़े होते आए हैं। ब्राह्मण इन दोनों के बीच दुश्मनी को बढ़ाने और स्वयं तीसरी शक्ति का कर्तव्य पूरा करते रहे हैं। मेरीगंज में हर जाति में हर स्तर पर जातिगत वैमनस्य है। कुछ दिनों से यादवों के दल ने भी जोर पकड़ा है। लेकिन जनेऊ लेने के बाद भी राजपूतों ने यदुवंशी क्षत्रिय को मान्यता नहीं दी, उल्टे वे समय–समय पर यदुवंशियों के क्षत्रियत्व को व्यंग्यविद्रूप के बाणों से उभारते रहे। ब्राह्मण टोली के पण्डित कायस्थों के खिलाफ हमेशा राजपूतों को चढ़ाते रहे हैं। कायस्थ टोली के लोगों से राजपूतों की अनबन हो जाने पर ब्राह्मण टोली के पण्डित उन्हें समझाते हैं– "जब–जब धर्म की हानि हुई है, राजपूतों ने ही उनकी रक्षा की है। घोर कलिकाल उपस्थित है राजपूत अपनी वीरता से धर्म को बचा लें। इस प्रकार अपने से समर्थ दो जातियों को परस्पर लड़ाकर ब्राह्मण बौद्धिक धूर्तता से अपनी जातीय सुरक्षा के प्रयत्न में लगे रहते हैं। जातीय स्तर पर गाँवों में स्वार्थपरता बढ़ती जा रही है। प्रत्येक जाति का सम्पन्न और समर्थ व्यक्ति अपने नेतृत्व को स्थापित करना चाहता है और साथ ही वह दूसरों के विकास में अवरोध भी उत्पन्न करता चलता है। जोतखी काका, खेलावन यादव, ठाकुर रामकिरपाल सिंह, विश्वनाथ प्रसाद मल्लिक मेरीगंज के जातीय नेता हैं। इन्होंने अपने स्वार्थ साधन के प्रयास में पूरे गाँव भर के जीवन में एक विशृंखलता उत्पन्न कर रखी है। इनके अतिरिक्त कांग्रेसी कार्यकर्त्ता बालदेव का चरित्र भी जातीय भावना से लबरेज है। वह सोचता है– "वह अब अपने गाँव में रहेगा। अपने समाज में, अपनी जाति में रहेगा। जाति बहुत बड़ी चीज है। .....जाति की बात ऐसी है कि अब सभी बड़े–बड़े लीडर अपनी–अपनी जाति की पार्टी में हैं।" जातीय भावना को प्रस्तुत करने में लेखक ने बड़ी कुशलता से काम लिया है। इस प्रस्तुतीकरण में जातीय जीवन के अनेक चित्र भिन्न–भिन्न स्तरों पर प्रकट हो गये हैं जिससे जीवन में विष बेलि की भाँति व्याप्त जातिगत दूषण और उसके शोषक परिणामों को स्पष्ट रूप से देखने में सुविधा होती है। गाँव में अस्पताल बनने की प्रसन्नता में महंत साहब भंडारा खोलते हैं। गाँव भर को दावत खिलाई जाएगी, लेकिन इस सामूहिक भोज को ब्राह्मण नकार देने की बात कहते

हैं। ब्राह्मणों ने कह दिया है कि यदि उनके लिए अलग प्रबन्ध न हुआ तो सरब संघटन में नही खाएँगे। उधर सिपैहिला टोली के लोगों से भी मीनमेख निकाल कर बखेड़ा करने की आशंका है। वे ग्वाले लोगों (यादव जाति) के साथ एक पंगत में नहीं खाएँगे। जातिगत ऊँच–नीच की यह भावना, जो सामूहिक प्रसन्नता के अवसर पर भी लोगों को एक साथ भोज तक के लिए परस्पर नहीं मिलने देती, हमारी एकता के प्रयास में बहुत बड़ी बाधा उत्पन्न करती है। लेखक ने जातिगत विद्वेष की वस्तुस्थिति के अनेक चित्र प्रस्तुत करके प्रबुद्ध चेतना को इस दिशा में सोचने के लिए प्रेरित करना चाहा है। गाँव में व्याप्त जातिगत विद्वेष की यह भावना भोज जैसे अवसरों पर ही परिलक्षित नहीं होती, बल्कि पंचों और पंचायत के स्तर तक व्याप्त दिखलाई पड़ती है। "पंचायत में भी जातिगत भाव अब गहरा पैठा हुआ है। यादव और राजपूतों में वहाँ भी एक–दूसरे को होशियारी के साथ नीचा दिखलाने के लिए चालें चली जाती हैं।" सिंघजी यादव टोली के 'बदमाशों' का सीना तानकर चलना बर्दाश्त नहीं कर सकते । इतना ही नहीं यहाँ के लोग बाहर से आए डॉ० प्रशान्त की जाति की टोह भी लेना चाहते हैं। डॉ० प्रशान्त शुद्ध और उदात्त मानवीयता से प्रेरित हो मेरीगंज में आए हैं। लेकिन लोग उनकी भी जाति जानने के इच्छुक हैं। क्योंकि उनकी दृष्टि में जाति बहुत बड़ी चीज है। जात–पात नहीं मानने वालों की भी जाति होती है। "सिर्फ हिन्दू कहने से ही पिंड नहीं छूट सकता। ब्राह्मण हैं? कौन ब्राह्मण! गोत्र क्या है? मूल कौन है? .....शहर में कोई किसी से जात नहीं पूछता। शहर के लोगों की जाति का क्या ठिकाना, लेकिन गाँव में तो बिना जाति के आपका पानी नहीं चल सकता।" ब्राह्मण गाँव में सबसे कम हैं लेकिन अपने को तीसरी शक्ति के रूप में प्रस्तुत करके वे अनेक अवसरों पर अपनी मनचाही करवा लेते हैं। फुलिया के प्रसंग को लेकर जब पंचायत होती है तब ब्राह्मण लोग राजपूतों से यह अपेक्षा करते हैं कि वे ब्राह्मणों का साथ दें। अगर राजपूत ऐसा नहीं करते तो वे ग्वालों को भी राजपूत मान लेंगे। अर्थात् इस तरह राजपूतों के सामाजिक स्तर को नीचे गिरा देंगे।

वस्तुतः यह बात बड़ी विचित्र लगती है कि इस संक्रान्तिकाल में एक ओर राष्ट्रीयता की भावना से प्रेरित भारतीय समाज एक स्वर में अंग्रेजी शासन के विरुद्ध उठ खड़ा हुआ था और दूसरी ओर स्वयं उसमें नगर ही नहीं ग्राम्य और आंचलिक स्तर पर भी जातिवाद का विष बीज विकास पा रहा था जिससे व्यक्ति–व्यक्ति के बीच मतभेद की खाई गहरी हो रही थी और व्यक्ति–समाज जातिगत आधार पर अलग–अलग समूहों में विभाजित और विच्छिन्न होकर परस्पर द्वेष, ईर्ष्या और शत्रुता के भाव को बढ़ाता हुआ राष्ट्रीय शक्ति, एकता और उदात्त मानवीयता के आदर्शों को धूमिल कर रहा था। रेणु ने बड़ी संवेदनशीलता के साथ इस विरोधाभास को लक्षित किया है।

### वर्गीय शोषण की समस्या–

मेरीगंज के अचंल को केन्द्रीय भूमि बनाकर लेखक ने हमारे सामाजिक जीवन में व्याप्त वर्गीय शोषण को भी अभिव्यक्ति दी है और यह प्रस्थापित करना चाहा है कि अपने समाज में मात्र सामान्य व्यक्ति को जीवन निर्वाह के निमित्त कितनी विषमताओं और अन्याय के बीच रहना पड़ता है। आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न वर्ग द्वारा किस प्रकार उसका शोषण होता है और किस प्रकार शिक्षा, संस्कारों और साधनों के अभाव में शोषित होते रहने के अतिरिक्त उसके पास और कोई विकल्प नहीं रह जाता। प्रतिकूल परिस्थितियों के मध्य जीते रहने के कारण शोषित होने और अन्याय सहते रहने

की एक परम्परा–सी उसके रक्त में घुल–मिल जाती है। मेरीगंज के अंचल में शोषित वर्ग का प्रतिनिधित्व संथाल जाति के लोग करते हैं। "इनके परिश्रम से मेरीगंज की सैंकड़ों बीघे परती धरती आबाद करवा ली गई है। लेकिन फिर भी इन्हें गाँव वालों के साथ नहीं बसने दिया जाता। ये लोग निकटवर्ती जंगलों में ही बसते हैं।" नीलहे साहबों के नील के हौज़ों में भी इन्हीं मूक इन्सानों का पसीना बहता रहता था। "फिर भी इनके पास अपने झोंपड़े बाँधने के लिए अपनी जमीन नहीं है। ये लोग हल में जुते बैल हैं जो दूसरों के लिए काम करते हैं। उनका किसी वस्तु पर अपना कोई अधिकार नहीं होता। वर्षों से वहाँ रहने के बाद भी उन्हें मेरीगंज का नहीं माना जाता। वे बाहरी आदमी हैं।" और इसी आधार पर उन्हें अपने उस गाँव में जिसकी ज़मीन को उर्वर बनाने में उनकी पीढ़ियाँ खप गई हैं। जब–तब उनका चालान कर दिया जाता है। उनकी फरियाद को सुनने वाला कोई नहीं है। जब भी वे अन्याय और शोषण के खिलाफ अपने सर उठाने का प्रयास करते हैं और विद्रोह की दिशा में बढ़ते हैं, उन्हें ज़ोर–जुल्म और कानून दोनों तरह से कुचल दिया जाता है। सेशन केस में उन्हें आजीवन कारावास की सजा होती है। न्याय और न्यायालय भी धनवानों की सम्पत्ति है।

संथालों की ही भांति गांव में रहने वाले मज़दूरों की स्थिति है। उनका भी नियमित शोषण होता है। उनको सवा रुपये रोज मजदूरी मिलती है जिसमें एक व्यक्ति का पेट भी नहीं भरता। पाँच साल पहले पाँच आने रोज मिलते थे और उसी में घर के लोग खाते थे। महंगाई बढ़ रही है लेकिन उस अनुपात में खेत–मजदूर को कुछ नहीं मिल पा रहा है। लेकिन इस लाभ का विभाजन मजदूरों के बीच नहीं हो पाता। कपड़े के अभाव में ये लोग अर्धनग्न रहने लगे हैं। औरतें आँगन में काम करते समय एक कपड़ा कमर में लपेटकर काम चला लेती हैं। "गाँव में उनका जीना दूभर हो गया है। जमींदार और धनी हो गए हैं। लेकिन मजदूर दिन–प्रतिदिन गरीब होता जा रहा है। इसलिए मात्र दो रुपये रोज मजदूरी पाने के लिए वह अपना गाँव छोड़कर शहर के जूट–मिलों की ओर भागने लगता है।"

जमींदारों और शासन के अधिकारियों के अतिरिक्त गाँव के महाजन भी सामान्य वर्गीय व्यक्ति का शोषण करते हैं। सहदेव मिसर गाँव का महाजन है। वह किसानों–मजदूरों की सादे कागज पर टीप ले लेता है और फिर उसके हाथ में मनमानी करने का अधिकार आ जाता है। इस प्रकार ग्रामीण को इन सब प्रकार के शोषणों के बीच रहते हुए तिल–तिल नष्ट होने के लिए विवश होना पड़ता है। लेखक ने अपने डॉक्टर नायक के माध्यम से इस शोषित वर्ग के प्रति अनेक अवसरों पर संवेदना प्रकट की है। एक स्थान पर वह कहता है– 'खेतों में फैली हुई काली मिट्टी की संजीवनी इन्हें जिलाए रखती है। शस्य, श्यामला, सुजला–सुफला ..... इनकी माँ नहीं? अब तो शायद धरती पर पैर रखने का भी अधिकार नहीं रहेगा।'

लेकिन गरीबी और जहालत के बावजूद शोषण की प्रक्रिया को अनिश्चित समय के लिए नहीं सहा जा सकता । दुर्बल से दुर्बल व्यक्ति भी लगातार होने वाले अन्याय के विरोध में एक न एक दिन अपना सर उठा ही लेता है। उनके बीच में से ही कोई व्यक्ति निकल आता है जो उनको सम्मान के साथ खड़ा होने की प्रेरणा देने लगता है। 'मैला आँचल' में यह कार्य कालीचरन द्वारा सम्पन्न हुआ है। वह गाँव भर के हलवाहों, चरवाहों और मजदूरों का नेता है। कालीचरन उनके दिल में आग लगाना चाहता है। वह चाहता है ये मजदूर लोग पीढ़ियों से अन्याय को सह रहे

हैं, अपने अधिकारों के प्रति जागरूक बनें। इस तरह अन्याय और शोषण के प्रति गरीब ग्रामीणों में आक्रोश उत्पन्न करके वह बेजमीन लोगों को धनी जमीदारों के खिलाफ एकजुट करता है वह गरीब किसानों को बतलाता है कि 'ये पूँजीपति और जमींदार खटमलों और मच्छरों की तरह शोषक हैं। ..... खटमल। इसीलिए बहुत से मारवाड़ियों के साथ 'मल' लगा हुआ है।' भले ही इस चेतना के संघर्ष में उनको और अधिक कुचला जाता है, भले ही उनमें से कुछ को अपने जीवन से हाथ धोना पड़ता है, भले ही कुछ विद्रोही जीवन भर के लिए जेल के भीतर धर दिए जाते हैं लेकिन फिर भी इस पूरी घटना में सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि दलित से दलित और शोषित से शोषित व्यक्ति अनन्तकाल के लिए दलित और शोषित नहीं रह सकता।

इस प्रकार हम देखते हैं कि लेखक ने मेरीगंज के अँचल में व्याप्त उन हीन, अस्वस्थ और निष्प्राण रूढ़ियों के अनिष्टकारी परिणामों को लक्षित किया है जिससे मनुष्य की महिमा पर आघात लगता है और स्वस्थ जीवनयापन की संभावनाएँ धूमिल हो जाती हैं। इन बिन्दुओं का सप्रसंग विवेचन करते हुए लेखक ने दानवीयता के प्रतीक इस शोषित और उपेक्षित वर्ग के प्रति अपनी संवेदना प्रस्तुत की है और उसकी यह अपेक्षा रही है कि मनुष्य होने के नाते इन लोगों को भी अज्ञान, शोषण और अन्याय के गर्त से बाहर आकर आत्म–सम्मान और सामान्य सुविधाओं और अवसरों की खुली हवा में साँस लेने का अवकाश मिलना चाहिए जिससे समाज में सही व्यवस्था की सहज प्रतिष्ठा हो सके।

**अंधविश्वास –**

मेरीगंज के निवासी अंधविश्वासी हैं। उन्हें भूत–प्रेत, डायन, जादू–टोना आदि मिथकों में विश्वास है। मंत्र–तंत्र, ओझाई पर भी इस अंचल के वासी विश्वास करते हैं। मेरीगंज की चुड़ैल प्रेतनी का जिक्र देखिये–कोठी के जंगल में तो दिन में भी सियार बोलते हैं। लोग उसे भूतहा जंगल कहते हैं। ततमा टोले का नन्दलाल एक बार ईंट लाने गया था। ईंट में हाथ लगाते ही खत्म हो गया। जंगल में से एक प्रेतनी निकली और नन्दलाल को कोड़े से पीटने लगी। साँप के कोड़े से नन्दलाल वहीं ढेर हो गया। बगुले की तरह उजली प्रेतनी।" लोगों का विश्वास है कि कमला नदी के वरदान से जन्मी कमला को विवाह करके दूसरे गांव भेजना कमला माता को पसंद नहीं है। कमला मैया कमला को अपने से दूर, अलग नहीं करना चाहती ऐसी अफ़वाह फैल जाती है। सारे गांव में जोतखी जी के कहने पर हीरू मान जाता है कि उसके बेटे को पारवती की माँ डायन ने ही मार डाला है। वह रात में पारवती की माँ को डायन समझ कर मार डालता है।

खलासी अपनी ओझाई दिखाता है, वह भूत–प्रेत को अपने मंत्र–तंत्र के बल पर दूर करता है। गांव वालों को एक नए किस्म के भूत बानर–भूत का परिचय देता है। डॉ० प्रशान्त के कमरे में सांप दिखाई देता है तो कमला समझती है कि वह डायन द्वारा भेजा गया है इसी प्रकार के अंध–विश्वास के कारण जोतखी जी अपनी पत्नी को खो देते हैं। ऐसे अनेक अंधविश्वासों का चित्रण हुआ है जिसके फलस्वरूप अँचल–विशेष का जीवन उन अज्ञानों में साकार हो उठता है।

### 1.3.4 राजनीतिक समस्याएँ

'मैला आँचल' उपन्यास का आरंभ ही राजनीतिक पृष्ठभूमि से होता है और उपन्यास का अंत भी राजनीतिक घटनाक्रम के एक दुखांत मोड़ से होता है। उपन्यास में राजनीतिक घटनाक्रम की अनेक परतें व अनेक स्तर चित्रित हुए है। इस अर्थ में 'मैला आँचल' उपन्यास को गहरे रूप में राजनीतिक उपन्यास भी कहा जा सकता है। उपन्यास का आरंभ सन् 1946 के समय से होता है और अंत अप्रैल 1948 के आसपास। सन् 1946 में ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के अंतर्गत कांग्रेसी मंत्रीमंडल बन गए थे। 15 अगस्त सन् 1947 के विभाजन और सत्ता–परिवर्तन के उपरांत ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन से प्रत्यक्षतः हट जाने, किंतु शासन– व्यवस्था उसी ब्रिटिश व्यवस्था के रूप में बनी रहने की स्थिति में स्वातंत्र्योत्तर शासन–व्यवस्था का आरंभ हुआ। दोनों ही स्थितियाँ एक संक्रमणकालीन दौर की उपज हैं और इस संदर्भ में यह तथ्य अत्यंत महत्वपूर्ण है कि ये हमारे देश की राजनीति के व्यवस्थागत रूप को स्पष्ट करने वाली हैं। उपन्यास का आरंभ ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन–व्यवस्था के जनमानस में अंकित बिंब से होता है। उपन्यास का आरंभिक वाक्य ही इस बिंब को शब्दों में बाँधता है, "मलेटरी ने बहरा चेथरू को गिरफ्तार कर लिया है।"

**ब्रिटिश औपनिवेशिक व्यवस्था –**

ब्रिटिश औपनिवेशिक व्यवस्था का जो पहला लक्षण उपन्यास के आरंभ में ही चित्रित हुआ है, वह है– औपनिवेशिक शासन की भयंकर दमन–नीति। इस दमन–नीति का देश के सुदूर गांवों तक में इतना आतंक था कि मलेटरी के आने की अफवाह मात्र से गाँव वाले स्वतंत्रता–सेनानी बालदेव को रस्सी से बाँध लेते हैं अर्थात् यह दमन की नीति के आतंक से जनमानस की मानसिक गुलामी का ही दूसरा रूप है। जनमानस व जन को शारीरिक व मानसिक रूप से गुलाम बनाना– यह ब्रिटिश औपनिवेशिक दमन नीति का मुख्य उद्देश्य था। ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन–व्यवस्था अपने इस लक्ष्य में काफी सफल रही ।

उपनिवेशवादी दमन–व्यवस्था का एक रूप है– सेना या पुलिस द्वारा यातना देना, जेल भेजना या अन्य प्रकार से दंडित करना। इसका जनमानस पर प्रतिबिंब तो उपन्यास के आरंभ में ही मिल जाता है, लेकिन इसके अनेक ठोस उदाहरण उपन्यास में सर्वत्र मिलते हैं, जैसे– स्वतंत्रता–सेनानी बालदेव जब गाँव वालों को अपनी पीठ उघाड़ कर दिखाते हैं, तो न सिर्फ सामान्य–जन वरन् देश के स्वतंत्रता–सेनानियों पर भी कैसी–कैसी यातनाएँ ब्रिटिश शासन के अंतर्गत पुलिस द्वारा दी जाती थीं, वे चित्रित होती हैं।

ब्रिटिश शासन–व्यवस्था के चित्रण के साथ–साथ रेणु ने अधिक सकारात्मक रूप में तथा काफी विस्तार से ब्रिटिश उपनिवेशवाद के विरुद्ध तथा बाद में सन् 1948 के सत्ता–परिवर्तन के बाद देशी हाथों से परिचालित उसी व्यवस्था के विरुद्ध चल रहे जन संघर्षों को भी चित्रित किया है। कांग्रेस के निः स्वार्थ व ईमानदार कार्यकर्ताओं के रूप में 'डेढ़ हाथ' के बावनदास व बालदेव का अधिक उल्लेख हुआ है। दूसरी ओर उन दिनों कांग्रेस पार्टी के अंग के रूप में, लेकिन अधिक जुझारू संघर्ष का बिगुल बजाने वाले दल के रूप में सोशलिस्ट पार्टी का भी उपन्यास में चित्रण है। जयप्रकाश नारायण इस दल के नेता थे और वे बिहार के ही थे, इसलिए उनका जिक्र भी ससम्मान हुआ है। गाँव में सोशलिस्ट

पार्टी का नेतृत्व कालीचरन यादव सँभालता है। उपन्यास में कालीचरन वासुदेव को समझाता है, "यही पाटी असल पाटी है। गरम पाटी है। 'किरांतीदल' का नाम नहीं सुना था ?..... बम फोड़ दिया फटाक से मस्ताना भगतसिंह, यह गाना नहीं सुने हो? वही पाटी है। इसमें कोई लीडर नहीं सभी साथी हैं, सभी लीडर हैं।"

भारतीय स्वतंत्रता–संग्राम में सक्रिय राजनीतिक दलों व शक्तियों की मानसिकता क्या थी, आदिवासी समुदाय के प्रति संवेदनशीलता से उपनिवेशवाद व स्वराज की सीमा–रेखा के इस ओर घटी एक घटना तथा सीमा–रेखा के दूसरी ओर हुए अदालती निर्णय से अंकित कर दिया है। उपन्यास के अंत तक आते–आते ईमानदार कांग्रेसी कार्यकर्ता बावनदास का हश्र भी संथाली आदिवासियों जैसा ही होता है। 'रेणु' ने 'मैला आँचल' में राष्ट्रीय स्वाधीनता–आंदोलन में सक्रिय राजनीतिक शक्तियों का चरित्र अत्यंत सटीक और वस्तुगत ढंग से अंकित किया है।

## 1.4 सारांश

समाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक भूमिका पर 'मैला आँचल' में आंचलिक क्षेत्रों की टुच्ची राजनीति, जातिगत भेद और वैमनस्य, धार्मिक पाखण्ड, श्रमिक–कृषक संथालों पर जमीन मालिकों के अत्याचार, भोली–भाली अशिक्षित जनता को ठगने वाले पण्डित और ज्योतिषी, मठों में व्याप्त भ्रष्टाचार तथा नेता किस्म के लोगों के दोमुहेपन आदि की प्रस्तुति तथा इस प्रकार आंचलिक परिवेश के यथार्थ का रेखांकन बड़ी ईमानदारी से हुआ है। इससे शोषण के विविध रूपों और बिन्दुओं तक पाठक की दृष्टि जाती है और उसे इस बात का तल्ख अहसास होता है कि हमारे देश के विभिन्न अंचलों में रहने वाले लोग किस प्रकार के दुर्दिनों के बीच अपनी जिन्दगी जी रहे हैं।

## 1.5 कठिन शब्द

(1) वैविध्य

(2) बंध्या

(3) वस्तुनिष्ठ

(4) रुग्ण

(5) प्रतिपाद्य

(6) सरोकार

(7) अवरोध

(8) प्रतिष्ठित

(9) धूर्त

(10) आघात

## 1.6 vH;klkFk iz'u

1. मैला आँचल की सामाजिक समस्याओं पर प्रकाश डालिए।

2. मैला आँचल उपन्यास समाज की कौन सी मुख्य समस्या को उद्घाटित करता है, स्पष्ट कीजिए।

3. मैला आँचल में व्यक्त धार्मिक समस्याओं का विवेचन कीजिए।

4. उपन्यास में व्यक्त राजनीतिक समस्याओं को उद्‌घाटित किया गया है। स्पष्ट कीजिए।

5. आँचलिकता के आधार पर मैला आँचल की समीक्षा कीजिए।

## 1.7 पठनीय पुस्तकें


1. मैला आँचल – फणीश्वर नाथ रेणु
2. हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी – आचार्य नंददुलारे वाजपेयी
3. हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन – डॉ० गणेशन

4. हिन्दी उपन्यास का उद्‌भव और विकास – उमेश शास्त्री

5. नया साहित्य नये प्रश्न – डॉ० नंददुलारे वाजपेयी

6. प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में सांस्कृतिक मूल्यों का विघटन – डॉ० रामस्वरूप अरोड़ा

7. समकालीन हिन्दी उपन्यास की भूमिका – डॉ० रणवीर रांग्रा

8. आंचलिकता से आधुनिकता बोध – भगवती प्रसाद शुक्ल

9.. हिन्दी उपन्यास की उपलब्धियाँ – लक्ष्मी शंकर

10. आस्था और सौंदर्य – डॉ० रामविलास शर्मा

11. हिन्दी उपन्यास : पहचान और परख – डॉ० इन्द्रनाथ मदान

12. आँचलिक उपन्यास और उनकी शिल्प विधि – डॉ० आदर्श सक्सेना

13. लोकदृष्टि और हिन्दी साहित्य – डॉ० चन्द्रावली सिंह

******

# मैला आँचल की लोक संस्कृति

**2.0 रूपरेखा**

**2.1 उद्देश्य**

**2.2 प्रस्तावना**

**2.3 मैला आँचल की लोक संस्कृति**

**2.3.1 लोकगीत और प्रकृति**

**2.4 सारांश**

**2.5 कठिन शब्द**

**2.6 अभ्यासार्थ प्रश्न**

**2.7 पठनीय पुस्तकें**

## 2.1 उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरान्त आप जानेंगे –

- मैला आँचल में व्यक्त लोक संस्कृति।
- किसी अँचल विशेष की संस्कृति को जानने के लिए उसके लोक जीवन से जुड़ना आवश्यक है।
- अँचल विशेष की लोक संस्कृति विशिष्ट और महत्वपूर्ण होती है।

## 2.2 प्रस्तावना

अँचल विशेष की लोकसंस्कृति विशिष्ट और महत्त्वपूर्ण होती है। लोकसंस्कृति की दृष्टि से 'मैला आँचल' हिन्दी का विशिष्ट उपन्यास है। आंचलिक जीवन के संयोजन में लेखक ने लोक–सांस्कृतिक तत्त्वों को वहाँ के उत्सवों और

लोकगीतों द्वारा प्रस्तुत किया है। विशिष्ट लोक संस्कृति ही किसी अँचल विशेष की विशिष्टता की परिचायक होती है और आँचलिक उपन्यासकार इसी विशिष्ट आँचलिक संस्कृति के माध्यम से अँचल–जीवन की अंतर्धारा को पकड़ने की कोशिश करता है। निश्चित ही फणीश्वरनाथ रेणु लोकसंस्कृति के महानायक हैं। अपने अँचल की लोककथा, लोकगीत, लोकभाषा, लोककला से रचबस कर उनका व्यक्तित्व तैयार हुआ है। रेणु ने 'मैला आँचल' में वहाँ की लोक संस्कृति का जो चित्र उकेरा है वह अपने आप में महत्वपूर्ण है। लेखक ने इस मैले परिवेश को प्रस्तुत करने के लिए उस परिवेश के बीच जीने वाले लोगों के चरित्रों की, उनके क्रिया कलापों; विश्वासों–व्यवहारों की सहायता ली है। लेखक का लक्ष्य इस सबके द्वारा मूलतः परिवेश पर रोशनी डालना रहा है। इस को गहरा और वास्तविक रंग देने के लिए उन्होंने वहां के सामान्य जीवन के अनेक व्यवहारों और घटनाओं की योजना की है। उसकी इस योजना में वास्तविकता के रंग भरे गए हैं जिससे आँचलिक जीवन का सफल संयोजन हो सका हैं। आँचलिक जीवन के संयोजन में लेखक ने लोक सांस्कृतिक तत्त्वों को वहां के उत्सवों और लोकगीतों द्वारा प्रस्तुत किया है। 'मैला आँचल में लोकगीत भउजिया, बारहमासा, चैती, लोकनाट्य जाट जट्टिन, लोक नृत्य बिदापत नाच, होली वर्णन आदि औपन्यासिक कथा के रक्त में घुल मिल गए हैं ..... शादी ब्याह, पर्व, त्यौहार और जन्म मृत्यु के अवसरों में लोक जीवन किस प्रकार हंसता, रोता–गाता है उस की अकुन्ठ झांकी 'रेणु' ने पाठकों को दिखाई है। देशभक्ति के गीत, निरगुन, समदाउनी, सारंगा– सदावृज, आल्हा लेरिक, वेज्जेभान सब मिलाकर देहात का समा बाँध देते हैं।

रेणु 'मैला आँचल' में बड़ी सूक्ष्म कलात्मक कुशलता से इन लोक कथाओं के पात्रों को उपन्यास के पात्रों से जोड़ देते हैं। कथा के मध्य खलासी जी का मोरंगियां गांजा लाने का प्रयोजन रमजू की स्त्री के लिये कंगन का उपहार, फुलिया के चुमौने की बात, बैसवारी में सहदेव मिसर का हाल। तंत्रिमा टोली के रमजूदास की स्त्री अपनी टोली की सरदारिन है। "सब बबुआन से उस की मुहाँ है।" महंगूदास के साथ बातचीत व झगड़ा और फिर एक दूसरे के परिवार तथा संबंधियों के गढ़े मुर्दे खोदने के प्रसंग आदि उपन्यासकार के शिल्प चातुर्य के नमूने हैं। किस प्रकार गीत कथा के सारंगा–सदाब्रिज उपन्यास के पात्रों खलासी–फुलिया से जुड़ जाते हैं यह कमाल रेणु की कला ही कर सकती है।

आँचलिक परिवेश को व्यक्त करने के लिए लोक गीतों के संयोजन और प्रकृति निरूपण से बड़ी सहायता मिलती है। इनसे अँचल का व्यक्तित्व उभरता है और सहजता प्रतिष्ठित होती है। साथ ही, जहाँ प्रकृति निरूपण से अँचल विशेष के भौगोलिक परिवेश को यथार्थ अभिव्यक्ति मिलती है, वहीं लोकगीतों में उस अँचल का जन जीवन झलकता है। अँचल के लोक व्यवहार, उत्सव–पर्व, संस्कृति, सामाजिक चेतना, राष्ट्रीयता और मानवीय सम्बन्धों की झाँकी लोक गीतों के माध्यम से जितनी प्रभावात्मकता के साथ व्यक्त होती है, उतनी सम्भवतः भाषा शैली के अतिरिक्त अन्य किसी माध्यम से नहीं।

## 2.3 मैला आँचल की लोक संस्कृति

'मैला आँचल' किसी व्यक्ति विशेष की विशिष्ट अभिव्यक्ति न होकर एक आँचलिक परिवेश की लगभग सम्पूर्ण अभिव्यक्ति है। आंचलिक कृति के लिए यह स्थिति बहुत आवश्यक और एक शर्त जैसी है। इसमें परिवेश का प्रस्तुतीकरण

ही लेखक का मुख्य आशय रहा है। 'मैला आँचल' का यह चित्र यहाँ का परिवेश है जिसको सहानुभूति, और प्रतिबद्धता के साथ लेखक ने यहाँ के व्यक्ति चरित्रों, संस्कारों, संस्कृति, परम्पराओं, विश्वासों और वातावरण के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

### 2.3.1 लोकगीत और प्रकृति

'मैला आँचल' में लोकगीतों का प्रचुर उपयोग हुआ है। मैथिली के इन लोकगीतों का विस्तृत संयोजन एक ओर जहाँ लेखक की भाव–प्रवणता, रुचि और संवेदना को प्रकट करते हैं, वहीं इनके माध्यम से मेरीगंज के जन–जीवन के विविध पक्षों को भी बड़ी सजीवता के साथ प्रस्तुत किया गया है। यह ठीक है कि हिन्दी पाठक देश के विशाल क्षेत्र में फैला हुआ है और मध्य भारत अथवा उत्तरी भारत का पाठक अथवा अहिन्दी प्रदेशों का हिन्दी पाठक इन गीतों के रस और भाव ग्रहण में, कठिनाई अनुभव कर सकता है। फिर भी थोड़े से प्रयास भर से इन गीतों के मूल भाव तक पहुँचा जा सकता है और वहाँ के जनजीवन को जाना जा सकता है। ये लोकगीत बिहारी अंचल की संस्कृति वाहिनी शिराएँ हैं जिनके अभाव में अंचल निष्प्राण होकर रह जाएगा। 'मैला आँचल' के ये लोकगीत बहुत सहज प्रणय भावना के साथ–साथ वहाँ के पर्व–उत्सवों, विवाहादि मांगलिक कार्यों, सामाजिक यथार्थ और चेतना तथा राष्ट्रीय संदर्भों को सशक्त अभिव्यक्ति देते हैं। हम जानते हैं कि हमारे देश के अंचल (अंचल से हमारा आशय लोक–अंचल से ही है) विविध प्रकार के अभावों से अभिशप्त हैं। वहाँ सामाजिक चेतना नाम भर की है। प्रबुद्धता के अभाव में जड़–संस्कारों की बहुलता है। फिर भी वहाँ के लोगों की संवेदना और भावनाशीलता समाप्त नहीं हो गई है। उनके मन–प्राण प्रणय भावना से संकुलित हैं। प्रणय का यह भाव 'मैला आँचल' के लोकगीतों की पंक्तियों में अनेक प्रकार से प्रकट हुआ है। सुरंगा–सदाब्रिज की प्रणय भावना को भोली शब्दावली में अभिव्यक्ति देने वाली इन पंक्तियों में आँचलिक प्रणय की भावपूर्ण प्रस्तुति हुई है –

नहीं तोरा जाहे प्यारी तेग तरबरिया से
नहीं तोरा पास में तीर जी ! .....
कौनहि चीजवा से मारलू बटोहिया के
धरती लोटाबेला बेपीर जी ई ई ई ।.....
फँसी गइली परेम की डोर जी .....।

यही स्थिति प्रेयसी की भी है। अपनी प्रिया के रूप की स्मृति मात्र से ही उसके प्राणों में तीर–सा सालने लगता है–

याद जो आए हे प्यारी तोहरी सुरतिया से,
शाले करेजना में तीर जी .....।

प्रणय प्रेरणा मुक्त वातावरण की उपज है। ननद–भाभी के परिहास लोक प्रसिद्ध हैं। इसी ननद–भाभी के सम्मुख अपने मन की आकांक्षा भी रख देती है। वह युवा हो गई है लेकिन अभी तक उसका गौना नहीं हुआ। गाड़ी वालों का दल भौजी का यह गीत गाता हुआ चला जा रहा है–

चढ़ली जवानी मोरा अंग–अंग फड़के से

कब होइहैं गवना हमार रे भउजिया ऽ ऽ ऽ

हथया रँगाये सैंयाँ देहरी बैठाई गइले

फिरहू न लिहले उदेश रे भउजिया ऽ ऽ ऽ।

मैथिली के इन लोकगीतों में शब्द–प्रयोगों की मिठास तो है ही, अनेक स्थलों पर भाव–प्रवणता की दृष्टि से भी ये बेजोड़ बन पड़े हैं। मध्य रात्रि के बीच सन्तुष्ट पिया गहरी नींद सो गया है। सिरहाने बैठी प्रिया पंखा झेल रही है। तभी कोयल कूक उठती है। प्रिया को भय होता है कि कहीं चैन से सो रहे प्रिय की नींद न टूट जाये। नींद के साथ सपना न बिखर जाये .....

सब दिन बोले कोयला भोर भिनसरवा ..... वा ..... वा

बैरिन कोयलिया, आजु बोलय आधी रतिया हो रामा – आँ ..... आँ

सूतल पिया को जगावे हो रामा ..... आँ ..... आँ ..... ।

प्रणय की कोमलता किसी वर्ग और किसी जाति की बपौती नहीं। प्रणय जहाँ भी पलता है, अतिशय कोमलता और सुन्दरता को लेकर ही पलता है। प्रेयसी चाहती है कि उसे प्यार किया जाए लेकिन इसके साथ ही वह यह भी अवश्य चाहती है कि उसके प्रति प्रेयसी का प्रेम स्थायी हो .....। प्रेम में क्षणिक सुख के प्रति उसका आकर्षण नहीं होता। प्राणों में घुले हुए रंगों के मोह में वह स्थायी रूप से अपने में सँजो लेना चाहती है –

छोटी–मोटी पुखरी, चरकुलिया पिड रे

पोरोइनी फूटे लाल–लाल

पासचे तेरी फूल देखी फूलय लाबेलब

पासचे तेरी आधा दिन लगित।

प्रेयसी के प्रिय का रूप सुवर्णवर्णी है। सोने की मुंदड़ी को देखकर उसे अपने प्रिय की स्मृति हो आती है –

'सोनो रे रूप, रूपे रो रूप

सोनो रो रूप लेका गाते ज मेलाय ।

संथाल युवतियों द्वारा गाये गये ये प्रणय गीत उनकी भाव–प्रवणता और प्रणयाकांक्षा को मुखर कर देने के लिए पर्याप्त हैं।

संथालिनें ही नहीं, गाँव की महिलाएँ भी वैवाहिक जीवन के हास–विलास को व्यक्त करने वाले लोकगीतों की धुन से अपने आँगन–मैदान सजाती है। रूठी हुई सुन्दर और जवान जाटिन पत्नी पति या परिवार वालों से रूठकर

नैहर चली जाती है। जाट उसे खोजता हुआ जा रहा है। इस प्रसंग का यह गीत स्थिति के सन्दर्भ में विनोदी और पति–पत्नी के परस्पर सम्बन्धों के सन्दर्भ में अतिशय मार्मिक बन पड़ा है –

सुनरी हमर जटनियाँ हो बाबूजी,

पातरी बाँस के छौंकनियाँ हो बाबूजी,

गोरी हमार जटनियाँ हो बाबूजी

चाननी रात के इंजोरिया हो बाबूजी

नान्ही–नान्हीं दँतवा, पातल ठोरवा .....

छटके जैंसन बिजलिया .....।

बारहमासा–निरूपण ग्राम्य गीतों की एक आवश्यक शर्त है। प्रत्येक प्रदेश के लोकगीतों में ऋतु वर्णन की भरमार होती है। 'मैला आँचल' में भी बारह–मासा के कुछ दृश्य संकलित हैं। बाहर बारिश हो रही है। और भीतर झोंपडी में बैठा कोई गायक इन स्वरों को संगीत दे रहा है –

एहि प्रीति कारन सेत बाँधल,

सिय उदेस सिरी राम है।

सावन हे सखी, सबद सुहावन

रिमझिम बरसत मेघ है।

प्रिया का प्रिय परदेश जाने वाला है। अब आषाढ़ चढ़ आया है। यदि गाँव की कमला नदी में बाढ़ आ जाए तो प्रिय का जाना रूक सकता है –

अरे मास आषाढ़ है ! गरजे घन

बिजूरी–ई चमके सखि हे ए ए !

मोहे तजी कंता जाए परदेसा आ ..... आ..... !

कि उमड़ू कमला माई हे

..... है रे ! है रे ।

और जिन प्रियाओं के प्रिय इस मौसम में परदेश से लौट आए हैं, उनकी कंठों की रागिनी झुलनी के माध्यम से घर–घर में गूंज रही है –

मास आसाढ़ चढ़त बरसाती

घर–घर सखी सब झूलनी लगाती

झूली जावे,

झूली गावति मंगल बानपी

सावन सखि अलि हे मस्त जवानी .....

देखो, देखो !

इस प्रकार फाल्गुन की बसन्त ऋतु आ जाती है। इसी महीने में नववधू का गौना होने वाला है। बसन्त की मादकता को लोकगीतकारों ने शब्दों में बाँध लेने का प्रयत्न किया है। यह झूमर बारहमासा है –

अरे फागुन मास रे गवना मोरा होइल

कि पहिरू बसन्ती रंग है,

बाट चलैत–आ केशिया संथारि बान्हू

अंचरा हे पवन झरे हे ए ए ए।

यही फाल्गुग मास होली का पर्व भी लेकर आता है। 'फागुन महीने की हवा ही बावरी होती है। आसिन (आश्विन) और कातिक (कार्तिक) के मलेरिया और काला आज़ार से टूटे हुए शरीर में फागुन की हवा संजीवनी फूंक देती है। ..... होली मुर्दा दिलों को भी गुदगुदी लगाकर जिलाती है। बौरे हुए आम के बाजा से हवा आकर बच्चे–बूढ़ों को मतवाला बना जाती है। और रसिक ग्राम्य अंचल में नवयुवक और नवयुवतियों के कंठ से मधु बहा देने वाली पंक्तियाँ गूँज उठती हैं –

नयना मिलानी करी ले रे सैयाँ, नयना मिलानी करी ले

अब की बेर इम नैहर रैहबो, जो दिल चाहे करी ले।

इस बार होली की पत्नी अपने नैहर में रहना चाहती है।

होली में सब माफ है। होली का सार्वभौम नायक श्याम है। गोरी की बाँहे पकड़कर उसका झकझोरना और उसकी चूड़ियों का फूट जाना– ये सारी विनोद–विलास की क्रियाएँ क्षम्य हैं –

अरे बेहियाँ पकड़ि झकझोरे श्याम रे

फूटलरेसम जोड़ी चूड़ी

मसकि गई चोली, भीगावत साड़ी

आँचल उड़ि जाये हो

ऐसो होरी मचायो श्याम रे .....।

और क्योंकि होली में सब कुछ क्षम्य है, इसीलिए होली की ओट में आज के नेताओं का चरित्र भी व्यक्त कर दिया जाता है–

बरसा में गउढ़े जब जाते हैं भर
बेंग हजारों उसमें करते हैं टर्र
वैसे ही राज आज कॉंग्रेस का है
लीडर बन है, सभी कल के गीदड़
जोगीड़ा ..... सर..... र.....र ।

इसी के साथ–साथ राष्ट्र–पुरूषों की होली भी गायी जाती है–

गावत गांधी राग मनोहर
चरखा चलावे बाबू राजेन्दर
गूँजल भारत अभहाई रे
.....
वीर जमाहिर शान हमारो
बल्लभ है अभिमान हमारो
जयप्रकाश जैसो भाई रे।
होरिया आई फिर से .....।

देश की आजादी की लड़ाई केवल शहरों में ही नहीं लड़ी गई। ग्रामीण जीवन के अन्तरंग का भी स्वतन्त्रता संग्राम में कम महत्त्वपूर्ण योग नहीं रहा है। अब वह संघर्ष सफल हुआ है और हमें स्वराज्य मिल गया है। स्वराज्य प्राप्ति की यह प्रसन्नता गाँव–गाँव, खेत में फैल गई है। लोकगीतों में 'सुराज कीर्तन' के बोल जुड़ने लगे हैं। ठेठ मैथिली की ये पंक्तियाँ ग्रामीण मन की अपने देश और अपने राष्ट्रनायकों के प्रति श्रद्धा भावना का प्रतीक बनकर प्रस्तुत हुई है –

कथि जे चढ़िए आयेल
भारथ माथा
कथि जे चढ़ल सुराज
चलु सखि देखन को।
कथि जे चढ़िए आयेल

वीर जमाहिर

कथि पर गांधी महराज ! चलु सखि .....

हाथी चढ़ल आवे भारथ माता

डोली में बैठाल सुराज ! चलु सखि देखन को

घोड़ा चढ़िए आए वीर जमाहर

पैदल गंधी महाराज ! चलु सखि देखन को !

राष्ट्रीय पुरुषों की प्रशस्ति की भांति गांधीजी की साम्प्रदायिक ऐक्य की भावना को भी 'मैला आँचल' के लोकगीतों में अभिव्यक्ति मिली है। ग्राम्य–जीवन चाहे वह देश के किसी भी खण्ड का क्यों न हो, गांधीजी के व्यक्तित्व और उनके आदर्शों से अत्यधिक प्रभावित रहा है। राष्ट्र की शक्ति के संचय और उन्नयन के लिए गांधीजी ने हिन्दू–मुस्लिम एकता का आदर्श प्रस्तुत किया था। लोक–गायकों ने भी उनके इस आदर्श को वाणी दी –

अरे चमके मन्दिरवा में चाँद

मसजिदवा में बंसी बजे !

मिली रहू हिन्दू–मुसलमान

मान अपमान तजो !

इसी प्रकार कुछ पंक्तियों में सामाजिक यथार्थ को भी अभिव्यक्ति मिली है। सन् बयालीस में बंगाल में अकाल पड़ा। उसकी पीड़ा मैथिली लोककवि तक ने अनुभव की –

बड़ जुलुम कहलक अकलवा रे

बंगाला मुलुकवा में

चार करोड़ आदमी मरल .....।

इन विविधवर्णी लोकगीतों ने वस्तुतः 'मैला आँचल' के परिवेश को यथार्थ अभिव्यक्ति देने में बड़ा सहयोग दिया है। लोकगीत मन की सहज भावना से निःसृत होते हैं। उनमें कृत्रिमता और कूटनीति के लिए कोई स्थान नहीं होता। परिवेश–प्रस्तुति के साथ–साथ लोकगीतों द्वारा व्यक्ति की सहज वृत्तियाँ भी व्यक्त होती हैं और उनको प्रकाश मिलता है। 'मैला आँचल' के लोकगीतों में इन दोनों स्थितियों का सफलतापूर्ण निर्वाह हुआ है।

'मैला आँचल' उपन्यास में लोकसंस्कृति का पक्ष जितना मजबूत है शायद उससे कम अंधविश्वास का नहीं। विडम्बना तो तब लगती है कि लोक–संस्कृति प्रगतिशीलता को व्यक्त कर रही है उसमें जन–मन के भीतर से निसूत होता प्रगतिशील बीज दृष्टिगत होता है वैसे में वहाँ अंधविश्वास की फसल भी लहलहा रही है। डा॰ प्रशान्त के सारे

प्रयास अलग–थलग पड़ने लगते हैं। पूरा 'मैला आँचल' कदम–कदम पर अंधविश्वास की जंजीरों से जकड़ा है। तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद भी इस अंधविश्वास के कायल हैं। कमली को कमला मैया का वरदान समझते हैं। वे कमली के विवाह में आ रही अड़चनों को भी इसी परिप्रेक्ष्य में देखते हैं जब–जब विवाह का प्रयास होता है तो कभी लड़के की माँ मरती है तो कभी लड़के के घर में आग लगती है तो कभी लड़का ही मर जाता है। परिणाम होता है कि कमली हिस्टिरिया की रोगी हो जाती है। अंधविश्वास से उपजी समस्या काफी गंभीर हो जाती है।

ऐसे ही गाँवों में किस प्रकार बेवा स्त्री को देखा जाता है, का सच्चा उदाहरण है गणेश की मौसी–पार्वती की माँ। गाँव वालों का दृढ़ विश्वास है कि वह डायन है और जिस पर कृपा करती है उसी को खा जाती है। वह अपनी मुस्कान से लोगों पर जादू करके लोगों को मार डालती है जिस प्रकार अपने सारे परिवार को समाप्त कर चुकी है। गाँव के लोग व्यग्रता से इस बात की चर्चा करने लगते हैं कि अब वह डाक्टर को भी खा जाएगी क्योंकि वह उसके घर आने जाने लगा था और एक बार डाक्टर के घर सांप निकलता है, तो लोगों का विश्वास दृढ़ हो जाता है कि इस डायन ने ही सांप भेजा था।

जोतखी काका द्वारा यह बताना कि हीरू के बेटे को पार्वती की माँ ने मार डाला है और फिर हीरू को इस बात के लिए प्रेरित करना कि रात के आधे पहर में पार्वती तुम्हारे बच्चे खेत में ले जाती है ऐसे में उस पर हमला करो तो बच्चा मिल जाएगा। हीरू का तैयार होना प्रसंगात गणेश की नींद खुलना और पार्वती की माँ का घर से बाहर निकलना और निकलने पर हीरू द्वारा लाठियों से पीट पीट कर मार दिया जाना विवेकशून्यता की हद को बताता है।

जोतखी जैसा व्यक्ति स्वयं अपनी ही पत्नी को इसी चक्कर में गंवा बैठा है। गर्भवती पत्नी के पेट में दर्द होता है किन्तु वह डाक्टर को आप्रेशन नहीं करने देता है जिससे उसकी पत्नी मर जाती है और इसका भी श्रेय पार्वती की माँ को मिलता है। यह तो सामाजिक जकड़न है। जब गाँव में मलेरिया सेंटर की स्थापना होती है जो जोतखी का कथन अंधविश्वास की ज़मीन को और भी मजबूत करता है – "डॉक्टर लोग ही रोग फैलाते हैं विलैती दवा में गाय का खून मिला रहता है।

इतना ही नहीं मार्टिन की पत्नी मैरी को बताया जाता है, जो पुराने बंगले में रहती है और लोगों का जो ईंट या अन्य चीजें चुराने जाते हैं उन्हें कोड़े मारती है। दरअसल जनमानस तिल–सी वास्तविकता को मिथकीय पहाड़ में परिवर्तित कर सकता है। समझा जा सकता है कि नंदलाल ततमा खण्डहर की ईंटें चुराते वक्त सर्पदंश का शिकार हुआ होगा पर इस घटना के गिर्द सफेद चुड़ैल और सांप के कोड़े की कल्पना जिस आसानी से जनमनोविज्ञान लेता है उससे 'रेणु' अच्छी तरह परिचित हैं। इसी तरह कमला नदी के द्वारा बरतन देने की कल्पना के पीछे लोगों को ईमानदारी और बेईमानी लाभ–लालच और संतोष के द्वन्द्व के भीतर से अच्छाई और नैतिक मूल्यों से जुड़ा आग्रह काम करता है। ऐसा नहीं है कि यहीं यह स्थिति है, गाँव का दूसरा हिस्सा तांत्रिमा टोली भी ऐसा है। फुलिया से चुमौना तय हो चुका है खलासी जी का। किन्तु पहले से ही खलासी जी आते हैं। रेलवे में नौकरी करते हैं, साथ ही ओझा गुनी भी हैं। उन पर देवी देवता आते हैं। वे अभुहाते हैं और अपने भक्तों की तकलीफें दूर करते हैं, मुरादें पूरी करते हैं। अपने जादू से

बांझ औरतों को भी बच्चों का वरदान दे सकते हैं। वे सिफलियन इलाज करते हैं। गाँव में बुरे दिनों के लिए 'बनरीभुत्ता' जैसे उपाय गढ़ लेते हैं। उनका कहना है कि डॉ॰ प्रशान्त द्वारा बन्दरों पर किया गया शोध ही इन सबका कारण है। शोध में मारे गए बन्दर की आत्मा ही गाँव को सता रही है। फिर खलासी जी द्वारा यह कहना है कि अपने जादू की शक्ति से ततमा टोली को बचा सकते हैं, प्रश्नों के घेरे में रखता है। उपन्यास में खलासी जी के करतब की भी चर्चा मिलती है। एण्ड्ढ्ढ्ट फु

जैसा कि पूर्व में ही कहा गया है कि उपन्यास अंधविश्वासों से भरा है। विज्ञान की सारी विकास यात्राएँ यहाँ के अंधविश्वास में रुक–सी गयी प्रतीत होती हैं। अंधविश्वास के मुद्दे पर एक बात परेशान करती है कि अंधविश्वास अभी लोगों में है चाहे वे जोतखी काका हो या गाँव के बुद्धिजीवी तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद क्यों ? इसके लिए क्या आधार बनाया गया। तहसीलदार तो पढ़े लिखे थे। डाक्टर की इज्जत भी करते थे और इलाज भी कराते थे। कमली के संदर्भ में कहीं भी ओझा–गुनी की चर्चा नहीं है। फिर भी तहसीलदार मानते उनकी बेटी कमला मैया की वरदान है। ग्राम्य जीवन में यदि अंधविश्वास है तो कुछ कम अर्थ रखता है लेकिन शहर से सम्बन्ध रखने वाला खलासी बाबू तो अंधविश्वास का एजेंट लगता है। मेरीगंज का कोई भी हिस्सा और वर्ग अंधविश्वास से अछूता नहीं दिखता है। 'मैला आँचल' में अंधविश्वासजनित परिणाम सोचने को बाध्य करते अंधविश्वास के मुद्दे पर सभी एक से लगते हैं। कालीचरन कम्युनिस्ट का नेता है किन्तु रौतहट टीशन पर नहीं खाता क्योंकि उसकी जानकारी में इसमें मुर्गी का अंडा रहता है। वह रह–रहकर बिस्कुट के डब्बे को देखता है। इसके अन्दर कुड–कुड क्या बोलता है ? कहीं अंडा फूटकर .............. ।"

यहाँ एक बात और दिखती है वह यह कि अंधविश्वास की खेती से कुछ खास लोगों को फायदा है सम्मान मिलता है चाहे वह जोतखी काका हो या खालसी जी। इन्हें इसे जिला कर रखने में लाभ है।

दरअसल 'मैला आँचल' में जनसामान्य के भीतर फैले अंधविश्वासों को कुछ ज्यादा ही बढ़ा चढ़ा कर दिखाया गया है। जबकि वहाँ की जनता अशिक्षित पिछड़ी जरूर है, पर उसमें मानवीय रिश्तों से जन्मी ऊर्जा नहीं है। वे हर–बीमारी, सुख–दुख, पर्व त्यौहार, शादी–विवाह में एक दूसरे के सहायक होते हैं। सामंती जकड़न में बँधे वे घोर अंधविश्वासी भी हैं पर फैलती हुई शिक्षा ने उन्हें ढीला भी किया हैः दरार पड़ी दीवार गिरेगी गिरने दो।' बदलाव की कसमसाहट का यह धुंधला बिम्बः 'मैला आँचल' के लेखक का दृष्टिकोण है। समाज में अन्याय है, अंधविश्वास है, रचनात्मक कार्य के लिए विशाल क्षेत्र पड़ा हुआ है, लेकिन प्रगति चमत्कार से ही संभव है, या राजनीतिक पार्टियों के लिए कुछ नहीं हो सकता। वह गाँधीवादी बलदेव के व्याख्यानों का मजाक उड़ाता है। भाईयो– आप लोग जो 'अंडोलन' किए है, वह सच नहीं। मानों कोई एग्लो इंडियन पत्रकार राष्ट्रीय आंदोलन की रिपोर्ट लिख रहा है। ..... मंच पर कोई भगत सिंह का अभिनय करता है और बमवाला हाथ आगे बढ़ाता है तो आगे में बैठे सभी लोग जता करवट होकर एक दूसरे की पीठ के पीछे मुँह छिपा लेते हैं।" ऐसे डरपोक हैं पूर्णिया के किसान। फिर आस्था किसमें? जमींदार के हृदय में कि वह बदल जायेगा, ऐसे चमत्कारों से जो जनता की राजनीतिक कार्यवाही के बिना उसका भाग्य पलट देंगे। . .......... उसे लोकसंस्कृति प्रिय है किन्तु उस संस्कृति को रचने वालों में कहीं प्रकाश की किरण नहीं दिखायी देती। उसे

अँचल की मिट्टी से प्रेम है। लेकिन उस मिट्टी में मने खपने वाले उसे पशु से भी सीधे और पशु से भी ज्यादा खूँखार दिखायी देते हैं।" (आस्था और सौन्दर्य पृ॰ 100)

वास्तव में "किसी विशेष अँचल के लोकजीवन सहित उसकी आस्था, भाषा कलारूचि, रूढ़ियाँ, गीत–नृत्य और तमाम अतीतमुखी सांस्कृतिक बुनावटों को कोई कथाकार तरल रागबोध के स्तर पर सोद्देश्य डालता चलता है तो उससे मूल्यवान आँचलिक कथा साहित्य का सृजन होता है" (डॉ॰ विवेकी राय)। निश्चित ही अतिवादी दृष्टि के बावजूद 'मैला आँचल' में आये अंधविश्वास भूत–प्रेत, देवी–देवताओं, लोककथाओं, लोकविश्वास तर्केतर या तर्कातीत ही नहीं वरन् उनके पीछे संलग्न मिथकीय सत्ता का बड़ा जटिल और पेचीदा, मनोविज्ञान होता है, इसमें अनुभव स्तरों की परत दर परत उभरती सच्चाइयाँ गहरे जीवन सत्य से जुटी होती हैं। भले ही जिसके मूल में अज्ञान और अशिक्षा, सादगी और निश्छलता ही कार्यरत है। लोक उपादानों का यह उत्स मैला आँचल की खासियत है। लोकरंग की अभिव्यक्ति को जीवंत बनाने के लिए लोकगीतों, लोकविश्वासों की जो झांकी प्रस्तुत की गई है, उसमें जीवन की अनन्त धाराएँ प्रवाहमान हैं। गीतों की थिरकन में ढोल–मृदंग, झाँझ–खंजड़ी, दिग्गा की ध्वनियां मुखरित हो जाती हैं। निश्चित ही 'रेणु' ने स्थानीय भाषा रूप का सहारा लेकर अँचल की लोकधुनों, लोकोक्तियों, कहावतों, लोकगीतों, लोकविश्वासों, मुहावरों, ध्वनियों शब्दों में सन्निहित विविध अर्थ छवियों का प्रयोग कर लोकरंग को, लोकजीवन की अतल गहराईयों में उतारने का सफल प्रयास किया है। गीतों के माध्यम से लोकमानस के सामान्य बोध को 'रेणु' ने मिथक, स्वप्न और निजी दिवास्वप्न के आयामों से समृद्ध किया है। यह सब 'रेणु' ने परम्परा से चली आ रही मौखिक गीत परम्परा को मद्देनजर रखकर किया है। अपने जागरूक कलात्मक लक्ष्य को उन्होंने पारम्परिक गीत विधा की वर्णन शैली में गूंथकर प्राप्त किया है। 'रेणु' ने एक नयी तरह की शैली विकसित की जिसमें लयबद्ध काव्य चेतना और वर्णनात्मक गद्य का अद्भुत तालमेल है।"

बावजूद इसके 'रेणु' के पाठक उनकी मौखिक गीत परम्परा के प्रयोग से अच्छी तरह परिचित हैं किन्तु कथा कहने की 'रेणु' की देशज तकनीक उनके लिए इतनी स्पष्ट नहीं है। वास्तविकता में गीत और गाथा की तरह रेणु ने संस्कृत की कथा और उर्दू की किस्सा परम्परा से बहुत कुछ ग्रहण किया है। यही कारण है कि गीतों को जब छन्दोबद्ध करने की कोशिश करते हैं तो कथा का रूप अव्यवस्थित हो जाता है। तुकबंदी, स्थानीय भाषा, प्रतीकों की पारम्परिक शब्दावली, लाक्षणिक प्रयोग और छन्दोबद्ध रचना गीतों का वैशिष्ट्य है जो गीतों को सघन और ठोस रूप प्रदान करते हैं। गीतों की कसावट और व्यापकता की वजह से कथावस्तु के स्वरूप पर भी असर आता है, जहाँ वस्तुजगत के यथार्थ के भीतर से निःसृत होकर स्मृति और स्वप्नलोक की तर्कहीन दुनिया भी निर्मित हो सकती है। अपने अँचल के लोकगीत, लोकभाषा, लोककला, लोककथा में रच–बसकर उनके व्यक्तिव का निर्माण हुआ है, जहाँ अभिजात्य मानसिकता से परे वे लोकजीवन के भीतर ही परिस्थितियों का साक्षात्कार करते हैं। रेणु की आँचलिक संवेदना बहुत सजग ढंग से भारतीय संस्कृति के बीच प्राचीन और नवीन का संश्लेष उपस्थित करती है। ये गीत सदियों से सुरक्षित जीवंत मौखिक परम्परा को पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित करते हैं। बिना पढ़े–लिखे लोग भी सहज ही शाब्दिक समृद्धि, ध्वनि–प्रतिध्वनि के अंशों को शहरी जीवन तक संप्रेषित करने में समर्थ है। यह तालमेल भाषा को पुनर्जीवन प्रदान कर जीवंत रूप देता है। भाषाई गद्य का यह लचीलापन ग्रामीण और शहरी एकता को प्रभावकारी ढंग से उपस्थित करता है। यही वजह है कि रेणु

लयात्मक गीतों, लोककथाओं, कथात्मक अन्तर्वस्तु, लोक किवंदंतियों के चित्र ग्राम्य बोली के शब्दों को यांत्रिक ढंग से नहीं समेटते वरन् भाषा के स्थानीय रूप के चुनाव में वे ग्रामीण जीवन से जुड़ी सहजता, निश्छलता, सादगी और सरलता का ख्याल रखते हैं तो दूसरी ओर शहरी जीवन के व्यर्थ के मुखौटों से भरे कृत्रिम आडम्बरपूर्ण जीवन शैली से मुक्ति के प्रयास के साथ खड़े होते हैं। अतः भाषा के माध्यम से समाज के अनेक स्तरीय स्वरूपों का संश्लिष्ट और काव्यात्मक रूप प्रस्तुत किया है।

## 2.4 सारांश

अपने गीतों में रेणू ने भाषा की लय, ध्वनि की अनुकरणात्मक संभाव्यता, द्वयर्थक शब्दों का इस्तेमाल बहुत कौशल के साथ किया है। अवधी, भोजपुरी, मैथिली, बँगला, नेपाली, अँग्रेजी, उर्दू, संस्कृतनिष्ठ हिन्दी, अर्द्ध तत्सम शब्दों के माध्यम से ग्राम्यांचल की सामाजिक–सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का संश्लिष्ठ काव्यात्मक रूप उन्होंने उपस्थित किया। भाषा का सरलीकृत ताजा मूर्त रूप वक्तव्य को संप्रेषणीयता प्रदान करता है, ग्राम्य जीवन में समाहित सच्चाई, सादगी को बेबाकी से उपस्थित करता है बावजूद इसके स्थानीय शब्दों के प्रति उनका अत्यधिक मोह जिसका अर्थ भी उन्हें फुटनोट के रूप में बताना पड़ा, कथावस्तु के अन्तः प्रवाह में बाधा अवश्य उपस्थित करता है। जिसमें पाठकों के भी बोध को धक्का पहुँचता है। रेणु पर हिन्दी भाषा को भ्रष्ट करने का आरोप लगाते हुए यह कहा गया है कि वह कलाकार की स्वतंत्रता का दुरुपयोग कर रहे हैं। दरअसल रेणू ने अँचल के वैशिष्ट्य को निरूपित करने के लिए ग्राम्य यथार्थ से सम्बद्ध बोलचाल की भाषा पर आधृत नयी शैली विकसित की, वह इतनी स्थानीय भी नहीं है कि पूर्णिया के लोगों की समझ से परे हो। यह भाषा परिनिष्ठित साहित्यिक भाषा से अवश्य कुछ भिन्न है जिसमें शब्द प्रयोग और व्याकरण की दृष्टि से विचलन उपस्थित है, पर जनजीवन के वैविध्यपूर्ण बहुरंगी जीवन छवियों के चित्र उकेरने में पूर्णतया सफल है। अतः रेणु ने भाषा का एक अपरिचित और नया रूप उपस्थित किया जो अपने में महत्वपूर्ण है।

## 2.5 कठिन शब्द

(1) प्रतिबद्व

(2) प्रबुद्धता

(3) अतिशय

(4) परिप्रेक्ष्य

(5) संलग्न

(6) संवेदना

(7) सार्वभौम

(8) अन्तरंग

(9) अंधविश्वास

(10) आडम्बर

## 2.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. मैला आँचल की लोक संस्कृति पर प्रकाश डालिए।

2. मैला आँचल के परिवेश पर विचार कीजिए।

3. मैला आँचल के कथानक पर विचार कीजिए।

4. मैला आँचल में व्यक्त अन्ध–विश्वासों पर एक परिच्छेद लिखिए।

5. मैला आँचल की विशेषताएं बताते हुए उसकी वस्तु संरचना की समीक्षा कीजिए।

## 2.7 पठनीय पुस्तकें


1. मैला आँचल – फणीश्वर नाथ रेणु
2. हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी – आचार्य नंददुलारे वाजपेयी

3. हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन – डॉ० गणेशन

4. हिन्दी उपन्यास का उद्‌भव और विकास – उमेश शास्त्री

5. नया साहित्य नये प्रश्न – डॉ० नंददुलारे वाजपेयी

6. प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में सांस्कृतिक मूल्यों का विघटन – डॉ० रामस्वरूप अरोड़ा

7. समकालीन हिन्दी उपन्यास की भूमिका – डॉ० रणवीर रांग्रा

8. आंचलिकता से आधुनिकता बोध – भगवती प्रसाद शुक्ल

9. हिन्दी उपन्यास की उपलब्धियाँ – लक्ष्मी शंकर

10. आस्था और सौंदर्य – डॉ० रामविलास शर्मा

11. हिन्दी उपन्यास : पहचान और परख – डॉ० इन्द्रनाथ मदान

12. आँचलिक उपन्यास और उनकी शिल्प विधि – डॉ० आदर्श सक्सेना

13. लोकदृष्टि और हिन्दी साहित्य – डॉ० चन्द्रावली सिंह

******

# आँचलिक उपन्यास परम्परा और मैला आँचल

**3.0 रूपरेखा**

**3.1 उद्देश्य**

**3.2 प्रस्तावना**

**3.3 आँचलिकता परिभाषा तथा स्वरूप विवेचन**

**3.4 स्वरूप**

**3.5 आँचलिक उपन्यास परम्परा और मैला आँचल**

**3.6 सारांश**

**3.7 कठिन शब्द**

**3.8 अभ्यासार्थ प्रश्न**

**3.9 पठनीय पुस्तकें**

## 3.1 उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरान्त आप जानेंगे –

- आँचलिकता आधुनिक संदर्भों की अवधारणा है।
- आँचलिक उपन्यास, उपन्यास का एक विशिष्ट प्रकार है।
- जानेंगे आँचलिकता शब्द के स्वरूप को।
- आँचलिक उपन्यास परम्परा में 'मैला आँचल' एक विशिष्ट स्थान रखता है।

## 3.2 प्रस्तावना

आँचलिकता आधुनिक संदर्भों की अवधारणा है। शहरीकरण, औद्योगीकरण, पूंजीवादी विकास आदि के चलते ग्राम और जनपद उपेक्षित होने लगे तो उन पर विशेष रूप से कतिपय रचनाकारों ने नज़र डाली और अपनी रचनात्मकता के केन्द्र में अँचल को रखा। आँचलिक और आँचलिकता जैसे शब्द अँचल से बने।

अँचल शब्द संस्कृत भाषा का शब्द है। इसका कोशगत अर्थ है वस्त्र, प्रान्त, भाग इत्यादि। इन अर्थों के आधार पर अँचल के स्थूल रूप में निम्नलिखित आशय निश्चित होते हैं –

1. देश का वह भाग या प्रान्त जो किसी सीमा के समीप हो।
2. कोना या छोर
3. तट या किनारा

अँचल का रूढ़ एवं अभिप्रेत अर्थ कोई स्थान–विशेष अर्थात् भौगोलिक सीमाओं से घिरा हुआ कोई विशेष जनपद या क्षेत्र हो सकता है। अंचल एक ऐसा भूखंड विशेष होता है, जिसकी जनता, जन जीवन, भौगोलिकता, धार्मिक विश्वास, संस्कृति, आर्थिक व्यवस्था, समस्याएं आदि अपने–आप में विशेष महत्व रखते हैं। वहाँ के नदी नाले, पेड़ पौधे, खेत–खलिहान, बंध्या–मरूभूमि, हरे भरे मैदान सभी अपने आप में एक विशेष भौगोलिक परिवेश का प्रतिनिधित्व करते हों। ऐसी सभी विशेषताओं, जिनसे एक भूखंड विशेष दूसरे से भिन्न हो, से युक्त क्षेत्र को अँचल कहा जा सकता है। इस प्रकार अँचल भौगोलिक, ऐतिहासिक, राजनैतिक व सांस्कृतिक विशेषताओं वाला होता है। अँचल का एक विशिष्ट प्राकृतिक भूखंड व भौगोलिक परिवेश होता है, उसकी विशिष्ट संस्कृति और सामाजिक मान्यताएं होती हैं तथा विशिष्ट ऐतिहासिक लोक परंपरा से भी वह समृद्ध होता है।

आँचलिक उपन्यास, उपन्यास का एक विशिष्ट प्रकार है क्योंकि उसका उद्देश्य भिन्न है। आँचलिक उपन्यास का उद्देश्य है स्थिर स्थान पर गतिमान समय में जीते हुए अँचल के व्यक्तित्व के समग्र पहलुओं को उद्‌घाटित करना। आँचलिक उपन्यासकार एक दिशा में बहने की अपेक्षा पूरे अँचल की चतुर्मुख यात्रा करता है और उन उपादानों को यहाँ से, वहाँ से चुनता है जो मिल कर अँचल की समग्रता का निर्माण करते हैं। ये वास्तव में आपस में बिखरे नहीं होते इनमें एक अन्तः सूत्रता होती है। आँचलिक उपन्यासों में अँचल अपनी सम्पूर्ण विविधता और समग्रता के साथ नायक होता है। अँचल के जीवन की सारी परम्पराओं, ऐतिहासिक प्रगतियों, शक्तियों, अशक्तियों, छवियों, अछवियों को जितनी ही अधिक सच्चाई से लेखक पकड़ सकेगा, अँचल जीवन के चित्रण में वह उतना ही सफल होगा।

अँचल से संबंध रखने वाली किसी भी वस्तु को आँचलिक कहा जा सकता है। किसी साहित्यिक कृति में जब किसी अँचल विशेष के समाज और जीवन का उस क्षेत्र की समस्त विशेषताओं के साथ चित्रण होता है तो उस कृति को आँचलिक कह सकते हैं। हर अँचल दूसरे अँचल से भिन्न और विशिष्ट होता है। एक अँचल के निवासियों के रहन

सहन, प्रथाएँ, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक संबंध दूसरे अँचल से भिन्न होते हैं और आँचलिकता का निर्माण करते हैं। इन सभी विशेषताओं का जब किसी उपन्यास में चित्रण होता है तो उस उपन्यास को आँचलिक उपन्यास कहते हैं।

## 3.3 आँचलिकता की परिभाषा तथा स्वरूप विवेचन

आँचलिकता की परिभाषा में दो बातों का विशेष महत्व है। अँचल का आंतरिक रूप और अँचल का बाह्य रूप। डॉ॰ ओमानन्द सारस्वत के अनुसार, "आँचलिकता एक प्रकार की अन्तर्मुखता है जहाँ व्यापक यथार्थ को छोड़कर मर्यादित यथार्थ को महत्त्व दिया जाता है जिससे व्यापक यथार्थ व्यंजित होता है।" अपने आंतरिक रूप में आँचलिकता अँचल की सांस्कृतिक आर्थिक आत्मा से संबद्ध होती है। धार्मिक, राजनीतिक आदि पक्ष इसकी बाह्य अभिव्यक्तियाँ है।

आँचलिकता के संबंध में विचार करते हुए जैनेन्द्र कुमार ने लिखा है "आँचलिक प्रवृत्ति वह दृष्टि है, जिसके केन्द्र में अमुक पात्र या चरित्र उतना विशिष्ट नहीं जितना वह स्वयं भू भाग या अँचल है।" इससे यह स्पष्ट होता है कि आंचलिकता किसी अँचल–विशेष का आँचलिक निरूपण है। किसी जनपद विशेष के जीवन का समग्र चित्रण माटी की महक और मनःस्थिति का सजीव और समग्र यथार्थ चित्रण ही आँचलिकता कहलाता है।

डॉ॰ सुवास कुमार के अनुसार "आँचलिकता रचना का स्थापत्य होती है, न कि विशेषता। इसी स्थापत्य के कारण आँचलिक उपन्यास को गैर आँचलिक उपन्यासों से अलगाया जा सकता है। आँचलिक उपन्यास के केन्द्र में संपूर्ण अँचल का जीवन होता है। आँचलिक उपन्यास में व्यक्ति का वही महत्व अंकित होता है जो महत्व उसका समाज में वास्तविक तौर पर है। आँचलिक उपन्यास में जीवन संपूर्ण अँचल के साथ गतिशील होता है।"

आँचलिकता को स्पष्ट करते हुए डॉ॰ आदर्श सक्सेना ने लिखा है अँचलों की अपनी एक विशिष्ट सृष्टि होती है, जिसमें भूतप्रेत होते हैं, ईर्ष्या, प्रतिहिंसा होती है, अन्याय, पाप होता है, कसक होती है पीड़ा होती है, परंतु कहीं पर मीठापन अवश्य छिपा होता है।

डॉ॰ विश्वमभर उपाध्याय के मत में 'किसी विशेष जनपद अँचल (क्षेत्र) के जन–जीवन का समग्र चित्र प्रस्तुत करने वाली औपन्यासिक कृति आँचलिक उपन्यास है।

## 3.4 स्वरूप

आँचलिकता के स्वरूप निर्धारण में अनेक तत्वों का सामूहिक योगदान होता है। किसी भी अँचल की अंतरात्मा को उसके आंतरिक एवं बाह्य तत्वों को साथ–साथ यथार्थ रूप में प्रस्तुत करने की विशेष रूप से आवश्यकता होती है।

अँचल विशेष के सभी तत्वों का सजीव चित्रण ही आँचलिकता के स्वरूप को निर्धारित करता है। वस्तुतः आँचल की प्रकृति, सहज वातावरण, जनजीवन, वेशभूषा, जीवनयापन, आर्थिक व्यवस्था, वर्गगत भेदभाव, विश्वास, संस्कार, खान पान आदि की समग्र सजीव अभिव्यक्ति में योग देनेवाले सभी उपकरण आँचलिकता के तत्व हैं। आँचलिकता के स्वरूप को निर्धारित करने वाला तत्व है–अँचल विशेष के जन जीवन का सर्वांगीण चित्रण। यहाँ अँचल विशेष के संपूर्ण

जन–जीवन तथा उसके विभिन्न रूपों को प्रस्तुत किया जाता है। आँचलिक उपन्यास में अंचल के मनुष्यों के दैनिक जीवन से संबंधित समस्याओं (जैसे–उनकी खेती किसानी की समस्याएँ आदि) को प्रस्तुत किया जाता है। आँचलिक कथाकार का उद्देश्य मनुष्यों के संपूर्ण जीवन क्रम को पूर्णता के साथ प्रस्तुत करना होता है। लोगों के सुख दुख, उनके द्वन्द्वों का निरूपण, उनके संकल्प विकल्प का आरेखन, उनकी बोली बानी के माध्यम से प्रस्तुत करना ही आँचलिकता है।

आँचलिकता का अगला तत्व है लेखक की वस्तुन्मुखी दृष्टि। अँचलवासियों के व्यक्तित्व विकास में अँचल के प्रभावों को स्पष्ट करने के लिए अँचल, वहाँ के लोगों और समस्याओं का वस्तुन्मुखी विवरण दिया जाता है। लेखक का किसी के प्रति कोई पूर्वग्रह नहीं होता। न लेखक के लिए यहाँ अतिरिक्त रूप से भावुक होने का ही अवकाश होता है वस्तुतः यहाँ पर वास्तविक दैनिक जीवन का यथार्थवादी चित्रण ही अपेक्षित है।

आँचलिकता किसी अँचल विशेष के व्यक्ति और पर्यावरण का तटस्थ आँचलिक निरूपण है। इसीलिए आँचलिक उपन्यासों में स्वभाविक, विश्वसनीय और यथार्थवादी चित्रण होता है।

आँचलिकता का संबंध मूलत यथार्थवाद से है। मनोवैज्ञानिक, नृतत्वविधा, जीवविज्ञान आदि से संबंधित तथ्यों का प्रत्यक्ष जीवन यथार्थ, सामाजिक अनुभवों के आधार पर किये गये चित्रण में आँचलिकता का स्वरूप मिलता है।

## 3.5 आँचलिक उपन्यास परम्परा और मैला आँचल

### 3.5.1 हिन्दी आँचलिक उपन्यास का उद्‌भव और विकास

हिन्दी उपन्यास साहित्य में रेणु के प्रथम उपन्यास 'मैला आँचल' के प्रकाशन के बाद ही आंचलिक उपन्यास 1954 में एक स्वतंत्र कथा विधा का प्रतिष्ठापन हुआ। फिर भी कई विद्वानों ने प्रेमचन्दीय परंपरा मे लिखे गए अनेक उपन्यासों में आँचलिकता के तत्वों को ढूंढने का प्रयास किया। कुछ विद्वानों ने शिवपूजन सहाय कृत देहातीदुनिया (1925) को हिन्दी का प्रथम आँचलिक उपन्यास घोषित किया। देहाती दुनिया में आँचलिकता के तत्वों को ढूंढने का प्रयास किया। उपन्यास आँचलिक भी होता है, यह जानकर और मानकर सर्वप्रथम आंचलिक उपन्यास की सृष्टि करने वाले, फणीश्वरनाथ रेणु ही थे। रेणु को ही सर्वप्रथम मौलिक आँचलिक उपन्यासकार मानना उचित होगा। विशिष्ट शिल्प के अर्थ में यद्यपि आँचलिक उपन्यास शिल्प का प्रथम उद्‌घोष फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यास 'मैला आँचल' (1954) की भूमिका में हुआ। डॉ॰ सत्यापाल चुघ सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला की कृति 'बिल्लेसुर बकरिहा' (1941) को पहला आँचलिक उपन्यास मानते हैं। देहाती दुनिया में भोजपुर अँचल को उसके समस्त मुहावरों–मिथकों के साथ चित्रांकित किया गया है। 'बिल्लेसुर बकरिहा' में अवध अँचल के विशिष्ट सामाजिक जीवन, उसकी रूढ़ियों–विकृतियों और संकीर्णताओं सहित उसकी माटी की मौलिक गंध की पकड़ है। जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी की 'बसन्त मालती' जिसमें मुंगेर जिले के मलयपुर अँचल के मल्लाहों का जीवन, हरिऔध की कृति 'अधखिला फूल (1907), गोरखपुर अँचल की रूपाभा से युक्त, गोपाल राम गहमरी की कृति 'भोजपुरी की ठगी', रामचीजसिंह की 'वन विहंगिनी (1909), संथाल परगना के आदिवासी क्षेत्र

की कोसकुमारियों के जीवन–संघर्ष से युक्त, बृजनन्दन सहाय की रचना 'अरण्यबाला' (विन्ध्याचल के पर्वतांचल का जीवन–चित्र) और मन्नन द्विवेदी की कृति 'रामलाल' (1904) जिसमें गोरखपुर जिले की बाँसगाँव तहसील के एक गाँव की जीवन–छवि और स्थानीय रंग से परिपूर्ण, जैसी कृतियाँ महावीर प्रसाद द्विवेदी युगीन आँचलिकता को बहुत स्पष्ट रूप में हमारे सामने प्रस्तुत करती हैं। कुछ उपन्यासों में भारत जैसे विशाल और वैविध्य–वैचित्र्य सम्पन्न राष्ट्र की प्रादेशिक रूपाभा अति चमकीले सांस्कृतिक रंगों में उभरती है और बिहार के पूर्णिया और मध्य प्रदेश के बस्तर से लेकर पूर्वी उत्तर प्रदेश, बुन्देलखण्ड, छत्तीसगढ़, राजस्थान, महाराष्ट्र, तिब्बत, मणिपुर और अंडमान आदि की प्रादेशिक इकाइयाँ अपनी पृथक अन्तरंग–बहिरंग झलकियों के साथ प्रस्तुत की जाती हैं। अविकसित आदिवासी और जंगली जन–जातियों को जो मालवा, संथाल परगना, बस्तर, बुन्देलखण्ड और राजस्थान आदि में निवास करती हैं आँचलिक उपन्यासकारों ने समारोह संभवी उत्साह में उठाकर चित्रांकित किया है प्रादेशिक रूपाभा के चितेरों में रेणु, बलभद्र ठाकुर, गोबिन्द बल्लभ पंत, रामदरश मिश्र, बलवन्तसिंह और नागार्जुन आदि और जंगली आदिवासियों के अंकन कर्ताओं में शानी, राजेन्द्र अवस्थी, वृन्दावनलाल वर्मा, जयसिंह, रांगेय राघव, देवेन्द्र सत्यार्थी और श्याम परमार आदि का कृतित्व स्मरणीय है। शैलेश मटियानी और शिवानी आदि में पर्वतांचलिकता है। विशेषकर शैलेश मटियानी ने पर्वतीय जन–जीवन की छवि–लेखा को गहरी रागात्मकता के साथ अंकित किया है। विश्व–साहित्य के श्रेष्ठ आंचलिक उपन्यासों में सरितांचलिका की प्रवृत्ति महत्वपूर्ण है। हिन्दी में इस धारा को रेणु, मधुकर गंगाधर, देवेन्द्र सत्यार्थी, भैरव प्रसाद गुप्त और रामदरश मिश्र आदि प्रवाह प्रदान करते हैं और कोसी, गंगा, ब्रह्मपुत्र और शप्ती आदि नदियों का तटवर्ती जीवन–संघर्ष हिन्दी–पाठकों के सामने विशेष आंचलिक आकर्षणों के साथ मूर्त्त हो उठता है। इस तरह हिन्दी उपन्यासों की यह आंचलिक विविधता 'परती परिकथा', 'मैला आँचल', 'बाबा बटेसरनाथ', 'कलावे', 'मुक्तावली', 'जल टूटता हुआ', 'हौलदार', 'गंगामैया', 'ब्रह्मपुत्र', 'आधा गाँव', 'सागर लहरें और मनुष्य', 'जुलूस', 'कस्तूरी', 'कब तक पुकारूँ', आदि उपन्यासों में अत्यन्त मार्मिकता के साथ प्रकाशित हुई है। स्वतन्त्रता–प्राप्ति के पश्चात् भिन्न–भिन्न अँचलों के निवासी और संवेदनशील यायावर लेखकों का ध्यान आंचलिक जीवन की ओर आकृष्ट हुआ और उनकी कृतियों में आंचलिकता के तत्व सहज ही प्रवेश कर गए हैं। ऐसी कृतियों के भी मोटे तौर पर दो वर्ग किए जा सकते हैं। पहले वर्ग में उन कृतियों को लिया जा सकता है जिनमें आंचलिक संस्पर्श अथवा स्थानीय रंगत की विशिष्टता तो अवश्य है किन्तु उनकी आत्मा आंचलिक नहीं है। उनको पढ़कर ऐसा नहीं लगता कि हम किसी अंचल विशेष का अध्ययन कर रहे हैं जो अन्य अंचलों से भिन्न है। इन कृतियों में कथा और पात्र उभरकर आते हैं अंचल नहीं। इस वर्ग के उपन्यासों को हम आंचलिक संस्पर्श से संयुक्त कृतियाँ कह सकते हैं। दूसरे वर्ग के अन्तर्गत वे रचनाएँ आती हैं जिनमें आंचलिक तत्त्व प्रभूत मात्रा में प्राप्त होते हैं और कथा अथवा पात्र के स्थान पर अंचल विशेष की संस्कृति, व्यवहार–व्यापार और वहाँ का परिवेश विशेष रूप से अपनी समग्रता में उभरकर व्यक्त होता है। इन कृतियों में अँचल पाठक का ध्यान आकर्षित करता है। कृति की समाप्ति पर पाठक के मस्तिष्क पर अँचल की समग्रता का प्रभाव छाया रहता है। किसी पात्र का अथवा कथानक की विशिष्टता का नहीं। ऐसे उपन्यासों के पात्र और कथानक दोनों अँचल को उभारने के निमित्त होते हैं।

प्रथम वर्ग के अन्तर्गत हम नागार्जुन–'नयी पौध (1953), रांगेय राघव–'काका' (1953), देवेन्द्र सत्यार्थी–'रथ के पहिये' (1953), बलभद्र ठाकुर–'मुक्तावली' (1955), अमृतलाल नागर–'सेठ बाँकेमल' (1955), पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र–'फागुन के दिन चार' (1955), अमृतलाल नागर–'बूँद और समुद्र (1956), देवेन्द्र सत्यार्थी–'ब्रह्मपुत्र' (1956), नागार्जुन– 'दुख मोचन (1956), हिमांशु श्रीवास्तव–'लोहे के पंख (1957), बलभद्र ठाकुर– ' आदित्यनाथ' (1958), उदयशंकर भट्ट–'लोक–परलोक' (1958), बलभद्र ठाकुर–'नेपाल की बेटी' (1959), भैरवप्रसाद गुप्त–'सती मैया का चौरा' (1959), उदयशंकर भट्ट–'शेष–अशेष' (1960), हिमांशु श्रीवास्तव– 'नदी फिर बह चली' (1961), मनहर चौहान– 'हिरना सांवरी' (1962), योगेन्द्र नाथ सिन्हा–'वन के मन में' (1962), सुरेन्द्र पाल – 'लोक लाज खोई' (1963), श्याम परमार– 'मोर झाल' (1963) फणीश्वरनाथ रेणु–'दीर्घतपा' (1963), राही मासूम रजा–'आधा गाँव (1966), श्री लाल शुक्ल–'राग दरबारी' (1968) आदि उपन्यासों को सम्मिलित कर सकते हैं।

इन कृतियों के अतिरिक्त कुछ कृतियाँ ऐसी हैं जिन्हें हम मोटे तौर पर आँचलिक उपन्यासों की संज्ञा दे सकते हैं। इन आँचलिक कृतियों द्वारा देश के अनेक अंचलों की संस्कृति, संस्कारों और समस्याओं को अभिव्यक्ति मिली है। इन कृतियों में नागर्जुन 'रतिनाथ की चाची, (1948), 'बलचनमा' (1952), शिवप्रसाद रूद्र 'बहती गंगा' (1952), नागार्जुन 'बाबा बटेसरनाथ' (1954), उदय शंकर भट्ट ' सागर, लहरें और मनुष्य (1955), फणीश्वर नाथ रेणु, 'परती परिकथा' (1957), राजेन्द्र अवस्थी 'जंगल के फूल' (1960), शैलेश मटियानी 'चिट्ठी रसैन' (1961), रामदरश मिश्र ' पानी के प्राचीर' (1961), शैलेश मटियानी 'चौथी मुट्ठी' (1962), जयप्रकाश भारती ' कोहरे में खोए चाँदी के पहाड़' (1968), आनन्द प्रकाश जैन 'आठवी भाँवर' (1969) विशेष रूप से उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। इनमें विभिन्न अंचलों के जन–जीवन और परिप्रेक्ष्य को व्यापक झलक पर वाणी मिली है, आंचलिक भाषा–शक्ति के दर्शन हुए हैं और रचनात्मक विधा को अभिव्यक्ति की नयी भूमिकाएँ प्राप्त हुई हैं।

'रतिनाथ की चाची' में लेखक नागार्जुन ने विधवा जीवन को केन्द्र में रखकर ग्राम्य समाज में फैली हुई कुलीनता–अकुलीनता, अस्पृश्यता, विधवा–विवाह, बाधित वैधव्य, नारी विक्रय की उन समस्याओं को प्रकाश दिया है जिनसे पूरा मिथिलांचल ग्रस्त है। अभिव्यक्ति के प्रकार, परिवेश के प्रस्तुतीकरण और भाषा–संस्कृति की विशिष्टता ने इस कथा को गहरा आंचलिक रूप दे डाला है, इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता। नागार्जुन का 'बलचनमा' भी आंचलिकता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। 'बलचनमा' का कथा–विकास विशिष्ट अँचल के केन्द्र में हुआ है जिसमें बलचनमा की आपबीती के माध्यम से अंचल विशेष का चित्र उभारा गया है। 'बलचनमा' वर्ग–संघर्ष की कथा कहता है। देहाती जीवन की साधारण घटनाओं को सूत्रित करने में, उसके छोटे–छोटे सुखों के सूक्ष्म निरीक्षण तथा सजीव चित्रण में, जमींदारों के निरंकुश व्यवहार तथा उत्पीड़न में, नये जीवन के स्पन्दन में, अंचल विशेष की भाषा को पकड़ने में सफल रहा है। अपने उपन्यास ' बाबा बटेसरनाथ' में लेखक ने उत्तर–बिहार की आंचलिक संस्कृति की यथार्थ भूमिका पर निरूपण किया है। इस कथा का नायक व्यक्ति–विशेष न होकर एक वट–वृक्ष है। इसमें वट्वृक्ष की 'आत्म–कथा' है। अँचल विशेष में व्याप्त वर्ग–संघर्ष, राजनीतिक जोड़–तोड़, तथा रूढ़ियों के व्यंग्यात्मक प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से 'बाबा बटेसरनाथ' एक स्मरणीय आँचलिक कृति है।

शैलेश मटियानी के उपन्यास 'चिट्ठी रसैन' और चौथी मुट्ठी' आँचलिकता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं। कूर्मांचल की संस्कृति, प्राकृतिक सौन्दर्य, वहाँ के लोगों की, विशेष रूप से महिलाओं की दयनीय स्थिति और इन सबके साथ वहाँ के लोक जीवन की घाटियों में व्याप्त प्रणय चर्या का अविरल प्रवाह आदि का हृदयग्राही विवेचन हमें इन कृतियों में प्राप्त होता है।

फणीश्वरनाथ रेणु का दूसरा उपन्यास 'परती परिकथा' भी आंचलिकता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इसमें भी पूर्णिया जिले के आँचल को अभिव्यक्ति मिली है। आँचलिक जीवन की समग्रता के दर्शन इस कृति में होते हैं। इस उपन्यास का कथानक 'लैंड सैटिलमेन्ट सर्वे, तथा कोशी प्रोजेक्ट के सन्दर्भ में विकसित होकर परानपुर अँचल के निवासी ग्रामीणों की मनोवृत्तियों पर प्रकाश डालता है।

उदयशंकर भट्ट का 'सागर, लहरें और मनुष्य' एक विवादास्पद कृति है। कृति की आधार–भूमि बम्बई के नागरी जीवन से प्रभावित और सम्पृक्त अँचल मछुवारों की बस्ती बरसोवा है। इस उपन्यास में बरसोवा अँचल के निवासी मछुवारों के जीवन की सांस्कृतिक, सामाजिक झाँकियाँ मिलती हैं, उनके परिवेश के नीति–नियम, व्यवहार, आदर्श, आस्था–अनास्था, परम्परा और प्रवृत्तियों का परिचय मिलता है।

रांगेय राघव का 'कब तक पुकारूँ' तथा राजेन्द्र अवस्थी का 'जंगल के फूल' जातीय आँचलिकता से सम्पृक्त कृतियाँ हैं। इनमें अँचल विशेष के समान ही जातिगत संस्कारों, परम्पराओं और प्रवृत्तियों को, नैतिक–अनैतिक मानदण्डों को और आदर्शों को अभिव्यक्ति मिली है। 'कब तक पुकारूँ में लेखक ने राजस्थान के बैर नामक ग्राम तथा उसके निकटवर्ती प्रदेश में रहने वाली नटों की एक उपजाति 'करनट' के जीवन–व्यापार को कथा के रूप में प्रस्तुत किया है। खानाबदोश या जरायम–पेशा कहे जाने वाले ये करनट स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भी अन्य अनेकों जातियों और अंचलों के निवासियों की भाँति आज तक उपेक्षित, शोषित और प्रताड़ित हैं।

राजेन्द्र अवस्थी के 'जंगल के फूल' उपन्यास में मध्यप्रदेश के बस्तर क्षेत्र के निवासी गोडों के जीवन को जीवन्त अभिव्यक्ति मिली है। इस उपन्यास का कथ्य गोडों के अधिकार और रक्षा के प्रश्न के चारों ओर केन्द्रित है। पात्रों के माध्यम से, जिनमें महुआ, झालरसिंह आदि मुख्य हैं, आंचलिक जीवन के विविध रंग एवं चित्र प्रस्तुत किए गए हैं। समग्रतः 'जंगल के फूल' गोंड जीवन को उसकी समस्त जातिगत विशिष्टता के साथ प्रस्तुत करने वाली सूक्ष्म और सफल कृति बन पड़ी है।

रामदरश मिश्र का 'पानी के प्राचीर' जय प्रकाश भारती का 'कोहरे में खोए चाँदी के पहाड़' तथा आनन्द प्रकाश जैन का 'आठवी भाँवर' का उल्लेख आवश्यक हो जाता है। 'कोहरे में खोए चाँदी के पहाड़' में जौनसार बाबर के जन–जीवन को यथार्थ की भूमिका पर देखने का प्रयास करने की अपेक्षा उसे मौलिक संवेदना का विषय बनाकर छोड़ दिया है। फिर भी उस अँचल के लोगों और विशेषकर वहाँ की महिलाओं के शोषण को अभिव्यक्ति देकर लेखक ने उस अलक्षित प्रथा की ओर सोचने की दिशा दी है जो इस अंचल की अपनी विशेषता कही जा सकती है।

आनन्द प्रकाश जैन की 'आठवी भाँवर' की आंचलिकता भी बहुत करके उसकी परिमार्जित अत्यधिक स्वाभाविक और प्रवाहमान भाषा– शैली के कारण ही प्रतिष्ठित हुई है। इसका कथ्य पश्चिमी उत्तर प्रदेश के गोसाइयों की जीवन–प्रक्रिया प्रस्तुत करता है। गोसाइयों की वैवाहिक परम्परा की जो अदला–बदली के रिवाज पर आधारित है, इस कृति में विस्तार से विवेचना हुई है।

आँचलिक उपन्यासों में 'मैला आँचल' का विशिष्ट स्थान है। रेणु ने अपने उपन्यास के माध्यम से उपेक्षित एवं पिछड़े हुए आँचल को साहित्य में प्रतिष्ठित किया। उनकी प्रमुख उपलब्धि भी रही–अँचल की समग्र अभिव्यक्ति। मैला आँचल में पूर्णिया अंचल के ग्रामीण जीवन के सभी समाजिक क्रिया–चेतना तथा अनभिज्ञता की संपूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। रेणु ने पूरे ग्रामीण समाज के जीवन की एक ओर व्यापकता और दूसरी ओर गहराई को भी अभिव्यक्त करने के लिए बाह्य सतहों से जुड़ी घटनाओं, सामाजिक क्रियाओं और संबंधों का इतना संपूर्ण तथा विस्तृत चित्रण किया है कि भारतीय गांव संबंधी किसी एक समाजशास्त्रीय अध्ययन में पर्यवेक्षण का इतना विस्तार तथा गहराई नहीं मिलती है। यह उपन्यास इस अर्थ में आँचलिक है कि यह किसी एक व्यक्ति विशेष की कथा नहीं है। वह तो एक अँचल–विशेष मेरीगंज गांव की संपूर्ण एवं समग्र जीवन–कथा है। जैसा रेणु ने स्वयं 'मैला आँचल' की भूमिका में लिखा है– यह है मैला आँचल, एक आँचलिक उपन्यास। कथांचल है पूर्णियां, पूर्णिया–बिहार राज्य का एक जिला है। इसके एक ओर है नेपाल दूसरी ओर पाकिस्तान और पश्चिम बंगाल। इस प्रकार 'मैला आँचल' उपन्यास पिछड़े राज्य बिहार के पिछड़े जिले पूर्णिया के पिछड़े अंचल–विशेष कर पिछड़े हुए गांव मेरीगंज की कथा है। सभी कथाएं आँचलिक परिवेश की ही पुष्टि करती है। पात्रों एवं घटनाओं के माध्यम से वस्तुतः उपन्यासकार ने अँचल–विशेष की समस्त अच्छाई एवं बुराई की ही अभिव्यक्ति की है। मेरीगंज का परिवेश भौगोलिक, मानसिक, आर्थिक, सांस्कृतिक सभी दृष्टियों से पिछड़ा हुआ है। इन सब की यथार्थ अभिव्यक्ति 'मैला आँचल' में हुई है।

'मैला आँचल' का जहाँ वस्तुगत महत्त्व है वहीं इसका ऐतिहासिक महत्त्व भी है। 'मैला आँचल' उपन्यास की विशिष्टता ये है कि ये अन्य आँचलिक उपन्यासों से अधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इस कृति के द्वारा ही आँचलिकता को हिन्दी में पहली बार रेखांकित किया गया। जहाँ तक इस उपन्यास के विशिष्ट महत्त्व का प्रश्न है, उसके सन्दर्भ में पहली बात यह कही जा सकती है कि यह आँचलिक उपन्यासों की श्रृंख्ला में ऐसा प्रथम उपन्यास है जिसके प्रकाशन के बाद से हिन्दी में आँचलिकता की खोज आरम्भ हुई और उपन्यासों का एक नया प्रकार पाठकों के सम्मुख आने लगा।

'मैला आँचल' का दूसरा महत्त्व इस बात को लेकर भी है कि रेणु ने इसमें आँचलिक जीवन के अस्वस्थ और पुष्ट दोनों पक्षों का उद्‌घाटन किया है। मानवीय संवेदना के साथ इस बात का संकेत दिया है कि इन उपेक्षित अँचलों को भी शहरी सुविधा, विकास और सम्पन्नता में अपना भाग मिलना चाहिए। इस कृति में अत्यन्त मानवीय संवेदना के साथ लोक जीवन की उन विशेषताओं और विसंगतियों को भी देखा है, जहाँ सामान्य सी दवाइयों के अभाव में लोग कीड़ों की तरह मर रहे हैं और उन्हें इस बात का पता ही नहीं है कि विज्ञान के इस युग में कितनी जीवन–सेवी औषधियों का निर्माण हो चुका है। बिना मानवीय संवेदना के साहित्यकार कालजयी रचना नहीं दे सकता। 'मैला आँचल' में

समाजगत और व्यक्तिगत दोनों स्तरों पर उन्होंने इसी उदात्त आदर्श की स्थापना की है और सफलता के साथ की है। अपने समय की विभिन्न और परस्पर विपरीत वादात्मक भूल–भूलैया में पड़ी रचनाधर्मिता का उन्होंने अपनी रचनात्मक, स्वस्थ और लोकहितोन्मुखी दृष्टि से संस्कार किया है और अन्याय, शोषण, अभाव तथा क्रूरता के बीच कठिनता से साँस लेते हुए लोक जीवन के हित एक ऐसा जीवनादर्श प्रस्तुत किया है जिससे जीवन में संतुलन और संगति आ सके। कथ्य की दृष्टि से रेणु की यही मानवीयता, जो 'मैला आँचल' के पृष्ठ–पृष्ठ पर रेखांकित हुई चलती है, उनकी रचनाओं का सत्य है–ऐसा सत्य जो समाज में समतावादी आदर्श की व्यावहारिक प्रतिष्ठा होने तक धूमिल नहीं हो सकता।

भाषा और शिल्प के स्तर पर भी रेणु का प्रदेय कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। यह ठीक है कि आंचलिक शब्दों के बहुल प्रयोग ने बिहार अँचल से अपरिचित पाठकों के लिए कई स्थलों पर कठिनाई उत्पन्न कर दी है, लेकिन उनकी भाषा का प्रभाव उनके भाव को पाठक को भीतर तक गुदगुदा देने की अपूर्व क्षमता से सम्पन्न भी है। 'मैला आँचल' में भाषा और शिल्प के विभिन्न प्रयोगों से जो विविधता ला दी है वह उसके महत्व को बढ़ाने में सहायक ही हुई है। इस उपन्यास में कथ्य और भाषा के स्तर पर भी सन्तुलन का निर्वाह हुआ है।

## 3.6 सारांश

स्पष्ट है कि रेणु ने इस कृति के माध्यम से हिन्दी उपन्यास को लोक जीवन से जुड़े शब्दों से समृद्ध करने की दिशा भी दी है। एक कृति के माध्यम से वैचारिकता और शिल्प दोनों स्तरों पर इतनी नवीनता को सम्प्रेषित और प्रतिष्ठित करना निश्चित ही एक बड़ी प्रतिभा का कार्य है।

## 3.7 कठिन शब्द

1. वैचारिकता
2. प्रतिष्ठित
3. नवीनता
4. सम्प्रेषित
5. निर्वाह
6. अनभिज्ञता
7. उपेक्षित
8. विवादास्पद
9. संवेदना
10. भौगोलिक

## 3.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. आँचलिकता की परिभाषा देते हुए इसके स्वरूप का विवेचन कीजिए।

2. आँचलिक उपन्यास के उद्‌भव और विकास पर प्रकाश डालिए।

3. आँचलिक उपन्यास परम्परा में 'मैला आँचल' का स्थान निर्धारित कीजिए।

4. 'मैला आँचल' की किसी प्रमुख विशेषता का चित्रण कीजिए।

5. ''जितना जीवन की गति की तीव्रता का अभ्यास 'मैला आँचल' में होता है उतना उसकी गंभीरता का नहीं''। इस कथन की समीक्षा कीजिए।

## 3.9 पठनीय पुस्तकें


1. मैला आँचल – फणीश्वर नाथ रेणु
2 हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी – आचार्य नंददुलारे वाजपेयी

3. हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन – डॉ० गणेशन
4. हिन्दी उपन्यास का उद्‌भव और विकास – उमेश शास्त्री
5. नया साहित्य नये प्रश्न – डॉ० नंददुलारे वाजपेयी
6. प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में सांस्कृतिक मूल्यों का विघटन – डॉ० रामस्वरूप अरोड़ा
7. समकालीन हिन्दी उपन्यास की भूमिका – डॉ० रणवीर रांग्रा
8. आंचलिकता से आधुनिकता बोध – भगवती प्रसाद शुक्ल
9. हिन्दी उपन्यास की उपलब्धियाँ – लक्ष्मी शंकर
10. आस्था और सौंदर्य – डॉ० रामविलास शर्मा
11. हिन्दी उपन्यास : पहचान और परख – डॉ० इन्द्रनाथ मदान
12. आँचलिक उपन्यास और उनकी शिल्प विधि – डॉ० आदर्श सक्सेना
13. लोकदृष्टि और हिन्दी साहित्य – डॉ० चन्द्रावली सिंह

******

# मैला आँचल के पात्र

**4.0** रूपरेखा

**4.1** उद्देश्य

**4.2** प्रस्तावना

**4.3** 'मैला आँचल' के पात्र

**4.3.1** डॉक्टर प्रशान्त

**4.3.2** कालीचरण

**4.3.3** तहसीलदार विश्वनाथ प्रताप

**4.3.4** बालदेव

**4.3.5** महन्त सेवादास

**4.3.6** महन्त रामदास

**4.3.7** बावनदास

**4.3.8** ज्यातिषी काका

**4.3.9** लक्ष्मी

**4.3.10** कमला

**4.4** कठिन शब्द

**4.5** अभ्यासार्थ प्रश्न

**4.6** पठनीय पुस्तकें

## 4.1 उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरान्त आप जानेंगे कि–

- उपन्यास की कथावस्तु का विकास इसमें समाहित पात्रों के माध्यम से होता है।
- किसी भी उपन्यास में पात्र योजना और उनके चरित्रांकन–कौशल का महत्वपूर्ण स्थान होता है।
- 'मैला आँचल' का कथा संसार एक छोटे से गाँव में केन्द्रित होने पर भी पात्रों से भरापूरा है।
- इस उपन्यास में उपन्यासकार ने कथ्य के अनुसार ही अपने पात्रों का संसार गढ़ा है।

## 4.2 प्रस्तावना

उपन्यास की कथावस्तु का विकास उसमें समाहित पात्रों के माध्यम से किया जाता है, अतः किसी भी उपन्यास में पात्र–योजना और उनके चरित्रांकन–कौशल का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। उपन्यासकार अपनी कथावस्तु के अनुरूप पात्रों का चयन करके उनकी आकृति, प्रकृति, मनोदशा, विचार, अनुभव आदि का चित्रण करता है और इस प्रकार कथानक को सजीव, स्वाभाविक, जीवन के अनुकूल और सप्राण बनाता है। उपन्यासकार की इस दृष्टि से सफलता का मानदण्ड यह होता है कि उसके पात्रों के क्रिया कलाप और विचार आदि सजीव–स्वाभाविक प्रतीत हों।

## 4.3 'मैला आँचल' के पात्र

'मैला आँचल' का कथा संसार एक छोटे से गांव में केंद्रित होने पर भी पात्रों से भरापूरा है। 'मैला आँचल' में एक भी ऐसा पात्र नहीं जिसे 'केन्द्रीय' कहा जा सके। रेणु अपने कथ्य के अनुरूप ही अपने पात्रों का संसार गढ़ते हैं। चूंकि मेरीगंज इस उपन्यास के केंद्र में है अतः इसके आधे से अधिक पात्र या तो मेरीगंज के निवासी हैं या मेरीगंज उनका प्रमुख कार्यक्षेत्र है। रेणु जी का चरित्र–चित्रण मनोविज्ञान की आधार–भूमि पर नितांत सप्राण, स्वाभाविक और मौलिक बन पड़ा है।

### 4.3.1 डॉक्टर प्रशान्त :–

यद्यपि 'मैला आँचल' एक नायक–नायिका–विहीन उपन्यास है। इस उपन्यास में किसी भी पात्र के चरित्रांकन को इतनी प्रमुखता नहीं दी गई है कि उसे उपन्यास का नायक कहा जा सके, तथापि जहाँ तक पुरुष पात्रों का सम्बन्ध है डाक्टर प्रशान्त उपन्यास के मुख्यतम पात्रों में से एक है। मेरीगंज के ग्रामीण वातावरण में जहाँ डाक्टर प्रशान्त का शोधकार्य और कमला का प्रेम–प्रसंग भी चलता रहता है जिसकी परिणति उन दोनों के विवाह में होती है।

**अज्ञात कुलशील :–**

डा॰ प्रशान्त के माता–पिता और कुल गोत्र के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है। वह मेरीगंज आता है तो लोग

उससे नाम के साथ–साथ जाति भी पूछते हैं। प्रशान्त अपनी जाति डाक्टर बताता है। जब उससे यह पूछा जाता है कि बंगाली है या बिहारी तो उसका उत्तर है– हिन्दुस्तानी। लोग समझते हैं कि डाक्टर अपनी जाति छिपाता है।

"सच्ची बात यह है कि वह अपनी जाति के बारे में खुद नहीं जानता। यदि उसे अपनी जाति का पता होता तो शायद उसे बताने में झिझक नहीं होती। तब शायद जाति–पाति के भेद–भाव पर से उसका भी पूर्ण विश्वास नहीं हटता। तब शायद ब्राह्मण कहने में वह गर्व अनुभव करता।"

इधर–उधर के लोगों से उसने अपने विषय में जो कुछ सुना है वह इस प्रकार है –

"बचपन से ही वह अपने जन्म की कहानी सुन रहा है। घर की नौकरानी, बाग का माली और पड़ोस का हलवाई भी इसके जन्म की कहानी जानता था। लोग बरबस उसकी ओर उँगली उठाकर कहने लगते थे–उस लड़के को देखते हो जी ? उसे उपाध्याय जी ने कोशी नदी में पाया था। बंगालिन डाक्टरनी ने पाल–पोसकर बड़ा किया है।' फिर लोगों के चेहरों पर जो आश्चर्य की रेखा खिंच जाती थी और आँखों में जो करूणा की हल्की छाया उतर आती थी, उसे प्रशान्त ने सैकड़ों बार देखा है। ..... एक लावारिस लाश को भी लोग वैसी ही दृष्टि से देखते हैं।

प्रशान्त अज्ञात कुलशील है। उसकी माँ ने एक मिट्टी की हाँडी में डालकर बाढ़ से उमड़ती हुई कौशी मैया की गोद में उसे सौंप दिया था। नेपाल के प्रसिद्ध उपाध्याय परिवार ने, नेपाल सरकार द्वारा निष्कासित होकर, उन दिनों सहरसा अंचल में आदर्श आश्रम की स्थापना की थी। एक दिन उपाध्यायजी ने बाढ़ पीड़ितों की हाँडी देखी– नई हाँडी। उनकी स्त्री को कौतूहल हुआ, जरा देखो न, उस हाँडी में क्या है ? नाव झाड़ी के पास पहुँची, पानी के हिलोर से हाँडी हिली और उससे एक साँप गरदन निकालकर फों–फों करने लगा। साँप धीरे–धीरे पानी मे उतर गया और हाँडी से नवजात शिशु के रोने की आवाज आई, मानो माँ ने थपकी देना बन्द कर दिया। .... बस यही उसके जन्म की कथा है, जिसे हर आदमी अपने–अपने ढंग से सुनाता है।

अध्ययन–काल में वह अपने पिता के रूप में 'अनिलकुमार बनर्जी' का फर्जी, नाम लिखता आया है जबकि जाति के कालम में ब्राह्मण भरता आ रहा है–

".... प्रशान्तकुमार, पिता का नाम अनिलकुमार बनर्जी, हिन्दू ब्राह्मण। सब झूठ। बेचारा डॉ॰ अनिलकुमार बनर्जी, नेपाल की तराई के किसी गाँव में अपने परिवार के साथ सुख की नींद सो रहा होगा। प्रशान्तकुमार नामक उसका कोई पुत्र हिन्दू विश्वद्यिालय में नाम लिखा रहा है, ऐसा वह सपना भी नहीं देख सकता। लेकिन प्रशान्त अपने तथाकथित पिता डा॰ अनिलकुमार को जानता है। मैट्रिक परीक्षा के लिए फार्म भरने के दिन डॉ॰ अनिल उसके पिता के रिक्तकोष्ठ में आकर बैठ गए थे।"

**परित्यक्ता बंगालिन युवती द्वारा परिपोषण :–**

शिशु प्रशान्त का पालन–पोषण एक परित्यक्ता बंगालिन युवती द्वारा किया जाता है–

"आदर्श आश्रम में एक दुखिया युवती थी–स्नेहमयी। स्नेहमयी को उसके पति डॉ॰ अनिलकुमार बनर्जी ने त्याग कर नेपालिन से शादी कर ली थी। उपाध्यायजी के आश्रम में रहकर वह हिरण, खरगोश, मयूर और बन्दर के बच्चों पर अपना स्नेह बरसाती रहती थी। तरह–तरह के पिंजड़ों को लेकर वह दिन काट लेती थी। उस दिन जब उपाध्याय दम्पति ने उसकी गोद में सोया हुआ शिशु दिया, तो वह आनन्द–विभोर होकर चीख उठी थी– प्रशान्त ! ..... आमार प्रशान्त ! उस दिन से प्रशान्त स्नेहमयी का एकलौता बेटा हो गया। कुछ दिनों के बाद नेपाल सरकार ने निष्कासन की आज्ञा रद्द करके उपाध्याय परिवार को नेपाल बुला लिया– आदर्श आश्रम के पशु–पक्षियों के साथ। स्नेहमयी और प्रशान्त भी उपाध्याय परिवार के ही सदस्य थे। उपाध्याय जी ने नेपाल की तराई के विराटनगर में आदर्श–विद्यालय की स्थापना की। स्नेहमयी उसी स्कूल में सिलाई–कटाई की मासटरनी नियुक्त हुई।"

प्रशान्त की डाक्टर की पढ़ाई इस अपनायी हुई माँ की इच्छा के ही कारण होती है –

"हिन्दू विश्वविद्यालय से आई॰ एस॰ सी॰ पास करने के बाद वह पटना मेडिकल कालेज में दाखिल हुआ। मां की इच्छा थी कि वह डाक्टर बने। लेकिन अपने प्रशान्त को वह डाक्टर के रूप में नहीं देख पाई। काशीवास करते–करते काशी की किसी गली में वह हमेशा के लिए खो गई। ..... एक बार लाहौर से प्रशान्त के नाम पर एक मनीआर्डर आया था–विजय का आशीर्वाद लेकर भेजने वाली थी– श्रीमती स्नेहमयी चोपड़ा ! कि माँ ने जन्म लेते ही कोशी मैया की गोद में सौंप दिया और दूसरी ने जनसमुद्र की लहरों को समर्पित कर दिया।"

**ग्रामीण लोगों की सेवा की सच्ची भावना :–**

सन् 1942 के देशव्यापी आन्दोलन में प्रशान्त का सम्बन्ध उपाध्याय परिवार से होने के कारण उसे भी नजरबन्द कर लिया गया था। जेल में उसका सम्पर्क विभिन्न दलों के कार्यकर्त्ताओं और नेताओं से हुआ।" ..... सभी दल के लोग उसे प्यार करते थे। अपने इस परिचय का लाभ उठाकर उसने अपनी नियुक्ति गाँव में कराई–

"1946 में जब कांग्रेसी मंत्रिमंडल का गठन हुआ तो एक दिन वह हेल्थ मिनिस्टर के बंगले पर हाजिर हुआ। वह पूर्णिया के किसी गाँव में रहकर मलेरिया और काला आज़ार के सम्बन्ध में रिसर्च करना चाहता है। उसे सरकारी सहायता दी जाए। मिनिस्टर साहब ने कहा था– 'लेकिन सरकार तुम को विदेश भेज रही है। स्कालरशिप....."

"जी मैं विदेश नहीं जाऊँगा," पूर्णिया और सहरसा के नक्शे को फैलाते हुए उसने कहा था– "मैं इसी नक्शे के किसी हिस्से में रहना चाहता हूँ। यह देखिए, यह है सहरसा का वह हिस्सा जहाँ हर साल कोशी का तांडव नृत्य होता है। और यह पूर्णिया का पूर्वी आँचल, जहाँ मलेरिया और काला आजार हर साल मृत्यु की बाढ़ ले आते हैं।"

मिनिस्टर साहब प्रशान्त को अच्छी तरह जानते थे। इस विषय पर प्रशान्त से तर्क में जीतना मुश्किल है। लेकिन सवाल यह है कि ....."

"सवाल जवाब कुछ नहीं, मुझे किसी मलेरिया सेंटर में ही भेज दीजिए।"

"मलेरिया सेंटर में ? तुम एम॰ बी॰ बी॰ एस॰ हो और मलेरिया काला आजार सेंटरों में एल॰ एम॰ सी॰ डाक्टर लिए जाते हैं।"

"जब तक मैं यह रिसर्च पूरा नहीं कर लेता, मैं कुछ भी नहीं हूँ। मेरी डिग्री किस काम की !"

अंततः प्रशान्त की जीत हुई थी और केन्द्रीय सरकार के परामर्श से प्रेस नोट में यह सूचना प्रकाशित की गई कि पूर्णिया जिले के मेरीगंज नामक गांव में मलेरिया स्टेशन खोला गया है–दि स्टेशन विल अंडरटेक मलेरिया एण्ड काला आजार इन्वेस्टिगेशन इन ऑल ऐस्पेक्ट्स– प्रिवेंटिव, क्यूरेटिव एण्ड इकॉनामिक।

प्रशान्त के किसी भी साथी को उसका यह निर्णय पसन्द नहीं आया था और कुछ ने तो इसे उसकी बेवकूफी तक कह दिया था।

"प्रशान्त के इस फैसले को सुनकर मेडिकल कालेज के अधिकारियों, अध्यापकों और विद्यार्थियों पर तरह–तरह की प्रतिक्रिया हुई। मशूहर सर्जन डा॰ लटवर्धन ने कहा – "बेवकूफ है।"

बस एकमात्र उसके प्रिंसिपल ने ही उसे इस निश्चय की सराहना करते हुए कहा था–

"तुमसे यही उम्मीद थी। मैं तुम्हारी सफलता की कामना करता हूं। जब कभी तुम्हें किसी सहायता की आवश्यकता हो, हमें लिखना।"

उसके प्रिंसिपल द्वारा उत्साह–वर्द्धन किए जाने के साथ मद्रास के मेडिकल गजट में भी उसके इस साहसिक कदम की सम्पादकीय लिखकर प्रशंसा की गयी थी। उसके प्रति स्नेहभाव रखने वाली ममता के उद्‌गार थे–

"आखिर तुम्हारा भी माथा खराब हो गया ! तुमने तो कभी बताया नहीं बलिहारी है तुम्हारी ! .... ओह, प्रशान्त, तुम कितने बड़े हो, कितने महान्।...."

प्रशान्त भावुकता–वश ही मेरीगंज में अपनी नियुक्ति नहीं करता अपितु उसके हृदय में मलेरिया और काला आजार के विषय में शोध और निर्धन ग्रामीणों की सच्ची भावना विद्यमान है। ममता को लिखे एक पत्र में वह ग्राम वासियों के विषय में सूचित करता है –

"गाँव के लोग बड़े सीधे दिखते हैं, सीधे का अर्थ यदि अनपढ़, अज्ञान, और अंधविश्वासी हो तो वास्तव में सीधे हैं वे। जहां तक सांसारिक बुद्धि का सवाल है, वे हमारे और तुम्हारे जैसे लोगों को दिन में पांच बार ठग लेंगे। और तारीफ यह है कि तुम ठगी जाकर भी उनकी सरलता पर मुग्ध होने के लिए मजबूर हो जाएगी।"

ग्रामीणों के इलाज के लिए प्रशान्त दवाओं के साथ–साथ अपनी बुद्धि का भी सम्यक् उपयोग करता है। कमला के विषय में वह ममता को लिखता है–

"केस अजीब है। केस–हिस्ट्री और भी दिलचस्प है। तुम्हारी शीला रहती तो आज खुशी से नाचने लगती, हिस्टीरिया, फोबिया, काम–विकृति और हठ–प्रवृत्ति जैसे शब्दों की छड़ी लगा देती। शीला से भेंट हो तो कहना मैंने अपने पोर्टेबल रेडियो से उसके दिमाग को झकझोर कर दूसरी ओर करने की चेष्टा की है।"

मेरीगंज में आकर एक ओर तो वह वहां के आबाल–वृद्ध नर–नारियों के इलाज में लगा रहता है, दूसरी ओर अपने शोध–कार्य में निमग्न रहता है–

"प्यारू को इन चूहों और खरगोशों से बेहद नफरत है। ..... आदमी के इलाज से जी नहीं भरता है तो जानवरों का इलाज करते हैं। दिन–भर पिजड़ी को लेकर पड़े रहते हैं। बुखार देखते हैं, सूई देते है और खून लेते हैं। जब से ये जानवर आये हैं, डाक्टर साहब को प्यारू से बात करने की भी छुट्टी नहीं मिलती।"

यही कारण है कि अवसर मिलते ही वह प्रशान्त के परीक्षणों के हेतु लाए गए जानवरों को भगाता रहता है।

ग्रामवासियों के जीवन को सुख–वैभवपूर्ण और नीरोग बनाने के लिए उसने जो स्वप्न देख रखा है, वह इस प्रकार है –

"वह नये संसार के लिए इन्सान को स्वस्थ और सुन्दर बनाना चाहता था। यहाँ इन्सान है कहाँ ? अभी पहला काम है जानवर को इन्सान बनाना ! उसने ममता को लिखा है –

"यहीं की मिट्टी में बिखरे, लाखों लाख इन्सानों की जिन्दगी के सुनहरे स्वप्नों को बटोरकर, अधूरे अरमानों को बटोरकर, यहाँ के प्राणी के जीवकोष में भर देने की कल्पना मैंने की थी। मैंने कल्पना की थी, हजारों स्वस्थ इन्सान हिमालय की कन्दराओं में त्रिवेणी के संगम पर, अरूण, तिमुर और सुणकोशी के संगम पर एक विशाल डैम बनाने के लिए पर्वत तोड़ परिश्रम कर रहे हैं। ..... लाखों एकड़ बन्ध्या धरती, कोशी कवलित मरी हुई मिट्टी शस्य श्यामला हो उठेगी। कफन जैसे सफेद बालू में भरे मैदान में धानी रंग की जिन्दगी के वेल लग जाएंगे। मकई के खेतों से घास गढ़ती हुई औरतें बेवजह हँस पड़ेंगी। मोती जैसे सफेद दांतों की चमक .....।"

संथाल लोगों को डाक्टर जो परामर्श देता है वह उसके प्रगतिशील दृष्टिकोण का परिचायक है –

"डाक्टर ने कहा है कि तुम लोग ही जमीन के असल मालिक हो। कानून हैं, जिसने तीन साल तक जमीन को जोता बोया है, जमीन उसी की होगी।"

प्रशान्त को कम्यूनिस्ट होने के संदेह में गिरफ्तार किया जाता है तो वह इस बात को छिपाता नहीं है कि बहुत से कम्यूनिस्ट उसके दोस्त हैं।

**कमला के प्रति अनुराग–भाव :–**

कमला को पड़ने वाले हिस्टीरिया के दौरों के संदर्भ में प्रशान्त उसके सम्पर्क में आता है। प्रथम भेंट में ही वह कमला का मन अपनी मीठी बातों से मोह लेता है– हां उसकी मीठी बातों का उद्देश्य कमला की ओर आकर्षण–भाव

न होकर उसे इंजैक्शन या दवा देने के लिए प्रस्तुत करना है। कमला प्रशान्त की जान–लेवा मुस्कराहट से परेशान है। वह अपनी माँ से कहती है कि तुम्हारा डाक्टर तो माटी का महादेव है, जबकि वह रोज शिव की पूजा करती है प्रशान्त उसकी बहकी–बहकी बातें सुनकर समझता है कि वह कुछ–कुछ पागलपन की शिकार है और उसे इंजेक्शन देना चाहता है। पागलपन की बात सुनकर कमला का चेहरा लाल हो उठता है बौर वह ब्लड–प्रेशर की जांच करने वाले प्रशान्त से कह ही देती है –

"हां जी मुझे पगली कहते हो ! लेकिन मुझे पगली बना कौन रहा है ?" कमला की नित्यप्रति की बातों का प्रशान्त के जीवन पर यह प्रभाव पड़ता है कि वह यह मानने को विवश हो जाता है कि कोई दिल नामक ऐसा भाव यंत्र भी है जो बायलॉजी के सिद्धान्तों से परे है–

"डाक्टर की जिन्दगी का एक नया अध्याय शुरु हुआ है। उसने प्रेम, प्यार और स्नेह को बायलॉजी के सिद्धांतों से ही हमेशा मापने की कोशिश की थी। वह हँसकर कहा करता–दिल नाम की कोई चीज आदमी के शरीर में है, हमें नहीं मालूम। पता नहीं आदमी 'लंग्स' को दिल कहता है या हार्ट को। जो भी हो, हार्ट, लंग्स या लीवर का प्रेम से कोई सम्बन्ध नहीं है।"

वह अब यह मानने को तैयार है कि आदमी का दिल होता है, शरीर को चीर–फाड़ कर जिसे हम नहीं पा सकते। वह हार्ट नहीं, वह अगम–अगोचर जैसी चीज हैं, जिसमें दर्द होता है, लेकिन जिसकी दवा –ऐड्रिलिन' नहीं। उस दर्द को मिटा दो। आदमी जानवर हो जाएगा। ..... दिल वह मन्दिर है जिसमें आदमी के अन्दर का देवता वास करता है।"

कमला से मिलने से पूर्व उसने किसी स्त्री को प्रेमिका के रूप में देखने की चेष्टा नहीं की है। जिसका मूल कारण उसकी अपनी जन्म–कथा में निहित है –

"पतिता, निर्वासिता और समाज की दृष्टि में सबसे नीच मां की गोद में वह क्षण भर के लिए अपना सिर रखने के लिए व्याकुल हो जाता है। किसी स्त्री को प्रेमिका के रूप में कभी देखने की चेष्टा नहीं की। वह मन ही मन बीमार हो गया था। एक जवान आदमी को शारीरिक भूख नहीं लगे तो वह निश्चय ही बीमार है, अथवा एब्नार्मल है।"

हां कमला के संसर्ग में आकर जो स्वयं को शकुन्तला और प्रशान्त को दुष्यंत, या स्वयं को दमयंती और प्रशान्त को नल मानती है, प्रशांत को सर्वथा एक नयी अनुभूति होती है–

"डाक्टर ने एक नये मोड़ पर मुड़कर देखा, दुनिया कितनी सुन्दर है ! "

जीवन के प्रेम–मय सुनहरे पक्ष से अब तक अछूते रहने वाले प्रशान्त के हृदय में कमला के सम्पर्क के पश्चात् ऐसी भाव लहरियाँ उठने लगती हैं–

"डाक्टर भी किसी की दुलार भरी मीठी धमकियों के सहारे सो जाना चाहता है, गहरी नींद में खो जाना चाहता है। जिन्दगी की जिस डगर पर यह बेतहाशा दौड़ रहा था, उसके अगल–बगल आस–पास, कहीं क्षण–भर सुस्ताने के लिए कोई छाँव नहीं मिली। उसने किसी पेड़ की डाली की शीतल छाया की कल्पना भी नहीं की थी। जीवन की इस नयी पगडण्डी पर पाँव रखते ही उसे बड़े जोरों की थकावट मालूम हो रही है। वह राह की खूबसूरती पर मुग्ध होकर छाँव मे ंपड़ा नही रह सकेगा। मंजिल तक पहुँचने का यह कितना जबरदस्त रास्ता है। जो राही को मंजिल तक पहुंचने की प्रेरणा देता है। ... वह क्षंण भर सुस्ताने के लिए उदार छाया चाहता है प्यार ! ..... "

कमला और प्रशान्त का एक–दूसरे के प्रति आकर्षण दिन प्रतिदिन बढ़ता जाता है और पहले तो प्रशान्त ही चाय पीने और कमला को देखने के लिए तहसीलदार साहब के यहां जाया करता था जबकि बाद में कमला उसके यहाँ आने और गई रात लौटने लगती है। परिणाम यही निकलता है कि युवक–युवतियों के नित्य–प्रति एकांत में मिलते रहने पर संभावना की जा सकती है। प्रशान्त की कम्यूनिस्ट होने के संदेह में गिरफ्तारी के पश्चात् रहस्योद्घाटन होता है कि कमला गर्भवती है। कमला के माता पिता को संदेह है कि प्रशान्त कमला को नहीं अपनाएगा किन्तु वह जेल से मुक्त होकर मेरीगंज आ पहुंचता है और तहसीलदार साहब की चरण–धूलि लेकर इस बात को स्पष्ट कर देता है कि वह कमला को अपनाने के लिए सहर्ष प्रस्तुत है। यही नहीं एक बार तो प्रशान्त निराश हो उठा था किन्तु अंततः अपना यह निश्चय व्यक्त करता है कि वह मेरीगंज मे ंही रहते हुए प्यार की खेती मे ंसाधना लीन रहेगा।

"ममता ! मैं फिर काम शुरु करूंगा– यहीं इसी गाँव में। मैं प्यार की खेती करना चाहता हूँ। आँसू से भीगी हुई धरती पर प्यार के पौधें लहराएँगे। मैं साधना करूँगा, ग्रामवासिनी भारतमाता के मैले आँचल तले। कम–से–कम एक ही गाँव के कुछ प्राणियों के मुरझाये होठों पर मुस्कराहट लौटा सकूँ, उनके हृदय में आशा विश्वास को प्रतिष्ठित कर सकूँ।"

**भावुकता :–**

प्रशान्त यद्यपि पेशे से डाक्टर है जो अपने व्यवसाय के प्रभाव–स्वरूप किंचित् अकरूण और शुष्क–नीरस हो जाते हैं, किन्तु प्रशान्त इसके विपरीत भावुकता से ओत–प्रोत है। प्रथमतः तो वह अपनी उस अभागिनी किन्तु क्रूर हृदया जननी के प्रति ही जब तब भावुक हो उठता है जिसने उसे जन्म देते ही काशी में प्रवाहित कर दिया था–

"अंधेरे में एक अभागिनी माँ, दिल का दर्द दबाए और आँचल में अपने नवजात शिशु को छिपाए खड़ी है। एक काली और भयावनी छाया आकर हाथ बढ़ाती है, माँ अन्तिम बार अपने कलेजे के टुकड़े को, रक्त के पिंड को, एक पलक निहारती है, चूमती हैं। भयावनी छाया उसके हाथ से शिशु को छीन लेती है। माँ दाँतों से ओंठ दबाए खड़ी रह जाती है।

डाक्टर ने अपनी माँ के स्नेह को अंधेरे में खड़ी 'सिल्हुटेड' तस्वीर सी माँ के दुलार की कीमत को समझने की चेष्टा की है। वह गला टीप कर मार भी तो सकती थी। खटमल को मसलने के लिए अँगुलियों पर जितना जोर डालना पड़ता है, उस पाँच घंटे की उम्र के शिशु की जीवन–लीला को समाप्त करने के लिए उतने–से जोर की ही

आवश्यकता थी। माँ ऐसा नहीं कर सकी।" शायद उसने चेष्टा की होगी। गले पर एक–दो बार उंगलियाँ गई होंगी। सोया हुआ शिशु मुस्कुरा पड़ा होगा और वह उसे सहलाने लगी होगी।... उसने अपनी बेबस लाचार और अभागिनी माँ के मन में उठने वाले तूफ़ान के झकोरे की कल्पना की है। ..... वह अपनी माँ के पवित्र स्नेह का, अपराजित प्यार का जीता जागता प्रमाण है।"

अपनी अभागिनी माँ की कल्पना में डूबने वाला प्रशान्त जब किसी ऐसी ही अभागिनी माँ की कहानी सुनता है तो विभोर हो उठता है –

"किसी भी अभागिन माँ की कहानी सुनते ही वह मन ही मन उसकी भक्ति करने लगता है। पतिता, निर्वासिता और समाज की दृष्टि में सबसे नीच माँ की गोद में वह क्षण–भर के लिए अपना सिर रखने के लिए व्याकुल हो जाता है।"

इस जगत में व्याप्त आपा–धापी और स्वार्थपरता की भावना से व्याकुल होकर वह सोचता है कि लोग धरती–माँ की हत्या करके रहेंगे –

".... माँ ! माँ वसुन्धरा, धरती माता ! माँ अपने पुत्र को नहीं मार सकी, लेकिन पुत्र अपनी माँ को गला टीपकर मार देगा। शस्य श्यामला ! .....

"भारतमाता ग्रामवासिनी

खेतों मे फैला है श्यामल

धूल भरा मैला–सा आँचल।"

अपने बीमारी विषयक शोध–कार्य में सफल होकर भी वह स्वयं को इस दृष्टि से असफल समझता है कि ग्रामीणों की सबसे बड़ी बीमारी भूख है जो लाइलाज है–

"आम से लदे हुए पेड़ों को देखने के पहले उसकी आँखें इनसान के उन टिकोलों पर पड़ती है, जिन्हे आमों की गुठलियों से सूखे गूदे की टोटी पर जिन्दा रहना है। और ऐसे इनसान ? भूखे, अतृप्त इनसानों की आत्मा कभी भ्रष्ट हो या कभी विद्रोह नहीं करे ऐसी आशा करना ही बेवकूफी है। .... डाक्टर यहाँ की गरीबी और बेबसी को देखकर आश्चर्यचकित होता है। वह संतोष कितना महान् है जिसके सहारे यह वर्ग जी रहा है ? आखिर वह कौन सा कठोर विधान है, जिसने हजारों–हजार क्षुधितों को अनुशासन में बाँध रखा है।

.....कफ से जकड़े हुए दोनों फेफड़े, ओढ़ने को वस्त्र नहीं, सोने को चटाई नहीं, पुआल भी नहीं ! भीगी हुई धरती पर लेटा न्यूमोनिया का रोगी मरता है।

निराश–हताश होकर वह सोचता है –

"क्या करेगा यह संजीवनी बूटी खोजकर ? उसे नहीं चाहिए संजीवनी। भूख और बेबसी से छटपटाकर मरने

से अच्छा है मैलेग्नेंट मलेरिया से बेहोश होकर मर जाना। तिल–तिलकर, घुल–घुलकर मरने के लिए उन्हें ज़िन्दा रखना बहुत बड़ी क्रूरता होगी। ..... यहाँ इन्सान है कहाँ ? ..... अभी पहला काम है, जानवर को इन्सान बनाना।"

जानवर को इन्सान बनाने की दिशा में ही वह संथालों को यह समझाता है कि जमीन की तीन वर्ष तक जुताई–बुवाई करने वाला ही उसका असली मालिक हो जाता है, जिससे वहाँ के संथाल जमींदारों के प्रति विद्रोह कर देते हैं।

**अनथक शोध–लगन :–**

प्रशान्त के हृदय में मलेरिया और काला–आजार को निर्मूल करने के लिए शीघ्र–कार्य करने की अनथक लगन विद्यमान है जिससे इन रोगों से लाखों की संख्या में अपने जीवन से हाथ धोने वाले नर–नारियों की जीवन रक्षा की जा सके। अपनी इस लगन के कारण ही वह पूर्णिया जिले के मेरीगंज नामक ऐसे गाँव को अपना शोध–क्षेत्र चुनता है, जहाँ पर जाने को उसके साथी डाक्टर और प्राध्यापक मूर्खतापूर्ण एवं भावुकता परक कदम घोषित करते हैं। हां वह स्वयं को ग्रामीण वातावरण के अनुकूल ढाल लेता है और जनकल्याण के विषय में सोचता है–

"वह लोक–कल्याण करना चाहता है। मनुष्य के जीवन को क्षय करने वाले रोगों के मूल का पता लगाकर नई दवा का आविष्कार करेगा। रोग के कीड़े नष्ट हो जाएँगे, इन्सान स्वस्थ हो जाएगा। दुनिया–भर के मेडिकल कॉलेजों में उसके नाम की चर्चा होगी।"

प्रशान्त बन्दरों, खरगोशों आदि पर प्रयोग करके अपना शोध–कार्य दिन –रात जारी रखता है और उसकी यह लगन अपना रंग भी दिखाती है, जब मेडिकल गजट में उसके शोधकार्य की भूरि–भूरि प्रशंसा की जाती है–

"हमें विश्वास हो गया है कि डा॰ प्रशान्त मलेरिया और काला आजार के बारे में ऐसे तथ्यों का उद्‌घाटन करेंगे जिससे हम अब तक अनभिज्ञ थे। ... नई दवा तथा नये उपचार की संभावनाओं से सारा मेडिकल–संसार उनकी ओर निगाहें लगाए बैठा है।"

इसका कारण यही है कि उसने मच्छरों की आदतों और अंडे देने आदि की विधियों का बड़ी बारीकी से अध्ययन किया है–

"एमोफिलीज के भी कई ग्रुप होते हैं। हर ग्रुप के अलग–अलग ढंग हैं। किन्तु किसी–किसी ग्रुप में भी तरह–तरह के छोटे–छोटे सब–ग्रुप होते हैं जिनकी आदतों और प्रजनन ऋतु में विभिन्नता पाई गई है। .... उनके लुकने–छिपने, पसन्दगी और नापसन्दीदगी में भी फर्क है। ..... मैंने एक ही ग्रुप के मच्छरों को तीन किस्म से अंडे छोड़ते पाया है और हर ग्रुप में कुछ दल–विशेष हैं जो हवा में अंडे छोड़ते हैं। .... इनकी चालाकी और बुद्धिमानी का सबसे बड़ा दिलचस्प उदाहरण यह है कि एक ही मौसम में, एक ही ग्रुप के मच्छर हमलों के लिए पन्द्रह तरह के तरीके व्यवहार करते हैं। ..... कुछ तो एकदम ड्राइव फ्लाइंग करके ही हमला करते हैं।"

अपने इस सूक्ष्म अध्ययन के बलबूते पर वह अपने कॉलेज का होनहार छात्र माना जाता है।

"पटना मेडिकल कालेज को इस बात पर गर्व है कि बिहार का एक मात्र मैलेरियालॉजिस्ट डा॰ प्रशान्त उसी की देन है।"

गाँव वालों की निर्धनता और मूढ़ता से खीझकर प्रशान्त एक बार तो निराश हो उठता है। वह उनकी सबसे बड़ी बीमारी निर्धनता और अभाव मानता है जिनका उसके पास कोई इलाज नहीं है। इसके साथ ही उसे ग्राम–वासियों की इस मूढ़ता का सामना भी करना पड़ता है कि वे कुओं में हैजे से बचने की लाल दवा के डालने को हैजा फैलाने का षड्यंत्र मानते है। इसी प्रकार वे सूई नहीं लगवाना चाहते, क्योंकि उनका विश्वास है कि ऐसा, करके डाक्टर उनके शरीर की शक्ति को कम करना चाहता है। ज्योतिषी काका उसके परम शत्रु हैं क्योंकि प्रशान्त के आने पर उनकी गाँव में पूछ नहीं रही है और वे यह बात भी फैला देते हैं कि डाक्टर जरमनी वालों का जासूस है, किन्तु जेल से छूटकर आने पर वह पुनः यह निश्चय करता है कि मैं मेरीगंज में ही रहते हुए यहाँ के निवासियों की दशा सुधारने की चेष्टा करूंगा।

**डाक्टरी के नाम पर लूट नहीं मचाता :–**

प्रशान्त के चरित्र की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि डाक्टरी के नाम पर ग्राम के लोगों को उल्टे उस्तरे से नहीं मूँड़ता। आम डाक्टरों का रवैया यह होता है कि वे मरीजों को लाल पानी देकर अपनी जेबें भरते रहते हैं किन्तु प्रशान्त का दृष्टिकोण इस तथ्य के सर्वथा विपरीत है। निम्नांकित उदाहरण इस तथ्य का उत्तम परिचायक है–

"डाक्टर साहब !"

'क्या है ?"

"जरा चलिए ! मेरी बहन को कै हो रही है।"

"पेट भी चलता है ?"

"जी !"

डॉक्टर तुरंत तैयार होकर चल देता है। पास के ही गाँव में जाना है। ..... डॉयरिया होगा। लेकिन 'सेलाइन सेपरेटस' भी ले लेना अच्छा होगा।

"तीस बार पेट चला है ?"

बिछावन पर पड़ी हुई युवती पीली पड़ गई है। उसके हाथ–पाँव अकड़ रहे हैं। पेशाब बंद है। हैजा ही है। डॉक्टर 'सेलाइन आपरेटस' ठीक करता है। स्पिरिट स्टोव जलाता है, नार्मल सेलाइन की बोतल निकालता है। बूढ़ा बाप हाथ जोड़कर कुछ कहना चाहता है, और आखिर कह ही डालता है, "डाक्टर साहब, यह जो जक्शैन दे रहे हैं इसका फीस कितना होगा ?"

छोटे जकसैन का फीस तो दो रुपया है। इतने बड़े जकसैन का तो जरूर पचास रुपैया होगा।

"क्यों ? पचास रुपैया", डॉक्टर मुस्कराता है।

"तो रहने दीजिए । कोई दवा ही दे दीजिए।"

"दवा से कोई फायदा नहीं होगा।"

"लेकिन मेरे पास इतने रुपये कहाँ है ?"

"बैल बेच डालो," डॉक्टर पहले की तरह मुस्कराते हुए सेलाइन देने की तैयारी कर रहा है।

"डाक्टर बाबू, बैल बेच दूँगा तो खेती कैसे करूँगा , बाल–बच्चे भूखों मर जाएँगे। ..... लड़की की बीमारी है।"

कहना न होगा कि प्रशान्त इस निर्धन व्यक्ति से कुछ भी नहीं लेता, या लेता है तो मात्र दवा की कीमत ही।

गाँव में हैजा फैलने पर यदि प्रशान्त चाहता तो पहले बीमारी को फैल जाने देता और बाद में अपनी जेबें भरता, किन्तु वह तो कालीचरण और बालदेव आदि लोगों की सहायता लेकर कुओं में लाल दवा डालता है और लोगों को बलात् हैजा के टीके लगाता है। हैजे को संक्रामक रूप से फैलने से रोकने में किए अनथक प्रयत्नों के फलस्वरूप प्रशान्त की देवता के रूप में प्रशंसा होने लगती है–

"घर–घर में एक–दो आदमी बीमार थे, लेकिन डॉक्टर देवता है। दिन– रात कभी एक पल चैन से नहीं बैठा। एक पैसा भी फीस नहीं ली और मुफ्त में रात–रात भर जागकर लोगों का इलाज करते रहे। रेसमनलाल कोयरी के इकलौते बेटे को जम के मुँह से छुड़ा लिया। रेसम ने डॉक्टर की खुशी–खुशी एक गाय बख्शीश दी, लेकिन डॉक्टर साहब ने कहा– "अपने लड़के को इस गाय का दूध पिलाओ। दूध बिक्री मत करो। यही हमारा बक्सीस है"।

हैजे के रोगियों की देखभाल में रात–दिन लगे रहने के कारण प्रशान्त पन्द्रह दिन तक कमला को देखने नहीं जा पाता। कमला उसके बिगड़े स्वास्थ्य को देखकर चिन्तित हो उठती है।

"लेकिन डॉक्टर को देखते ही वह सब कुछ भूल गई। डॉक्टर का चेहरा एक दम लाल हो गया है। आँखें धँस गई हैं। प्यारू ठीक ही कहता था, 'डॉक्टर साहब दुनिया भर को आराम करवा रहे हैं, लेकिन खुद बीमार होते जा रहे हैं। खाना–पीना तो एक दम कम हो गया है।"

**विनोद–प्रिय एंव सहृदय :–**

प्रशान्त स्वभाव से विनोद–प्रिय व्यक्ति है। गाँव का कोई भी पर्व–त्योहार या खेल–तमाशा हो उसमें वह खुलकर भाग लेता है। बिरपद नाच को देखना अच्छा नहीं माना जाता किन्तु वह उसे रूचिपूर्वक देखता है। होली के पर्व पर वह कालीचरन को रंग के लिए अपनी जेब से दस रुपए देता है। पारबती मौसी गाँव में डाइन के नाम से प्रसिद्ध है। किन्तु वह इस अभागी नारी की व्यथा को समझता है, जिसका परिणाम यह निकलता है कि मौसी

उसे अपने पुत्र की भाँति प्रेम करती है। वह मौसी के धेवते गनेश और अपने व्यक्तिगत सेवा करने वाले प्यारू के लिए जेल से भी मनिआर्डर भेजता रहता है, जो उसकी सहृदयता के ज्वलंत प्रमाण हैं। उसे गिरफ्तार करने के लिए आप दारोगा से वह जिस ढंग से बातें करता है, वे उसकी विनोद–प्रियता का परिचायक है –

"आपको ..... बहुत लड़कियों से ताल्लुक रहा है।"

"रहा है। कम–से–कम .... चार सौ लड़कियों के साथ मैं दिन–रात रह चुका हूँ। डॉक्टर मुस्कराता है।

"चार सौ !" ..... चार ..... चार सौ ? बच्चू ..... इतनी लड़कियाँ कहाँ से मिली ?"

"मैडिकल कॉलिज हास्पिटल में।"

'ओ ! .... नहीं, मेरे पूछने का मतलब है कि भले घर की लड़कियों ..... ?

"क्यों, हॉस्पिटल में भले घर की लड़कियाँ नहीं जातीं ?

"मेरा मतलब ....। खैर छोड़िए इन बातों को ।"

संक्षेप में कहा जा सकता है कि प्रशान्त 'मैला आँचल' के प्रमुखतम पात्रो में से एक है। इस अज्ञात कुल–शील डॉक्टर के हृदय में मानवता की प्रखर भावना विद्यमान है। उसमें शोध–लगन भी ऐसी है जिसके कारण वह अखिल भारतीय स्तर पर प्रशंसा का पात्र बनता है।

### 4.3.2 कालीचरण

कालीचरण को 'मैला आँचल' का सर्वाधिक क्रियाशील, निष्ठावान और प्रिय पात्र कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी। उपन्यास के जिस किसी भी परिच्छेद में कालीचरण का वर्णन आता है, उसकी तेजस्विता के समक्ष अन्य सभी पात्र निष्प्रभ पड़ जाते हैं। अन्याय का विरोध करने वाले पात्रों में कालीचरन अद्वितीय है। ऐसा प्रतीत होता है कि उपन्यासकार का भी इस पात्र के प्रति ममत्वभाव रहा है । उपन्यास का एक भी ऐसा प्रसंग नहीं है जिसमें कालीचरण हमारी सहानुभूति और प्रसन्नता की भावना खोता हो। आलोच्य उपन्यास में उसके व्यक्तित्व और चरित्र के निम्नांकित पक्ष अधिक उभरे हैं –

#### बलवान एवं साहसी

कालीचरण एक कसरती नवयुवक है, जिसके शरीर में अपार बल है। लक्ष्मी को उसे देखकर आबलूसी मूर्ति की याद आ जाती है –

"लछमी देखती है कालीचरण को ..... उस बार परयागजी के जादूघर में एक आबलूस की मूर्ति देखी थी, ठीक ऐसी ही।"

शरीर से ताकतवर होने के कारण ही उसकी गाँव में धाक है। गुअर टोली के नवयुवक उसके अन्धभक्त हैं और उसके लिए खून–पसीना एक करने की तैयारी में रहते हैं। जब उसे कहीं से यह मिथ्या समाचार मिलता है कि हरगौरी ने बालदेव को जूतो से मारा है तो वह प्रतिज्ञा कर लेता है कि मैं हरगौरी का खून पीकर रहूँगा। उसके भय से हरगौरी की माँ चिल्ला उठती है –

"अरे बेटा रे ! गौरी बेटा रे ! ..... आंगन में आ जा बेटा रे ! गुअर टोली का कलिया पगला गया है।"

उसे गुअर टोली के रौदी बुढ़ा बताया है –

गुअर टोली में बूढ़े–बच्चे खेल रहे हैं कि हरगौरी ने बालदेव को जूते मारा है। कुकरू का बेटा कालीचरण काली किरिया (कसम) खाया है हरगौरी का खून पीएंगे। ..... आँगन में आ जाओ गौरी के बाबू।"

बालदेव कालीचरण से कहते हैं –

"कालीचरण, तुम बहुत बहादुर नौजमान हो। लेकिन जोस में होस रखना चाहिए। हम खुस हैं, लेकिन उपवास करेंगे।"

"सचमुच यदि उस दिन बालदेवजी ठीक समय पर नहीं आ जाते तो कालीचरण इस पार चाहे उस पार कर देता।"

गाँव वालों की दृष्टि में कालीचरन उपद्रवी है। खेलावन यादव उसके विषय में कहते हैं –

"लेकिन भाई बालदेव, हम ठहरे सीधे–सीधे आदमी। कलिया पर नजर रखना। उसमें और भी बहुत गुन हैं, सो तो तुमको मालूम हो ही जाएगा किसी किस्म का उपद्रो करेगा तो हम जिम्मेवार नहीं हैं। पीछे यादव टोली मुखिया के ऊपर बात न आवे।"

कालीचरण की देख–रेख में गाँव का अखाड़ा खूब जमता है–

"लेकिन कालीचरण का अखाड़ा बन्द नहीं हो सकता। ढोल की आवाज में कुछ ऐसी बात है कि कुश्ती लड़ने वाले नौजवानों के खून को गर्म कर देता है।

उपन्यासकार ने कालीचरण और सोमा जट के शारीरिक पौरूष और गठन की तुलना करते हुए कहा है कि उसके शरीर में हाथी–दाँत जैसा कड़ापन है।

"सोमा का शरीर कालीचरण से भी ज्यादा बुलन्द है। पुलिस–दारोगा की मार से हड्डियाँ टूटकर गिरहा गई हैं। गिरहवाली हड्डी बड़ी मजबूत होती है। कालीचरण की देह में हाथी–दाँत का कड़ापन है और सोमा के चेहरे पर काहे की कठोरता। कालीचरन की आँखों में पानी है और सोमा की आँखें बिल्ली की तरह चमकती हैं।"

सुमरितदास को अपनी पार्टी के विरूद्ध ऊल–जलूल प्रोपेगंडा करते पाकर कालीचरन रुद्र–रूप धारण कर लेता है–

"सुस्लिग मत कहिए सोसलिस्ट कहिए। ... बात तो सही मुँह से निकलती ही नहीं है और मुंसियाती बघारते हैं। ....जमींदार के तहसीलदार से और अपने मैनेजर से भी जाकर कह दो, रैयतों से जमीन छुड़ाना हँसी–ठट्ठा नहीं। पार्टी के ऐजकूटी में परसताब पास हो गया है। संघर्स होगा, समझे संघर्स।

कालीचरण गर्दन ऐंठता हुआ चला गया। करैत साँप को गुस्से में ऐंठते देख है न, ठीक उसी तरह ! सुमरितदास को कँपकँपी लग जाती है। आसपास बैठे हुए लोगों की भी धुकधुकी तेज हो जाती है। अभी तो ऐसा लगता था कि जुलुम हो जाएगा। अलबत देह बनाया है कलिया .... कालीचरण ने। देखकर डर लगता है। सुस्लि–सुस्लि .... सोसलिस्ट पार्टी में जाकर तो और भी तेजी से जल–जलकर रहा है।"

**समाजवादी पार्टी के प्रति दृढ़ आस्था :–**

कालीचरण के विषय में यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि उसमें अपनी समाजवादी पार्टी के प्रति दृढ़ आस्था का भाव विद्यमान है। सोमा जट और बासुदेव द्वारा डकैती डालने का दोष वह अपने सिर पर लेता है और सोचता है कि इससे हमारी पार्टी की बड़ी निन्दा हुई है। वह पार्टी के सेक्रेटरी से मिलकर उसको यह बताने के लिए व्याकुल है कि उस डकैती में उसका रंचमात्र भी हाथ नहीं था।

"कालीचरण अंधेरे में कोठी के बाग के पास छिपा हुआ है। जरा रात हो जाय तब घर जाएगा। वासुदेव और सुनरा को सोमा ने इतना आगे बढ़ा दिया, कालीचरन को ताज्जुब होता है। डकैती के तीन दिन बाद ही कालीचरण को सब पता लग गया था। सिकरेटरी साहब को कहने के लिए वह चुपचाप पुरैनीयाँ गया था, लेकिन सिकरेटरी साहब पटना चले गए थे। सिकरेटरी साहब से सारी बातें कहनी होंगी। चलित्तर कर्मकार में हेल–मेल बढ़ाने का यही फल है। हम पर विश्वास नहीं हुआ उसकी तो–वासुदेव को चारिज दिये कि चलितर से मिलते रहो। बन्दूक पिस्तौल चलितर देता है। काली को जेहल का डर नहीं, पार्टी की कितनी बड़ी बदनामी हुई। अरे बाप ! पटना के बड़े लीडर कैसे मुँह दिखलावेंगे ? सब चौपट कर दिया।"

यही नहीं कि वह सोचकर ही रह जाता हो अपितु अपने प्राणों पर खेलकर भी पार्टी के सेक्रेटरी को इस बात की सूचना देने के लिए जाता है कि उस पर डकैती में भाग लेने का मिथ्या दोषारोपण किया गया है –

"ऐं ? कौन ? कालीचरण ? सेक्रेटरी साहब भी भड़भड़ाकर कमरे से बाहर आते हैं – और कालीचरण ! तुम हो ? इसीलिए शहर में इतना हल्ला हो रहा है ? जेल से भाग आए हो !"

"जी ! लगता है, जाँग में गोली लग गयी है ।"

"तुम्हारे कलेजे पर गोली दागी जानी चाहिए। डकैत ! बदमाश !"

सिकरेटरी साहब ! इसीलिए तो ..... ! इसीलिए तो आप के पास आए हैं। सुन लीजिए ! ..... माँ कसम, गुरु कसम, देवता किरिया। जिस रात ..... उस रात को हम यहीं, जिला पाटी आफिस में थे।

"साथी राजबल्ली जी ! सिकरेटरी साहेब को समझा दीजिएगा। मेरा कोई कसूर नहीं !"

उसके निम्नांकित उद्‌गार भी इस दृष्टि से अवलोकनीय हैं –

"सिकरेटरी साहेब और धरमपुरी जी से मिलकर वह बात करना चाहता है। उसके बाद उसे फाँसी–सूली जो भी मिले वह खुशी–खुशी झेल लेगा। पार्टी की इतनी बड़ी बदनामी कराके वह जी कर ही क्या करेगा !"

**कुशल नेता :–**

कालीचरण में गजब की नेतृत्वशक्ति है। गाँव के नवयुवक उसके इशारों पर नाचते हैं। बालदेव मेरीगंज में कांग्रेसी आंदोलन का सूत्रपात करते हैं, तो उसके जुलूस निकालने का उत्तरदायित्व कालीचरन ही सँभालता है स्वयं बालदेव भी उसके नेतृत्व–शक्ति देखकर चकित रह जाते हैं–

"बालदेव हड़बड़ाकर उठता है, आँखे मलते हुए बाहर निकल आता है। सवेरा हो गया है। गांव भर के नौजवानों को बटोंरकर, जुलूस बनाकर, कालीचरण जय–जय कार करता हुआ जा रहा है। वाह रे कालीचरण ! बुद्धिमान है, बहादुर भी है और बुद्धिमान भी। यह पुलोगराम कब बनाया था , रात में ही शायद ! जरूर मेरीगंज भी चन्ननपट्टी की तरह नाम करेगा।

पुरैनियाँ में मिनिस्टर साहब के आने पर मेरीगंज से बालदेव जो जुलूस ले जाते है, उसका भार कालीचरण ही सँभालता है –

"गिनती करो। कितनी औरत, कितने मरद ? अजी बच्चों को मत लो, झंझट होगा। कालीचरण और गूदर सबों का देह छू–छूकर गिनते हैं। कालीचरण कहात है–पाँच कोरी चार औरत। गूदर हिसाब करता है–चार कोरी दस मरद।

सबसे पहले कालीचरण नारा लगाएगा–इनकिलाब, तब तुम सब एक साथ कहना–जिन्दाबाध। वैसे गड़बड़ा जाता है। कालीचरण कहेगा–अंग्रेजी राज, तुम लोग कहना–नास हो। लगाओं लारा कालीचरण। कालीचरण छाती का जोर लगाकर चिल्लाता है–इनकिलाब।"

वह ग्रामवासियों को राजेन्द्र बाबू के विषय में बताता है–

"मेनिस्टर साबह नहीं, यह रजिन्नर बाबू थे। सुराजी कीर्तन में रोज सुनते हो नहीं .... देसवा के खातिर महरूलहक भइले फकिरवा हो, दीन भेलै राजिन्नर परसाद देसवासियों ! .... देस के खातिर अपना सब हक–हिस्सा, जगह–जमीन, माल मवेशी गँवाकर फकीर हो गए।"

कुछ कालोपरान्त कालीचरण कांग्रेस के स्थान पर सोशलिस्ट पार्टी का सदस्य बन जाता है और इस दल के कार्यकर्ता के रूप में आजीवन निष्ठापूर्वक कार्य करता है। वह अपने साथी वासुदेव को इस दल के विषय में समझाता है।

"यही पार्टी असल पार्टी है। गरम पार्टी है। किरान्ती दल का नाम नहीं सुना था .... बम फोड़ दिया फटाक से मस्ताना भगतसिंह, यह गाना नहीं सुनने हो ? वही पार्टी है। इसमें कोई लीटर नहीं है। सभी साथी है, सभी लीटर हैं। सुना नहीं ! हिंसा बात तो बुरजुआ लोग बोलता है। बालदेवजी तो बुरजुआ है, पूंजीवाद है। ..... इस किताब में सब कुछ लिखा हुआ है। बुरजुआ, पेटी बुरजुआ, पूँजीपति, जालिम जमींदार, कमाने वाला खाएगा, इसके चलते जो कुछ हो।"

अपनी कुशल नेतृत्व शक्ति के कारण वह कांग्रेस के मेम्बरों को अपनी सोशलिस्ट पार्टी के मेम्बर बना लेता है। बालदेव कहते हैं –

"उधर दूसरी पार्टी वालों को मौका मिल गया है। कालीचरण दिन–रात खटता है। हमारे कांगरेस के मैम्बरों को भी सोशलिस्ट गाँव के मुख्यतः कर्मकार वर्ग का नेता बन जाता है–

"गाँव भरके हलवाले, चरवाहों और मजदूरों का नेता कालीचरण है। छोटा नेता वासुदेव।"

होली के अवसर पर कालीचरन का दल ही सबसे बड़ा होता है।

कालीचरण का दल बहुत बड़ा है दो ढोल, एक ढाक है, झाँझ–डम्फर सभी अच्छे गाने वाले भी उसी के दल में हैं। सुन्दरलाल, मुँजी लाल, देवी–दयाल और जोगीड़ा कहने वाला महंथा।" गाँव के छोटे–छोटे दल भी कालीचरण के दल में मिल गए हैं।

गाँव में हैजा फैलता है तो डाक्टर प्रशान्त गाँव वालों को इंजैक्शन लगाना चाहता है। गाँव वाले यह कहकर इंजैक्शन लगंवाने का विरोध करते हैं कि ऐसा करके डाक्टर हैजा फैलाना चाहता है। इस समस्या का हल कालीचरण ही निकालता है।

"एक बात ! आज कोठी का हाट है। हाट लगते ही चारों ओर से घेर लिया जाय और सबों को जबर्दस्ती सुई दी जाय। जो लोग बाकी बच रहेंगे, उन्हें घर पर पकड़ कर दी जाय।"

इसी पद्धति का आश्रय लेते हुए,

"कालीचरण के दल वालों ने हाट को घेर लिया है। डाक्टर साहब आम के पेड़ के नीचे टेबल पर अपना पूरा सामान रखकर तैयार हैं। कालीचरण एक–एक आदमी को पकड़कर लाता है, मास्टरनीजी स्पिरिट में भिगोई हुई रुई बाँह पर मल देती है और डाक्टर साहब सूई गड़ा देते हैं।"

बीमारी के लिए स्वयंसेवको की आवश्यकता पड़ती है तो कालीचरण अपने दल के साठ स्वयंसेवकों के साथ रात को अस्पताल में दाखिल हो जाता है इस अवसर पर वह रोगियों की जो सेवा करता है, उससे उसकी देवता के रूप में प्रशंसा होने लगती है।

"कालीचरण भी बहादुर है। कै और दस्त से भरे बिछावन पर रोगी की सेवा करना, कपड़े धोना दवा डालकर गन्दगी जलाना आदमी का काम नहीं, देवता ही कर सकते हैं।"

'सिखा' पर्व के अवसर पर जमींदार फैजबख्श पड़मार नदी में से मछली पकड़ने पर प्रतिबन्ध लगा देता है, तो कालीचरण एक जत्था लेकर उसके विरोध की घोषणा कर देता है।

"सारे मेरीगंज के मछली मारने वालों का सरदार है कालीचरण। भुरूकवा उगने के समय ही निकलना होगा। बारह कोस जमीन तय करना होगा। इस बार कालीचरण ने ऐलान कर दिया है, जुलूस बनाकर चलना होगा, लाल झंडे के साथ।

बावनदास से यह सुनकर कि दफा 40 की दरखास्तें खारिज हो गई हैं और जमींदार किसानों से जमीनें छुड़ा लेगा कालीचरण की प्रतिक्रिया हैं –

"जमीन छुड़ा लेगा–नहीं, उस दिन हम लोगों की रैली में परसताब पास हो गया। जमींदार लोग रैयतों को जमीन से बेदखल नहीं कर सकते। इसके लिए पार्टी संघर्ष करेगी।"

वह गाँव के लोगों में जमींदारों के प्रति विरोध भाव उत्पन्न करने में सफल हो जाता है और इस हेतु चमार टोली में भात खा लेता है –

"खेलावन के हलवाहों को कालीचरण ने हल जोतने से मना कर दिया है। तहसीलदार हरगौरी सिंह का नाई, धोबी और मोची बन्द करने के लिए कालीचरण घर–घर घूमकर माखन देता है। गाँव से सारे पुराने बाँध टूट गए हैं, मानों बाढ़ का नया पानी आया हो। .....

गरीबों और मजदूरों की आँखें कालीचरण ने खोल दी हैं। सैकड़ों बीघे जमीन वाले किसानों के पास पैसे हैं, पैसे से गरीबों को खरीदकर, गरीबों के गले पर गरीबों के जरिये ही छुरी चलाते हैं। ..... होशियार जिन लोगों ने बन्दों–बस्ती ली है, वे गरीबों की रोटी मारने वाले हैं।

कालीचरण ने चमारटोली में भात खा लिया ?

जात क्या है ? जात दो ही हैं, एक गरीब और दूसरी अमीर। .... खेलावन को देखा यादवों की ही जमीन हड़प रहा है। ..... देख लो आँख खोलकर, गाँव में सिरिफ दो जात हैं। अमीर–गरीब।

**न्याय पक्ष का समर्थक :–**

कालीचरण न्याय–पक्ष का समर्थन अपनी पूरी शक्ति से करता है। लरसिंघ दास जब ऐसा षड्यंत्र रचता है कि मेरीगंज के मठ की महंती उसे मिल जाए और वह लक्ष्मी पर भी अधिकार कर ले, तो लक्ष्मी की फरियाद कोई नहीं सुनता। हाँ, जब उसे लक्ष्मी से वस्तुस्थिति ज्ञात होती है –

"लक्ष्मी दासिन कालीचरण को रो–रोकर सुनाती है – कालीचरण बाबू ! ऐसी खराब–खराब गाली। उफ ! सतगुरु हो ! मैं अब कहाँ जाऊँगी , कौन सहारा है मेरा ?"

तो कालीचरण ही उसको यह आश्वासन देता है –

"अच्छी बात ! आप कोई चिन्ता मत कीजिए !.... बालदेवजी क्या करेंगे, वह तो बुरजुआ है। रोइए मत।"

लरसिंघदास को महंत नियुक्त करने के मसविदे पर बालदेव आदि गाँव के सभी प्रमुख व्यक्ति हस्ताक्षर या अंगूठा निशानी लगा देते हैं। तभी इसमें भंग डालते हुए –

"कालीचरण दलील हाथ में लेकर उठता है – "आचारजजी आप कहते हैं महंत सेवाराम बिना चेला के मरा है। आप क्या गाँव के सभी लोगों को उल्लू ही समझते हैं ?

"कालीचरण !" बालदेवजी मना करते हैं, बैठ जाओ।"

"कालीचरण !" खेलावन यादव डांटते हैं।

लेकिन कालीचरण आज नहीं रूकेगा। कोई हिंसाबाद कहे या अनसन करे ! वह भी माखन दे सकता है।

हम जानते हैं और अच्छी तरह जानते हैं कि रामदास इस मठ का चेला है। उसको महंती का टीका न देकर आप एक नम्बरी बदमाश को महंत बना रहे हैं। ..... मठ में हम लोगों के बाप–दादों ने जमीन दान दी है, यह किसी की बपौती संपत्ति नहीं।"

लरसिंघदास द्वारा अपनी ओर मिलाया हुआ नागा साधु कालीचरण को गाली देकर चुप कराना चाहता ही है कि कालीचरण के साथी वासुदेव आदि द्वारा उसकी जमकर पिटाई की जाती है, और वे उसको और लरसिंघदास को कालीचरण के आदेश पर ही छोड़ते हैं। परिणाम यह निकलता है –

"पंचों को लकवा मार गया है, साधुओं की हालत खराब है।

पंचों के मुँह पर हवाइयाँ उड़ रही हैं। और सबों के बीच, कालीचरण हाथ में दलील लेकर सिकन्नरशाह बादशाह की तरह खड़ा है। पलक मारते ही क्या–से–क्या हो गया ! ... जैसे रामलीला का धनुष जग हो।

"अब आचारजजी आपसे हम अरज करते हैं कि सुरतहाल पर रामदासजी का नाम चढ़ाकर महंती का टीका दे दीजिए।

आचारज गुरु काँपते हुए कहते हैं – "ब–बुआ। हम तो सतगुरु की दया से .... हमको तो लोगों ने कहा कि सेवादास को कोई चेला ही नहीं था। जब रामदास उसका चेला है तो वही महंत होगा। ..... मुंशीजी लिखिए सुरतहाल ले आओं चादर, दही का बरतन।"

आभार ग्रस्त लक्ष्मी कह उठती है – काली बाबू तुम देवता हो !"

कालीचरण कुश्ती लड़ता है। उस्ताद ने कहा है, कुश्ती लड़ने वालों को औरत से पाँच हाथ दूर रहना चाहिए। वह पाँच हाथ से ज्यादा दूरी पर खड़ा है।"

फुलिया और सहदेव मिसिर–कांड में भी कालीचरण के हस्तक्षेप से ही उचित न्याय मिल पाता है। गाँव की उच्च जातियों के लोग पंच हैं और फुलिया के पिता पर सहदेव मिसिर का कर्ज भी है अतः दबाव और भेदभाव के कारण ऐसा फैसला सुनाया जाने लगता है जिसमें सहदेस मिसिर को निर्दोष घोषित किया जाने लगता है, किन्तु तभी –

"कालीचरण कैसे चुप रह सकता है। पंचायत में एकतरफा बात नहीं होनी चाहिए। रबिया और सोनमा पार्टी का मेम्बर हैं। यह तो पंचायत नही मुंह–देखी है। कालीचरन कैसे चुप रह सकता है"–'सिंहजी जरा हमको भी कुछ पूछने दीजिए।'

पंचायत के सभी पंचों की निगाहें अचानक कालीचरण की ओर मुड़ गई ज्योतिषीजी एतराज करते हैं–कालीचरण को हम पंच नहीं मानते।"

"तो फिर पहले इसी बात का फैसला हो जाए कि पंचायत के कितने लोग हमको पंच मानते हैं और कितने लोग नहीं। एक आदमी के चाहने और न चाहने से क्या होता है ! .....अच्छा पंच परमेसर ! क्या हमको इस पंचायत में बैठने, बोलने और राय देने का हक नहीं ? क्या हम इस गाँव के बासिन्दे नहीं है ? कालीचरण खड़ा होकर कहता है यदि आप लोग हमको पंच मानते हैं तो हाथ उठाइए।'

गुमसुम बैठे हुए सैकड़ों मूक जानवरों के सिर में मानो अरना भैसा के सींग जग गए। सैकड़ों हाथ उठ गए। .... एक दो ... तीन .... चार .... पांच एक सौ पाँच।

एक सौ पाँच अब जो लोग हमाके पंच नहीं मानते, हाथ उठाएँ। ... एक, दो तीन ... चार.... पाँच...पन्द्रह।

सिर्फ पन्द्रह। सिंघजी को विश्वास नहीं होता है। खुद गिनते हैं । नजरत और ब्राह्मण टोली के लोग कहाँ चले गए ? जोतखीजी के लड़के नामलरैन ने भी कलिया के पक्ष में हाथ उठाया है।"

कालीचरण फुलिया, उसके पिता आदि से पूछताछ करता है, तो सहदेव मिसिर की पोल खुल जाती है। राजपूत टोली द्वारा सभा भंग करने की चेष्टा की जाती है और वे पंचायत से उठ जाते हैं। कालीचरण फैसला सुनाता है–

"तो पंचायत का यह फैसला है कि मँहगूदाम अपनी बेटी फुलिया, का चुमोना खलासी के साथ करा दे और आज से सभी टोले के लोग बाबू लोगों पर नजर रखें।"

पंचायत के सभी पंच एक स्वर से कालीचरण की राय का समर्थन करते हैं। जोतखी जी भी हाथ उठाते हैं और बालदेव जी भी। ..... वह मेहगूदास को यह आवश्वासन भी देता है कि यदि सहदेव मिसिर झूठी नालिस करेगा तो सभी पंच तुम्हारी गवाही देंगे।

कालीचरण के विषय में लछमी की यह राय उचित ही है –

"कालीचरण असल नियायी आदमी है। गाँव के सभी बड़े लोग सिर्फ कहने को बड़े हैं। काली बाबू का सुभाव जरा तिब्र है, लेकिन दुनिया के लोग अब इतने कुटिल हो गए हैं कि सीधे लोगों की यहाँ गुजर नहीं। फिर सुभाव में जरा कड़ापन तो सुपुरुख का लच्छन है।"

महंत रामदास को भय है कि यदि उसने लक्ष्मी से कुछ छेड़खानी की तो वह कालीचरण से कह देगी, और वह निश्चय ही उसका पक्ष लेगा–

"महंत रामदास सोच–विचार कर देखते हैं, कालीचरण के डर से ही वह प्यासा है। कोई बात हुई कि लक्ष्मी उससे कह देगी और उसके बाद ? चादर टीका के दिन कालीचरण और उसके गुर्गों ने जो कांड किया था, उसे भूलना मुश्किल है। और उन्हीं की बदौलत तो रामदास महंत बना है।"

होली के मौके पर किसी भी ग्रामवासी का यह साहस नहीं होता कि वह प्रशान्त पर रंग डाले। मात्र कालीचरण ही उस पर रंग डालता है और गनेश को होली खिलाने ले जाता है। मौसी का आशीर्वाद है – जुग–जुग जियो काली बेटा। डाक्टर की टिप्पणी है – बड़ा मस्त नौजवान है।"

**सच्चा पहलवान :–**

कालीचरण पहलवान है और वह अपने उस्ताद की इस शिक्षा का बहुत समय तक पालन करता है कि जब तक पहलवानी करते हो, स्त्रियों से पांच हाथ दूर खड़े होना। लक्ष्मी के अनुनय पर वह लहसिंघदास और नागा बाबा को पिटवाकर भगा देता है, किन्तु लक्ष्मी से बातें करते हुए वह उससे पांच हाथ से भी अधिक दूरी पर खड़ा होता है। उसके बाद भी लक्ष्मी की दशा ऐसी है कि –

"लक्ष्मी सतगुरु वचनामृत बरसाकर शांत करने की चेष्टा करती है। सतगुरु वचनामृत से बढ़कर तन के ताप को शीतल करती है कालीचरण की याद।"

किन्तु कालीचरण उससे सदैव एक निश्चित दूरी बनाए रखता है यद्यपि–

"कालीचरण रोज मठ पर आता है एक बार, थोड़ी देर के लिए ही जरूर आता है। कभी पार्टी के लिए चंदा, आफिस घर बनाने के लिए बाँस–रबड़ मांगने आता है।"

नारी स्वभावतः ही अपने उपकारी की ओर झुकती है अतः रामदास को कालीचरण का बार–बार मठ पर आना अखरता है, किन्तु वस्तुस्थिति इसके सर्वथा विपरीत है –

"महंत रामदास को पहले कालीचरण पर बड़ा संदेह था। जब वह मठ पर आता तो महंत साहब छिपकर लक्ष्मी और काली की बातें सुनते थे, बाँस की टट्टी में छेद करके देखते थे। लेकिन कालीचरण हमेशा लक्ष्मी से चार हाथ दूर ही हटकर खड़ा रहता था। उसकी बोली में भी माया की मिलावट नहीं रहती थी। लछमी से बातें करते समय कभी उसकी पलकें शरमा कर झुकती नहीं थी। बहुत कम लोगों को ऐसा देखा है रामदास ने। कालीचरण को बस अपनी सुशलिस्ट पार्टी से जरूरत है, लाल झंडा और सुशलिट पार्टी को वह औरत की तरह प्यार करता है। ..... उस पर संदेह करना बेकार है।"

हाँ बीमार मंगला देवी के सम्पर्क में आकर उसका नारियों से पाँच हाथ दूर रहने का व्रत भंग हो जाता है। मंगला को वह मास्टरनी जी कहता है किन्तु वह तभी दवा पीती है जब उसके आग्रह पर कालीचरण उसे मंगला कहकर सम्बोधित करता है –

"कालीचरण का व्रत टूट गया है। उसके पहलवान गुरु ने कहा था– पट्ठे ! जब तक अखाड़े की मिट्टी देह में पूरी तरह रमे नहीं, औरतों से पाँच हाथ दूर रहना। कालीचरण का ब्रत टूट गया। पाँच हाथ दूर रहने से लक्ष्मी की सेवा नहीं की जा सकती थी। बिछावन और कपड़े बदलते समय, देह पोंछ देने के समय कालीचरण को गुरुजी की बात याद आती थी, लेकिन क्या किया जाय ?"

कालीचरण को मंगला की कुशल–मंगल का इतना ध्यान रहने लगता है कि वह शहर से उसके लिए बिहदाना और संतोला भेजता है तथा सोचता है कि मेरी अनुपस्थिति में मंगला इनको छुएगी भी नहीं। मंगला भी उसको ठीक ही झिड़कती है –

डाक्टर साहब ने कहा था। मंगला बनावटी गुस्सा दिखाते हुए कहती है, डाक्टर साहब ने कहा था कि खुद भूखे रहकर सन्तरा, बेदाना और बिस्कुट खरीद लाना।" अंततः वह मंगला को अपने घर ले आता है और दोनों पति–पत्नी की तरह रहने लगते हैं। उसकी गिरफ्तारी भी मंगला के यहाँ से ही होती है जब वह गुप्त रीति से उससे मिलने जाता है और पुलिस सुराग पाकर उसको पकड़ लेती है।

**कुशल वक्ता :–**

कालीचरण पढ़ा–लिखा नहीं है फिर भी उसमें गजब की भाषण–शक्ति विद्यमान है। लरसिंघदास के स्थान पर रामदास को महंत बनवाने में यद्यपि उसकी शारीरिक शक्ति का भी हाथ है, तो भी उसके द्वारा प्रस्तुत किया गया यह तर्क कम महत्वपूर्ण नहीं है कि मठ के लिए हमारे बाप–दादों ने, जमीन दी थी। इसी प्रकार फुलिया और सहदेव मिसिर के प्रसंग में वह अपनी भाषण–कला के द्वारा ही पंचायत का सदस्य बन जाता है। उसकी भाषण–कला का इससे भी अच्छा प्रमाण सोशलिस्ट पार्टी की ओर से दिए जाने वाले भाषणों में मिलता है।

"युगों से पीड़ित, दलित और उपेक्षित लोगों को कालीचरण की बातें बड़ी अच्छी लगती हैं। ऐसा लगता है, कोई घाव पर ठंडा लेप लगा रहा हो। लेकिन कालीचरण कहता है– मैं आप लोगों के दिल में आग लगाना चाहता हूँ। सोये हुए को जगाना चाहता हूँ। सोशलिस्ट पार्टी आपकी पार्टी है, गरीबों की, मजदूरों की पार्टी है। सोशलिस्ट पार्टी चाहती है कि आप अपने हक को पहचानें। आप भी आदमी हैं, आपको आदमी का सभी हक मिलना चाहिए। मैं आपको मीठी बातों में भुलाना नहीं चाहता। वह कांग्रेस का काम है। मैं आग लगाना चाहता हूं।

**अत्यधिक शक्तिशाली :–**

कालीचरण शरीर से बड़ा ही हृष्ट–पुष्ट युवक है। उसके भय से सारा गाँव काँपता है। गाँव की अहीर टोली

का नेता वह इस कारण भी है कि उसमें असीम शारीरिक बल है। फुलिया और सहदेव के मामले पर विचार करते हुए उसे पंचों में सम्मिलित नहीं किया जाता। विशेषतः ज्योतिषी जी कहते हैं कि इस कालीचरण को पंच नहीं मानते, क्योंकि उन्हें भय है कि कालीचरण उनकी–किसी झूठी बात को न मानकर सच्चाई का पक्ष लेगा। किन्तु जब कालीचरण खड़ा होकर यह कहता है–

"तो पहले इसी बात का फैसला हो जाय कि पंचायत के कितने लोग हमें पंच मानते हैं और कितने लोग नहीं। एक आदमी के चाहने और न चाहने से क्या होता है। ..... अच्छा, पंच परमेसर ! क्या हमको इस पंचायत में बैठने बोलने और राय देने का हक नहीं, क्या हम इस गाँव के बासिंदे नहीं हैं ?"

तो कुछ तो उसके कुशल वक्ता होने और कुछ उसके शारीरिक बल के भय से बहुत से लोग इस पक्ष में हाथ उठा देते हैं कि उसे पंच स्वीकार करना चाहिए।

उसके शारीरिक बल और कुश्ती–कला में प्रवीण होने के तथ्य का परिचय चम्पापुर के मेले के दंगल में मिलता है, जिसमें पंजाबी पहलवान मुश्ताक पर चेला चाँद अखाड़े में जाँघिया लगाकर उतरता है, किन्तु किसी भी पहलवान में उससे कुश्ती लड़ने का साहस ही नहीं होता। कालीचरण उससे यह सोचते हुए भिड़ता है–

"आज की बाजी यदि हार गए तो समझेंगे कि मंगला को छूना पाप हुआ और जीत गए तो .... यही परीक्षा है मेरी।"

कहना न होगा कि वह परीक्षा में सफल सिद्ध होता है और कुछ ही मिनटों में चाँद को आसमान दिखा देता है।

**होशियार एवं कूटनीतिज्ञ :–**

कालीचरण पढ़ा–लिखा न होने पर भी 'गुणी' व्यक्ति है। सामान्यतः उसे क्रोध नहीं आता किन्तु अन्याय के विरूद्ध जब उसे क्रोध आता है तो उस रोद्र–रुप को देखकर सभी घबरा जाते हैं। कालीचरण, सुन्दर और सोभा ताड़ी पी रहे होते हैं तो सोमा जट यह कहता है कि यदि कालीचरण हुकुम दें तो वह शिवशंकर सिंह के पुत्र हरगौरी (नया तहसीलदार) की एक ही रात में हड्डी–पसली एक कर दे, किन्तु कालीचरण समझदारी का परिचय देते हुए मूक ही रहता है। इसी प्रकार सोमा जट बालदेव के विषय में कहता है –

"बालदेव को गाँव से भगा नहीं सकते हो तुम लोग ? ..... कालीचरण हुकुम दें तो एक ही दिन में उसको चन्ननपट्टी का रास्ता दिखला दें।"

किन्तु कालीचरण उसको इसकी भी अनुमति नहीं देता, क्योंकि वह नहीं चाहता कि ऐसा कराकर अपनी पार्टी की निन्दा करायी जाए।

नाई, धोबी, चमार आदि लोगों द्वारा काम बन्द किए जाने पर गाँव के लोगों को बड़ी परेशानी रहती है। हरगौरी विश्वनाथप्रसाद के यहाँ जाकर कहता है –

"काका ! इस बार इज्जत बचा लीजिए। क्या आप यही चाहते हैं कि नाई, धोबी और चमार के सामने हम हाथ जोड़कर गिड़गिड़ायें ?

कालीचरण भी हरगौरी से कम चालाक नहीं है। वह भी विश्वनाथ प्रसाद के यहाँ जाकर अपने पक्ष को इस रूप में प्रस्तुत करता है –

"विसनाथ मामा, आप कांग्रेस के लीडर हैं। इसी बार देखना है कि कांग्रेस गरीबों की पार्टी है या अमीरों की। आज तक मैने आपको देवता की तरह माना है। लेकिन गरीबों के खिलाफ आप पैर बढ़ाइए तो हम मजबूर होकर .....।"

अंततः कहा जा सकता है कि कालीचरण मैला आँचल के उज्जवलतम पात्रों में से एक है। यदि मंगला के सम्पर्क में आकर उसका ब्रह्मचर्य खंडित हो जाने के तथ्य को छोड़ दिया जाए तो उसके चरित्र में अधिकांशतः' गुणों का ही प्राबल्य है। उसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह दुर्बलों और शोषितों का सहायक है। पार्टी की बदनामी को जिस तरह वह अपने प्राणों से भी अधिक महत्त्व देता है वह भी उसकी चारित्रिक उज्ज्वलता ही है। खेद है कि ऐसे सबल व्यक्तित्ववान चरित्र का अंत कारूणिक है–वह अकारण ही डकैत के रूप में जेल की यंत्रणा तथा पार्टी के सेक्रेटरी की अवमानना का पात्र बनता है। उसे अंततः चलित्तर कर्मकार का स्मरण करते चित्रित किया गया है जिसका इंगित यह है कि वह अपने परवर्ती जीवन में कदाचित् वास्तव में ही डकैत बन गया होगा।

### 4.3.3 तहसीलदार विश्वनाथप्रसाद

तहसीलदार विश्वनाथप्रसाद मलिक मेरीगंज के मुख्य निवासियों में से एक है और कायस्थ टोली के नेता हैं। उनकी राजपूत टोली के रामकिरपालसिंघ से इस तथ्य को लेकर प्रतिद्वन्द्विता चलती रहती है कि गाँव का प्रमुख व्यक्ति किसे माना जाए। इस प्रतियोगिता में बाजी विश्वनाथप्रसाद के ही हाथ रहती है जिसका मूल कारण उनका कानूनी दाव–पेचों में माहिर तथा सुशिक्षित होना है।

उपन्यास के आरंभ से ही विश्वनाथप्रसाद मलिक मेरीगंज के प्रमुख व्यक्ति प्रतीत होने लगते हैं। गाँव में डिस्पेंसरी की स्थापना के लिए डिस्ट्रिक्ट–बोर्ड के ओवरसियर आदि कर्मचारी आते हैं, तो डाली लेने में माहिर विश्वनाथप्रसाद उसको डाली पहुँचाकर, गाँव के लोगों से सर्वाधिक सम्मान के पात्र बन जाते हैं–

"तहसीलदार विश्वनाथप्रसाद एक सेर घी, पाँच सेर बासमती चावल और एक खस्सी लेकर डरते हुए मलेटरी वालों को डाली पहुँचाने चले, बिरंची को साथ ले लिया। बोले–हिसाब लगाकर देख लो, पूरे पचास रुपए का सामान है। यह रुपया एक दफ्तर के अन्दर ही अपने टोले और लोबिन के टोले से वसूल कर जमा करा देना।"

कायस्थ शिष्टाचार में निपुण भी अपेक्षाकृत कुछ अधिक ही होते हैं क्योंकि वे मुगल काल से ही राज–दरबारों से सम्बन्धित रहे हैं। यही कारण है कि वे डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के कर्मचारियों को मिलट्री के कर्मचारी समझते हुए उनसे ऐसी साँठ–गाँठ करने का प्रयास करते हैं कि यदि मिलट्री वाले ग्रामीणों पर अत्याचार करें भी तो वे उससे साफ बच जाएँ।

"सलाम हुजूर !"

ओवरसियर द्वारा परिचय पूछे जाने पर वे कहते हैं –

"हुजूर, ताबेदार राजा पारबंगा का तहसीलदार है, मीनापुर सर्किल का।"

अपनी महत्ता को बढ़ाने के लिए विश्वनाथप्रसाद राजपूतों और यादवों को परस्पर भिड़ाने का भी प्रयास करते रहते हैं। यादवों को क्षत्रिय मानने का प्रश्न उठा तो उसका समर्थन करते हुए विश्वनाथप्रसाद ने उनको विश्वास दिलाया कि वे उनके मामले की पूरी पैरवी करेंगे।

विश्वनाथप्रसाद के परिवार में तीन पुश्तों से तहसीलदारी चली आ रही है और वे एक हजार बीघे जमीन के एक बड़े काश्ताकार हैं। ठाकुर रामकिरपाल सिंह से तो उनकी पुश्तैनी प्रतिद्वन्द्विता चलती आयी है –

"कायस्थ टोली के मुखिया विश्वनाथप्रसाद मलिक, राजा पारबंगा के तहसीलदार हैं। तहसीलदारी उनके खानदान में तीन पुश्त से चली आ रही है। इसी बल पर तहसीलदार साहब आज एक हजार बीघे जमीन के एक बड़े काश्तकार हैं। कायस्थ टोली को गाँव के अन्य जाति के लोग मालिक टोला कहते हैं। राजपूत टोली के लोग कहते हैं कैथ टोली।

ठाकुर रामकिरपालसिंघ राजपूत टोली के मुखिया हैं। इनके दादा महारानी चम्पावती के स्टेट के सिपाही थे और विश्वनाथप्रसाद के दादा तहसीलदार। कहते हैं जब महारानी चम्पाबती और राज पारबंगा में दीवानी मुकदमा चल रहा था तो विश्वनाथप्रसाद के दादा राज पारबंगा स्टेट की ओर मिल गये थे। स्टेट वालों को महारानी के सारे गुप्त कागजात हाथ लग गए और महारानी मुकदमे में हार गई।"

डिस्ट्रिक्ट–बोर्ड के ओवरसियर आदि कर्मचारियों को डाली देने तथा बातचीत में उन्हीं की अधिक पूछताछ होने के कारण गाँव वालों की दृष्टि में अस्पताल का मामला पूरे गाँव का माना जाकर उन्हीं का माना जाने लगता है।

"सिपैहिया टोला का बिरजू सिंघ कल कह रहा था, सिंघजी इसपिताल में कोई मदद नहीं करेंगे। कहते थे, इसपिताल का मालिक मुक्तियार है विश्वनाथ और बलदेवा।"

आरंभ में तो इस बात को सुनकर विश्वनाथप्रसाद बिगड़ते हैं किन्तु दाहिने हाथ के रूप में कार्य करने वाले सुमरितदास की कान में हुई बातें सुनकर उनका मिजाज बदल जाता है–

"सुमरितदास से प्रायविट करने के बाद तहसीलदार का मिजाज बदल गया। आकर बोले– अच्छा तो बालदेव तुम जाकर ततमा टोली और पोलिया टोले वालों से कहा। मैंने पचास रुपैया (यह वह रुपया है जिसकी वे डाली देकर आते हैं) माफ कर दिया। उस दिन आफसियर बाबू को जो डाली दी गई थी सो तो तुम्हारे सामने की ही बात है। . ... कोई कुछ करे हमारा जो धरम है, हम करेंगे।"

मेरीगंज में डाक्टर प्रशान्त को तहसीलदार साहब का ही घर ऐसा प्रतीत होता है जहाँ वह चाय पीने के लिए नित्यप्रति जाता है–

"गाँव में सिर्फ तहसीलदार साहब चाय पीते हैं, बढ़िया चाय की पत्ती का व्यवहार करते हैं। यहाँ डाक्टर हर शाम को चाय पीने आता है।"

उनकी डाक्टर प्रशान्त से घनिष्ठता भी हो गई है–

"तहसीलदार साहब कहते हैं, डाक्टर तो अपने समांग की तरह हो गया है। डाक्टर को भी तहसीलदार साहब से घनिष्ठता हो गई है। तहसीलदार साहब से गाँव घर और जिलों की बहुत–सी नई पुरानी बातें सुनने को मिलती हैं।

तहसीलदार विश्वनाथप्रसाद गाँव के सबसे बड़े किसान हैं –

तहसीलदार साहब के खम्हार के साथ ही गाँव के और किसानों का खम्हार खुलता है। तहसीलदार साहब का खम्हार बड़ा खम्हार कहलाता है जरी–दहाड़ से बचकर भी दो हजार मन धान होता है।"

खम्हार खुलने के अवसर पर हाने वाला उत्सव विश्वनाथप्रसाद के खम्हार में ही आयोजित किया जाता है–

"गाँव भर के लोग तहसीलदार साहब के खम्हार में जमा हुए हैं। शामियाना तान दिया गया है। शामियाना खचमखच है। डाक्टर बाबू, सिंघजी और खेलावनसिंह यादव कुर्सी पर बैठे हैं। कालीचरण अपने दल के साथ है।

तहसीलदार विश्वनाथप्रसाद घुटे हुए आदमी हैं। खम्हार के अवसर पर जो स्वाँग–तमाशा होता है उसमें–

"तहसीलदार साहब को तो नेताजी ने भरी सभा में बेइज्जत कर दिया अलबत्ता गाली देते हैं नेताजी ? ... जमींदार के दुम ये तहसीलदार ! मुफ्तखोर।

"मगर तहसीलदार साहब हँसते ही रहे थे।" अभिप्राय यह है कि वे इस बात को जानते हैं किस बात को हँसकर टाला जा सकता है और किस बात में कड़ाई से काम लेना चाहिए।

विश्वनाथ प्रसाद यद्यपि अपनी तहसीलदारी के बलबूते पर ही गाँव के प्रमुख किसान और एक प्रकार से मुखिया हैं, किन्तु अवसर आने पर वे अपनी इस तहसीलदारी से त्यागपत्र दे देते हैं। प्रशान्त से बातें करते हुए इस संदर्भ में ये कहते हैं–

"डाक्टर साहब, आज पाप की गठरी फेंक आया हूँ।"

'मतलब ?"

"यह तहसीलदारी पाप की गठरी ही तो थी। यह नया सर्किल मैनेजर आते ही 'आग पेशाब' करने लगा। लाल पताका अखबार ने ठीक ही लिखा था–

राज पारबंगा के मीनापुर सर्किल का नया मैनेजर नादिरशाह का भतीजा है। अब आप ही बताइए डाक्टर साहब कि जिन रैयतों के यहाँ सिर्फ एक ही साल का बकाया है उन पर नालिश कैसे किया जाय, फिर चुपचाप, डिग्री करवाकर नीलाम करो और जमीन खास कर लो। इतना बड़ा अन्याय मुझसे तो अब नहीं होगा। जमाना कितना नाजुक है, सो तो समझते हैं नहीं। मैंने साफ इन्कार कर दिया तो कड़ककर बोले, 'नहीं कर सकते तो इस्तीफा दे दो।' गंगा–स्नान से भी बढ़कर पुण्य का ऐसा अवसर बार–बार नहीं मिलता। तुरंत इस्तीफा दे दिया। सारी जिन्दगी तो गुलामी करते बीत गई।"

विश्वनाथ प्रसाद काइयाँ आदमी हैं और सप्लाई तथा डिमांड के सिद्धान्त पर अचरज करते हुए अपनी पैदावार को अधिक–से–अधिक ऊँचे दाम पर बेचते हैं। धान–जब्ती करा कानून बनने की आशंका से वे अपना धान छिपा देते हैं–

"अनाज के ऊँचे दर से गाँव के तीन ही व्यक्तियों ने फायदा उठाया है– तहसीलदार साहब ने, सिघजी ने और खेलावनसिंह यादव ने। छोटे–छोटे किसानों की जमीनें कोड़ी के मोल बिक रही हैं।

तहसीलदार साहब ने काम तैयार होते ही न जाने कहाँ छिपा दिया है। दरवाजे पर दर्जनों बखार हैं, लेकिन इस बार सब खाली। चमगादड़ों के अड्डे हैं। ..... सरकार शायद धान–जप्ती का कानून बना रही है।"

कालीचरण के परामर्श पर जब गाँव के लोग धान उधार लेने से पूर्व अँगूठे का निशान देने से इन्कार कर देते हैं, तो तहसीलदार विश्वनाथ के अतिरिक्त उन्हें कोई भी धान देने को तैयार नहीं होता। विश्वनाथ प्रसाद उस वर्ष जो लाभ उठाते हैं उसका कारण यह है कि वे इस तथ्य को जानते हैं कि यदि लोग नयी अँगूठा निशानी नहीं देते तो न सही, उनके पास पुरानी अँगूठा निशानी है और वे उसी का लाभ उठाकर उन्हें कानून के शिकंजे में फँसा सकते हैं। वे कालीचरन को जमानती बनाकर जहाँ अपनी दूरदर्शिता का परिचय देते हैं वह सवाया अनाज वसूल करते हुए भी गाँव वालों की दृष्टि में दया–धर्म के अवतार समझे जाने का यश भी लूट लेते हैं –

"इस घर तहसीलदार साहब को छोड़कर किसी ने मजदूरों को धान नहीं दिया। .... अँगूठे का निशान नहीं देंगे और धान लेंगे ? बाप–दादे के अमल अँगूठे का निशान देते आ रहे हैं, कभी बेईमानी नहीं हुई। इस साल बेईमानी कर लेंगे? कालीचरन ने टीप देने से मना किया है तो कालीचरन से ही धान लो।"

तहसीलदार साहब को नये टीप की जरूरत नहीं, पुराने टीप ही इतने है कि कोई इधर–उधर नहीं कर सकता। दूसरे किसानों के मजदूरों को भी तहसीलदार साहब ने ही इस बार धान दिया है लेकिन कालीचरण को जमानत रखा कर। धान वसूलवा देना कालीचरण का काम होगा। अरे ड्यौढ़ा नहीं तो सवैया ही सही। .... जो भी हो, तहसीलदार के दिल में दया– धर्म है। बाकी मालिक लोग तो पिशाच हैं पिशाच।"

विश्वनाथ प्रसाद को पारबंगा के राजकुमार द्वारा इस्तीफा न देने के बारे में समझाया जाता है तो वे अपने निश्चय पर दृढ़ रहते हुए कह देते हैं कि थूककर नहीं चाट सकते –

"तहसीलदार विश्वनाथ बाबू को रजा पारबंगा के कुमार साहेब ने बुलाकर बहुत समझाया–बुझाया लेकिन तहसीलदार ने कहा थूक, फेंक कर चाटना आदमी का काम नहीं ! .... तहसीलदारी में अब मजा क्या है। अब तो यह सूखी हड्डी है।"

वास्तव में तहसीलदारी को बदली हुई परिस्थितियों में सूखी हड्डी समझकर ही विश्वनाथ प्रसाद अपने पद से इस्तीफा देते हैं, अन्यथा यदि पहले जैसा ही जमाना होता तो वे अपनी तहसीलदारी कभी नहीं छोड़ते। उपन्यासकार ने इस तथ्य को रेखांकित करते हुए कहा है–

"वास्तव में अब तहसीलदारी में कोई मजा नहीं रह गया है। जमाना बदल गया है। तहसीलदार साहब के बाप देवनाथ मल्लिक सिर्फ पाँच रुपये माहवारी पर बहाल हुए थे। लेकिन अपनी आमदनी ? तीन साल बीतते–बीतते अस्सी–नब्बे बीघे धानहर (उपजाऊ) जमीन के मालिक बन गए थे। आदमी की अपनी आमदनी ही असल आमदनी है। और तहसीलदारी रौब का क्या पूछना ? तहसीलदार के खेतों में काम करने वालों को कभी मजदूरी नहीं मिलती थी। असल राजा तो बूढ़े देवनाथ मल्लिक ही थे।

विश्वनाथ प्रसाद इस दृष्टि से भाग्यवान ही थे कि उनके पूर्वजों ने ही रैयत पर इतना आतंक जमा दिया था कि उन्हें प्रजा पर अत्याचार करने की विशेष आवश्यकता ही नहीं पड़ी .....

"विश्वनाथ बाबू ने भी अच्छी तरह ही निभाया। रैयतों पर विशेष जोर–जुल्म करने की कभी जरूरत नहीं पड़ी। उनके पूर्वजो ने रैयतों के दिल और दिमाग पर तहसीलदारी की ऐसी धाक जमा रखी थी कि उन्हें विशेष कुछ नहीं करना पड़ता था। कहावत मशहूर थी कि जमदूत थोड़ा मुहलत भी दे सकता है, पर तहसीलदार नहीं।

विश्वनाथ प्रसाद ने गाँव के बदमाश और टेढ़े लोगों की सूची बना रखी थी। इस सूची को बनाने में वे सुमरितदास की भी मदद लेते थे –

सुमरितदास साल–भर की घटनाएँ याद करते हुए लिखता था– हाँ अनंत पर्व के दिन रनजीत दूध लाने गया था तो गुजरटोली के सतकौड़ी ने झूठ बोल कर बर्तन वापस कर दिया था– भैंस सूख गई।। गुजरटोली के फरजंद मियाँ ने करैला नहीं दिया था। तहसीलदार साहब ऐसे लोगों के नाम याद करते जिन्होंने राज के मुकदमों में गवाही देने से इन्कार किया, दाखिल–खारिज करवाकर तहसीलदार का नजराना हड़प गया, कि लोगों को पैसे की गर्मी हो गई है, कौन राह चलते ऐंठकर चलते हैं और पंचायत में उनके सिपाहियों के विरूद्ध किन लोगों ने गवाहियाँ दी थीं।

यद्यपि विश्वनाथ प्रसाद के स्थान पर रामकिरपालसिंह का पुत्र हरगौरी तहसीलदार हो जाता है तो भी 'सिखा' पर्व के अवसर गाँव की रैयत विश्वनाथ प्रसाद के ही यहाँ एकत्र होकर सलामी में डेढ़ सो रुपये भेंट कर जाती है–

"सभी रैयत विश्वनाथ प्रसाद के यहाँ गये थे। डेढ़ सौ रुपये सलामी में पड़े थे। मछली मारकर लौटते समय रास्ते मे ही रैयतों ने मीटिंग किया था कि नये तहसीलदार के यहां नहीं जाएँगे। बिरंचिया कहता था कि रैयतों का जो पेट भरेगा वही असल जमींदार है। नये नहसीलदार ने कभी एक चुटकी धान दिया ?"

कंट्रोल रेट पर कपड़ा चीनी और मिट्टी का तेल देने का कार्य भी बालदेव से छूटकर विश्वनाथ के हाथों में आ जाता है।

नई बन्दोबस्ती आरंभ होने पर विश्वनाथ प्रसाद की गाँव में पूछ और भी बढ़ जाती है। एक ओर तो उनसे नई बन्दोबस्ती वाले किसान मिलने आते हैं, जबकि दूसरी ओर वे लोग जो जमीन से बेदखल कर दिए गए हैं। नया तहसीलदार हरगौरी भी दिन–रात उन्हीं के घर पड़ा रहता है और कहता है।

"काका ! इस बार इज्जत बचा लीजिए। क्या आप यही चाहते हैं कि नाई धोबी और चमार के सामने हम हाथ जोड़कर गिड़गिड़ा दें ? .... कल से ही रामकिरपाल काका के गुहाज में गाय मरी पड़ी है। चमार लोगों ने उठाने से साफ इन्कार कर दिया है। जी बेसरा चमार को लीडर आपने ही बनाया है। ..... राजपूत टोले के लोगों को देखिए, दाढ़ी कितनी बड़ी–बड़ी हो गई है। नाइयों ने काम करना बन्द कर दिया है। आपके हाथ में सबों की चुटिया है। आप एक बार कह दें तो सबों की नानी मर जाय।'

दूसरी ओर उनसे कालीचरन भी यह कहता हैं –

"विसनाथ मामा, आप कॉंगरेस के लीडर हैं। इसी बार देखना है कि कॉंगरेस गरीबों की पार्टी है या अमीरों की ? .... आज तक मैंने आपको देवता की तरह माना है। लेकिन गरीबों के खिलाफ आप पैर बढ़ाएगा तो हम भी मजबूर होकर....."

विश्वनाथ प्रसाद इस धर्म–संकट में ऐसा अपनाते हैं कि साँप भी मर जाय और लाठी भी नहीं टूटे, जो उनकी दूरदर्शिता का परिचायक है, वे ऐसी बातें करते हैं जिनसे नई बन्दोबस्ती वाले को बेदखल हुए किसान धान रोपने से न रोकें, कोई गलत दावा भी न करे –

'यदि अकाल पड़ गया तो जो सुराज मिलने वाला है वह नहीं मिलेगा। यदि मिलेगा भी उसकी सारी ताकत तो लोगों को मिलने में ही लग जाएगी। इसलिए हम लोगों को धरती से ज्यादा अन्न उपजाना चाहिए। अभी मान लो कि कर–कचहरी घर–फौजदारी करके तुम खेत पर दफा 144 लगा देते हो, फिर 145 होगा। इससे खेत में धान तो नहीं रोपा जाएगा। खेत परती रहेगा और अन्न नहीं होगा। इसके बाद मालिक लोगों से ही यदि धान माँगोगे तो कहाँ से देंगे मालिक लोग ? अपने खर्च के लायक धान मालिकों को पास होगा नहीं और सरकार वसूल करेगी लाठी के हाथ से, कानून से। बड़े मालिकों के बखारों में भी चमगादड़ झूलेंगे। ..... तो हमारा यही कहना है कि सभी भाई आपस में विचार कर देखो, मिलकर देखो कि किस काम में भलाई है।"

उनके इस भाषण का कुछ लोग विरोध करना भी चाहते हैं तो उनको उन्हीं के साथी चुप कराते हुए कहते हैं–

"चुप रहो। तहसीलदार जो कह रहे हैं, नहीं समझ रहे हो। पक्की बात करते हैं तहसीलदार। काबिल आदमी हैं। अरे आज ही यह कालीचरण और बालदेव आया है न ! पहले तो हम लोगों के आँख कान यही थे।

तहसीलदार बाबू ! माये–बाप ..... आप ठीक ही कहते हैं। अब आप ही कोई रास्ता बताइए।" अन्य लोगों द्वारा भी कोई रास्ता पूछे जाने पर विश्वनाथ प्रसाद कहते हैं –

"तो भाई, हम तो हिदुस्थान, भारथवरश की बात नहीं जानते। हम अपने गाँव की बात जानते हैं। आप भला तो जग भला। हम तो गाँव का कल्याण इसी में देखते हैं कि सभी भाई क्या गरीब, क्या अमीर सब भाई मिलकर एकता से रहें। न कोई जमीन छुड़ावे और न गलत दावा करे। जैसे पहले जोतते थे अबादते थे आबाद करे, बाँद दें। न रसीद माँगो न नकदी के लिए दर्खास्त दें। दोनों को समझाना होगा। .... क्यों हरगौरी बाबू। सुनते तो हो ! अपने मैनेजर से जाकर कह देना कि हजूर अब भी होश करें। यदि इस तरह रैयतों के साथ दुश्मनी करेंगे, कम–से–कम हमारे रैयतों से, तो फिर बात बिगढ़ जाएगी। सभी बात तो हमारे ही हाथ में है। हम अभी गबाही दे दें कि हुजूर आली, यह सब फर्जी काम हमसे करवाया गया है, और कुल कागज–पत्तर, चिट्ठी–चपाती, रूक्का–परवाना दिखला दें तो बस खोप सहिब कबूतराय नमः।

विश्वनाथप्रसाद बड़े ही काइयाँ और चलते फिरते व्यक्ति हैं। उन्हें भय है कि उनके खेतों पर संथाल लोग अधिकार न कर लें अतः वे ग्रामवासियों के हृदय में यह भाव उत्पन्न कर देते हैं कि – "संथाल लोग गाँव के नहीं बाहरी आदमी हैं।" उनमें अपनी बात को सही सिद्ध कर दिखाने की विलक्षण प्रतिभा है –

"लेकिन संथालों में भी कमार है, माँझी हैं, वे लोग अपने को यहाँ के कमार और माँझी कभी खपा सके ? नहीं। वे लोग तो हमेशा ही हम लोगों को ही छोटा कहते हैं। गाँव से बाहर रहते हैं। ..... कहो तो गाने किसी सथाल को विदेशिया का गाना या एक कड़ी चेती। कभी नहीं गावेगा। इस देश का दारु हरगिज नहीं पीएगा। जब पियेगा तो पंचाय ही। समझो ! सोचो !!"

उनकी इस बात को सुनकर लोग उनकी हाँ–मे–हाँ मिलाते हुए कह उठते हैं –

"तहसीलदार साहेब एक दम ठीक कह रहे हैं। .... नहीं भाई? जो भी कहो, तहसीलदार साहेब ही एक आदमी हैं जो कि गाँव को भलाई–बुराई की बात समझते हैं। ..... ठीक कहते हैं तहसीलदार साहेब ।"

उनके कानूनी दाव–पेच में माहिर होने के तथ्य का लोहा सभी लोग मानते हैं। नये तहसीलदार हरगौरी को विश्वनाथप्रसाद से सदा ही भय बना रहता है।

"हरगौरी बाबू भी अच्छी तरह समझ गए है कि काली टोपी वाले नौजवानों की लाठियों से ज्यादा खतरनाक हथियार है–कानूनी बुक्स !" तहसीलदार विश्वनाथप्रसाद इसके माहिर हैं। उनसे अभी बैर मोल लेना ठीक नहीं है। उनकी इस माहिरता का लोहा रामकिरपालसिंघ को भी मानना पड़ता है –

"सिंघ जी को हरगौरी की तहसीलदारी का पूरा भरोसा था, काली टोपी वाले संयोजक जी पर पूरा विश्वास था। लेकिन तहसीलदार विश्वनाथ ने कानून की ऐसी लकड़ी लगाई है कि भूमिहार भी मात ! राजपूत का बल्लम–बर्छा

उसके आगे क्या करेगा ? ऊपर से कितना हँसमुख और कितना मीठबोलिया है तहसीलदार विश्वनाथ, लेकिन पेट में जिलेबी का चक्कर है। राज का नया सरकिल मैनेजर दाँतों तले उँगली दबाता है। ऐसा कानून भी आदमी ।.... कहा, इस्तीफा दे दो। इसीलिए तड़ाक से दे दिया। काँगरेस का लीडर हो गया। हद है। इससे पार पाना मुश्किल है।"

वास्तव में ही विश्वनाथप्रसाद से किसी का भी पार पाना कठिन है। तभी तो उनके खेतों की फसल लूटने वाले संथालों से उनको बाहरी आदमी मानते हुए पूरे–गाँव वाले संघर्ष करते हैं और नये तहसीलदार हरगौरी को तो अपनी जान से हाथ धोने पड़ते हैं। इस पर भी तुर्रा यह कि जिसकी फसल लूटे जाने पर झगड़ा होता है वह विश्वनाथप्रसाद तो साफ बच जाते हैं जबकि खिलावन यादव और रामकृपालसिंह को दारोगा को रिश्वत के पाँच हजार रुपए देने पड़ते हैं। विश्वनाथप्रसाद के विषय में सुमिरतदास उचित ही कहता है।

"तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद को इतना बेवकूफ नहीं समझना। वह दारोगा तो यह तहसीलदार। तुम कौआ तो हम कैथ वाली कहानी नहीं सुने हो।"

उनकी कानूनी माहिरता और जालसाजीपन के विषय में अन्यत्र कहा गया है। जब वे यह पूछते हैं कि क्या कमला के पास डाक्टर प्रशान्त के हाथ की लिखी कोई चिट्ठी–पत्री हैं–

"तहसीलदार साहब कानूनी आदमी हैं। कागज पर आपके हाथ का 'क' भी लिखा रहे तो उससे वह सारी दस्तावेज ऐसी बना दें कि पटना का इस्पाट (हैण्डराइटिंग एक्सपर्ट) भी नहीं पहचान पाए कि असली है या जाली।"

विश्वनाथप्रसाद वैसे पढ़े–लिखे व्यक्ति हैं। किन्तु वे भूत–प्रेतों में विश्वास करते हैं। उन्हें अपनी पुत्री कमला के इस कथन में सचाई प्रतीत होती है कि डाक्टर प्रशान्त मनुष्य न होकर जिन है –

"सुनते हैं कि जिन जिस पर प्रसन्न हो उसको तुरत कुछ–से–कुछ बना देता है। रुपया–पैसा, जगह–जमीन, तुरत ढेर लगा देता है। ..... तहसीलदार साहब हिसाब करके देखते हैं, डाक्टर जब से उनके परिवार में घुलामिला है रोज अलाए–बलाए की आमदनी होती रहती है। जिस बात में सारे गाँव को नुकसान हुआ उसमें भी नफा ही रहा तहसीलदार को।"

विश्वनाथप्रसाद के चरित्र में सम्पत्ति अर्जित करने की उत्कट लालसा विद्यमान है। उन्होंने एक बार डाक्टर प्रशान्त से कहा था–

'जिस दिन धनी, जमींदार, सेठ और मिल वालों का लोग राह चलते से ही पागल समझने लगेंगे उसी दिन, उसी दिन असल सुराज हो जाएगा। आप कहते हैं कि ऐसा जमाना आएगा, जब आवेगा तो हमारी सारी सम्पत्ति छीनी जावेगी ही, और, अभी सम्पत्ति बटोरने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं। तो फिर बैठा क्यों रहूं।"

अपनी कुमारी पुत्री कमला के गर्भ रह जाने और डाक्टर प्रशान्त की सजा हो जाने की घटना विश्वनाथप्रसाद

को तोड़ डालती है। वे उसका गर्भपात कराने की दवा ले आते हैं, किन्तु कमला उसे नहीं पीती। वे अपने गम को खतम करने के लिए शराब पीने लगते हैं और कभी–कभी बड़ा उत्पात मचाते हैं–

"कभी–कभी तहसीलदार साबह भी नींचे उतर कर खूब हल्ला करते हैं, कमला की माँ को, कमला को, सेबिया बूढ़ी को, सब को गोली से उड़ा देने की धमकी देते हैं।"

"तहसीलदार साहब अब भी नीचे नहीं उतरते हैं। ऊपर ही रहते हैं। दिन–भर ताड़ी पीकर रहते हैं, रात में संथाल टोली का मउआ का रस। कभी होश में नही रहते हैं। सुमरितदास बेतार से रोज पूछते हैं, सोचा उपाय।"

डाक्टर प्रशान्त जेल से लौटकर उनके घर आता है तो उसके आने की भनक पाकर वे भरी हुई बन्दूक लेकर नीचे उतरते हैं और कहते है–

"नहीं ! .... सुमरितदास, इससे पूछो कहाँ आया है ! किसके यहाँ आया है। क्या करने आया है ? क्या लेने आया है। ... पूछो।"

जब उनकी पत्नी कहती – कैसे हो तुम ! जमाई को ....

तो वे कह उठते हैं –

"जमाई को क्या ? अपने जमाई को क्यों नहीं कहती हो ? वह मेरा पैर छूकर प्रणाम कहाँ करता है।"

और जब डाक्टर प्रशान्त उनके चरण–स्पर्श करता है तो वे फूट–फूट कर रो पड़ते हैं।

"तहसीलदार साहब अचानक फूटकर रो पड़ते हैं। डाक्टर साहब को बाँहों मे जकड़ कर रोते हैं, मेरा बेटा ! बाबू ! .... मेरा बेटा।"

अपनी पुत्री को प्रशान्त द्वारा स्वीकार कर लिए जाने की प्रसन्नता में विभोर होकर वे अत्यधिक दयालु हो उठते हैं –

"सुमरितदास ! लोगों से यह कह दो – हरेक परिवार को पाँच बीघा के दर से मैं जीमन लौटा दूँगा। साँझ पड़ते–पड़ते मैं सब कागज पत्तर ठीक कर लेता हूँ। ... और संथाल टोली में जाकर कहो – वे लोग भी आकर रसीद ले जायें। एक पैसा सलामी पर नजराना कुछ भी नहीं। ... अरे मैं क्यों दूँगा। दे रहा है नया मालिक ! मालिक साहब का हुक्म है, सुनते नहीं हो, रो रहा हैं वह ? वह हुकुम दे रहा है। लौटा दो ! दे दो खेलावन को उसकी जमीन का सब धान दे दो।"

अपने इस आचरण का औचित्य सिद्ध करते हुए वे कहते हैं –

"मुँह क्या देखते हो ? मुझे पागल समझते हो ! ठीक है, पागल क्यों नहीं समझोगे ? ... जमीन ! धरती !

एक इंच जमीन के लिए हायकोठ तक मुकदमा लड़ते हैं लोग, और मैं सात सौ बीघे जमीन दे रहा हूँ। पागल तो तुम लोग हो। अरे, यह जमीन तो उन्हीं किसानों की है, नीलाम की हुई, जब्त की हुई, उन्हें वापस दे रहा हूँ। मैं कहता हूँ ऐलान कर दो मालिक का हुकुम है।"

संक्षेप में कहा जा सकता है कि विश्वनाथप्रसाद अपने गाँव के सबसे अधिक चलते–फिरते व्यक्ति हैं। उनकी कानूनी दाव–पेचों में महारत है तथा हजार बीघा जमीन की अच्छी आमदनी के कारण समस्त गाँव वालों को उनका लोहा मानना पड़ता है। भाग्य भी उनके साथ है, जिसके कारण खेलावन यादव तथा रामकृपाल सिंह, जो गाँव के अच्छे खाते–पीते काश्तकार हैं उनके मुहताज बन जाते हैं। हाँ अंततः वे गाँधीजी के हृदय–परिवर्तन के सिद्धान्त के पथिक बनकर ग्रामीणों को उनकी नीलाम और जब्ती में ली हुई ज़मीन वापस कर देते हैं।

### 4.3.4 बालदेव

बालदेव उपन्यास के प्रमुख पात्रों में से एक हैं। जहाँ तक विविध घटनाओं से सम्बन्ध का प्रश्न है यह कहा जा सकता है कि कदाचित् बालदेव ही उपन्यास का वह पात्र है जो सर्वाधिक घटनाओं से सम्बद्ध है। बालदेव के माध्यम से फणीश्वरनाथ रेणु ने उन सामान्य कार्यकताओं का जीवन–चित्र प्रस्तुत किया है जिन्होंने बहुत छोटे घराने में जन्म लेकर भी कांग्रेसी आन्दोलन में निष्काम भाव से अधिकाधिक योगदान किया है। जो देश के महत्त्वपूर्ण नेताओं में तो परिगणित नहीं हुए, जिन्हें मंत्री–पद प्राप्त करने का अवसर तो नहीं मिला फिर भी उनके त्याग, बलिदान और निस्वार्थ देश–सेवा को विस्मृत नहीं किया जा सकता। 'मैला आँचल' में बावनदास जीवनौत्सर्ग की दृष्टि से बालदेव से अवश्य बाजी जीत जाता है, किन्तु जहाँ तक विभिन्न पात्रों को प्रभावित करने और उनसे प्रभावित होने का सम्बन्ध है, उपन्यास की विभिन्न घटनाओं को गति प्रदान करने का प्रश्न है, बालदेव की गणना कालीचरण के साथ की जाएगी।

**उपन्यास में नाटकीय रूप में अवतरण :–**

बालदेव का उपन्यास में अवतरण नाटकीय पद्धति से किया गया है। मेरीगंज में खुलने वाले अस्पताल के लिए जमीन की पैमाइश करने हेतु डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के कर्मचारी आते हैं, जिन्हें गाँव वाले मिलिट्री के लोग समझते हैं। बहरा बेथरू की काल्पनिक गिरफ्तारी की बात सारे गाँव मे जंगली आग की तरह फैल जाती है। गाँव की सभी टोलियों के लोग झुंडों में वहाँ पहुँचते हैं, जहाँ वे कर्मचारी ठहरे हुए हैं। यादव–टोली में बालदेव रहता है। अंग्रेजों के शासन काल में किसी व्यक्ति का कांग्रेसी होना घोर अपराध–जैसा था अतः यादव टोली के लोग स्वयं ही बालदेव को गिरफ्तार करके ले आते हैं जिससे उन्हें एक देश–द्रोही को गिरफ्तार करने का श्रेय मिल सके –

"और अंत में यादव टोली के लोग बालदेव के हाथ और कमर में रस्सी बाँधकर हल्ला मचाते हुए आए। उसकी कमर में बँधी हुई रस्सी को सभी पकड़े हुए हैं। फिरारी सुराजी को पकड़ने वालों को सरकार बहादुर की ओर से इनाम मिलता है– एक हजार, दो हजार, पाँच हजार ! लेकिन साहब तो देखते ही गुस्सा हो गए, क्या बात हैं ? इसको क्यों बांधकर लाया है ? इसने क्या किया है ?

"हुजूर यह सुराजी बालदेव गोप है। दो साल जेहल काटकर आया है, इस गाँव का नहीं, चन्नपट्टी का है। यहाँ मौसी के यहाँ आया है। खध्धड़ पहनता है, जैहिन्न बोलता है।"

साहब का किरानी बालदेव को पहचान लेता है और बताता है कि 'अरे यह तो बालदेव है। सर, यह रामकृष्ण कांग्रेस आश्रम का कार्यकर्ता है, बड़ा बहादुर है"

बन्धनों से छुटकारा पाकर बालदेव साहब और किरानी को जयहिन्द करता है और तदनन्तर चन्नपट्टी के निवासी बालदेव की कर्मभूमि मेरीगंज ही बन जाता है।

**अभावमय बाल्यकाल :–**

बालदेव के पिता की उसके बचपन में ही मृत्यु हो जाती है, जबकि कुछ दिनों बाद उनके सिर से माता की भी छत्रछाया उठ जाती है। अपने अभावमय बाल्यकाल को याद करके बालदेव का अंतर्मन सिहर उठता है –

"आज माँ की याद आती है। गाँव के लोग बालदेव को टुरवा (अनाथ) कहते थे। सुनकर माँ बहुत गुस्सा होती थी। बाप के मरने से कोई टुअर नहीं होता। बाप मरे तो कुमर, माँ मरे तब सूअर। मेरा बालदेव तो कुमार है, मेरा बालदेव टूअर नहीं।

माँ के मरने के बाद बालदेव बहुत दिन तक अजोधी भगत की भैंस चराता था। अजोधी भगत की याद आते ही बालदेव का देह सिहर उठता है। कैसा पिशाच था बुड्ढ़ा ! बूढ़ी तो और भी खटाँस थी, खेकासियांरी की तरह हरदम खेक–खेंक करती रहती थी। दिन–भर भैंस चराकर आने के बाद बालदेव और उँगलियाँ भगत की देह टीपते–टीपते दर्द करे लगती थीं, आँखें नींद से बन्द हो जाती थीं। लेकिन जरा भी ऊँधे कि चटाक्। उस बूढ़े की उँगलियों की चोट बड़ी कड़ी होती थी। बालदेव ने बचपन से ही मार खाई है–थप्पड़, छड़ी और लाठी की मार। बूढ़े–बूढ़ी को रात में नींद आती थी। आध पहर रात कोक ही भैंस चरपने के लिए जगा देता था। – रे टुरवा, भोर हो गई, भैंस खोल !"

इस प्रकार नाना प्रकार के अभावों और कष्टों को सहन करते हुए ही बालदेव का बाल्यकाल व्यतीत हो जाता है। अपने बाल्यकाल के विषय में उनके मन में दो ही मधुर–स्मृतियाँ हैं– एक तो वात्सल्यमी माँ की और दूसरी अध ोजी भगत की लड़की रूपमती की, जो अपने माँ–बाप से छिपाकार उसके भात के नीचे दूध की थाली रख दिया करती थी और उसको कभी–भी टुरवा कहकर नहीं चिढ़ाती थी।

**कांग्रेस पार्टी का सदस्य :–**

बालदेव द्वारा कांग्रेस पार्टी का सदस्य बनने का मूल कारण थे–रामकिशून बाबू और उनकी पत्नी मायेजी। रामकिशून बाबू ने अपनी अच्छी प्रकार चलती हुई वकालत छोड़ दी थी और अपनी पत्नी के साथ गाँव–गाँव घूमकर भाषण देते फिरते थे –

"मायेजी के पाँव की चमड़ी फट गई थी। लहू से पैर लथपथ हो गए थे। लाल उड़हूल। मायेजी का दुःख देखकर, रामकिशून बाबू का भाखण सुनकर और तैवारी जी का गीत सुनकर वह अपने को रोक नहीं सका था। कौन संभाल सकता था उस टान को ! लगता था कोई खींच रहा हो –

"गंगा रे जामुनवाँ की धार नयनवाँ से नीर बही।

फूटल भरथिया के भाग भारत माता रोई रही।"

मायेजी के पाँव की चमड़ी फट गई थी, भारथ माता रो रही थी। वह उसी समय रामकिशून बाबू के पास जाकर बोला था– मेरा नाम सुराजी में लिख लीजिगा।" तबसे लेकर बादलेव कांग्रेस पार्टी की ओर से देश–सेवा के कार्यों में भाग लेते हुए अनेकानेक कष्ट और जेल की यातनाएँ सहन कर चुके हैं।

**अडिग सेवा–भाव और विनम्रता :–** बालदेव के चरित्र में देश–सेवा की अडिगभावना विद्यमान है। ओवरसियर द्वारा कहे गए इन शब्दों से प्रेरणा पाकर कि –

"सात दिन के अन्दर ही डिस्ट्रिक्ट बोर्ड का मिस्तिरी लोग आवेगा। आप लोग बाँस, रबड़ सुतली और दूसरा दरकारी चीज का इन्तजाम कर देगा। तहसीलदार साहब, आप हैं, बालदेव प्रसाद तो देश का सेवक ही है, और सिह जी आए हैं। आप सब लोग मिलकर मदद कीजिए।"

बालदेव अपने देश–सेवकत्व का परिचय देते हुए अस्पताल के निर्माण–कार्य को सफल बनाने में जुट जाते हैं।

"डिस्टीबोट के मिस्तिरी लोग आये हैं। बालदेव के उत्साह का ठिकाना नहीं हैं। आफसियर बाबू ने तहसीलदार साहब और रामकिरपालिंघ के सामने ही कहा था– आप तो देश के सेवक हैं। सबों ने सुना था दुनिया में धन क्या है ? तहसीलदार साहब और सिंह जी के पास पैसा है, मगर जो इज्जत बालदेव की है, वे कहाँ पाएँगे।"

यादव टोली के लोगों को अपनी मूर्खता का ज्ञान हो जाने पर उन्होंने बालदेव से माफी माँग ली थी जबकि यादवों में सबसे अच्छा खाते–पीते खेलावन यादव उससे अपने यहाँ रहने का आग्रह करते हैं –

"जात का नाम, जात की इज्जत तो तुम्हीं लोगों के हाथों में है। तुम कोई पराये हो ? तुम्हारी मौसी मेरी चची होगी। हम तुम भाई ठहरे।"

बालदेव की सरकारी लोगों में प्रतिष्ठा होने के कारण बालदेव की मौसी के भी भाग्य खुल जाते हैं, क्योंकि खेलावन की पत्नी उसकी मौसी के पास आकर कह जाती है –

"घर आँगन सब आपका ही है। जिस घर में एक बूढ़ी नहीं, उस घर का भी कोई ठिकाना रहता है ? मैं अकेली क्या करूँ, दूध–घी देखूँ कि गोवर–गुहाँल।"

डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के मिस्त्रियों को सभी प्रकार की सहायता जुटाने के लिए बालदेव गाँव के प्रत्येक टोले में घूमकर सहायता का प्रबन्ध करने में जुट जाता है –

"बालदेव हर एक टोले में घूमता रहा। डिसटीबोट से मिस्तिरी जी आए है लोग आए हैं। कल से काम शुरू हो जाना चाहिए। .... मलेरिया बोखर मच्छड़ काटने से होता है। मगर कुलैन खाने से, जितना भी मच्छड़ काटे, कुछ नहीं होगा।

बालदेव का लोगों को समझाना–बुझाना रंग लाता है और नीची जातियों की बहुत–सी टोलियाँ अस्पताल के निर्माण कार्य में सहयोग देने को तैयार हो जाती हैं। हाँ तभी यह प्रश्न उठ खड़ा होता है।

"लेकिन हलफाल काम–काज बन्द करने से मालिक लोग मजूरी तो नहीं देंगे। एक दिन की बात रहे तो किसी तरह खेया भी जा सकता है। सात दिन तक बिना मजूरी के ? यह जरा मुस्किल मालूम होता है। यदि मालिक लोग आधे दिन की भी मजूरी दे दें तो काम चल जाय।"

उधेड़–बुन में फँसा बालदेव सोचता है कि शायद विश्वनाथप्रसाद तो इस प्रस्ताव को स्वीकार कर भी लेंगे कि अस्पताल के काम में लगे मजदूरों को उनकी ओर से आधे दिन की मजदूरी दे दी जाए, किन्तु सिंघजी इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करेंगे। इसी प्रकार ब्राह्मण टोली भी इस कार्य में सहयोग नहीं करेगी क्योंकि ज्योतिषी काका अस्पताल के विरूद्ध तरह–तरह की अफवाहें फैलाते रहते हैं। वह राजपूत–टोली में पहुँचता है तो शिवशंकर सिंह का पुत्र हरगौरी उससे व्यंग्यपूर्वक पूछता है – "कहिए बालदेव लीडर, क्या समाचार है। आपकी लीडरी कैसी चल रही है ? इस प्रश्न को सुनकर वह विनम्रतापूर्वक उत्तर देता है –

बाबू साहेब, गरीब आदमी भी भला लीडर होता है ? हम तो आप लोगों का सेवक हैं। "

हरगौरी तो बालदेव से चिढ़ा बैठा है राजपूत टोले के सभी लोग उससे चिढ़े हुए हैं कि यह हमारे गाँव में आकर लीडर बन बैठा है। अतः सामूहिक आक्रोश को अभिव्यक्त करते हुए मुँहफट हरगौरी बालदेव को यह कहकर लताड़ता है–

"आप तो लीडर हो ही गए तो आजकल कांग्रेस आफिस का चौका–बर्तन कौन करता है। अरे भाई सभी काशी चले जाओगे ? पतल चाटने के लिए भी तो कुछ लोग रह जाओ। जेल क्या गये, पंडित जमाहिर लाल हो गए। कांग्रेस के आफिस में भोलटियरी करते थे अब अन्धों में काना बनकर यहा लीडरी छाँटने आया है। स्वयं सेवक न घोड़ा का दुम।"

अपमान का घूँट पीकर भी बालदेव विनम्रतापूर्वक पूछता है –

"बाबू साहेब, मुंह खराब क्यों करते हैं ? आप विदमान है और हम जाहिल, मुझसे जो कसूर हुआ है कहिए।"

हरगौरी उसको बेईमान बताते हुए धक्का देने के लिए उठता है तो भी विनम्रता की मूर्ति बालदेव चुप बैठा रहता है और कहता है –

"मारिए, यदि मारने से ही आपका गुस्सा ठण्डा हो तो मारिए।" बालदेव को हरगौरी द्वारा पीटे जाने की मिथ्या सूचना पर जब यादवों द्वारा हरगौरी का खून पीने की घोषणा की जाती है, तो लाठी, बल्लम और बर्छे लेकर आने वाली यादवों की टोली को बालदेव ही समझाकर शान्त करता है –

"बोलिए एक बार प्रेम से इन्ही महात्मा की ... जै। जाय....जाय। पियारे भाइयो, आप लोग जो आन्दोलन किए हैं, वह अच्छा नहीं। अपना कान देखे बिना कौआ के पीछे दौड़ना अच्छा नहीं। आप ही सोचिए, क्या यह समझदार आदमी का काम है। आप लोग हिंसाबाद करने जा रहे थे। इसके लिए हम को अनसन करना होगा। भारथमाता का, गांधी जी का, यह रास्ता नहीं। और बालदेव वास्तव में ही उपवास करके गांधीजी की भांति सच्चा अहिंसावादी हाने का प्रमाण प्रस्तुत करता है।

विनम्रता और अहिंसा बालदेव के चरित्र के दो मूलभूत गुण हैं। जिनके दर्शन उपन्यास के विभिन्न प्रसंगों में होते रहते हैं। गाँव का कोई भी प्रमुख कार्य आयोजन हो बालदेव उसमें बढ़–चढ़कर भाग लेता है। महंत सेवादास द्वारा गाँव को भोज देने की घोषणा की जाती है तो गाँव के विभिन्न टोलों में कितने स्त्री–पुरूष और बच्चे हैं, इस तथ्य की गणना का भार बालदेव ही संभालते हैं। अस्पताल के निर्माण और गाँव में भोज के आयोजन को लेकर विभिन्न टोलों में जो पारस्परिक मन–मुटाव उभर उठता है, उसका दोष अपने ऊपर लेते हुए वे कहते हैं –

"पियारे भाइयो ! कोठारिन साहेब जितना बात मीली, सब ठीक है। लेकिन सबसे बड़ा दोखी हम हैं। हमारे कारन ही गाँव में लड़ाई–झगड़ा हो रहा है। हम तो सबों का सेवक है। हम कोई बिदमान नहीं है, सास्तर–पुरान नहीं पढ़े हैं। गरीब आदमी हैं, मुरख हैं। मगर महतमाजी के परताप से भारत माता के परताप से, मन में सेवा–भाव जन्म हुआ और हम सेवा का बाना ले लिया .... मोमेन्ट में जब गोरा मलेटरी हमको पकड़ा तो मारते–मारते बेहोश कर दिया। पानी मांगते थे तो मुँह में पेशाब कर देता था .... ।"

सभा में कानाफूसी होते देखकर वह आगे कहता है –

"आप लोगों को विश्वास नहीं तो देख सकता है।"

"अरे बाप ! चीता–बाघ की तरह देह हो गया है। धन्न है।"

"लेकिन पियारे भाइयों, हमने भारथ माता का नाम महतमाजी का नाम लेना बन्द नहीं किया। तब मलेटरी ने हमकों नाखून में सूई गड़ाया, तिस पर भी हम इसबिस नहीं किये। आखिर हारकर हमको जेलखाना में डाल दिया। आप लोग तो जानते ही हैं कि सुराजी लोग जेहल को क्या समझते हैं – जेहल नहीं ससुराल। यार हम बिहा करने को जाएंगे।"

जेल में जब बालदेव को अधिक यातनाएँ दी जाती है, तो वे पांच दिन तक अनशन कर देते हैं। बालदेव की इच्छा है कि मेरीगंज में रहकर वे उसको भी अपने गाँव चन्नपट्टी की तरह बनाएँ –

"सो पियारे भाइयो। सेवा–बर्त जब हम लिया है तो इसको छोड़ नहीं सकते। आप लोग अपने गाँव में सेवा नहीं करने दीजिएगा, हम चन्ननपट्टी चले जाएँगे वहाँ आसरम है, घर–घर चरखा चलता है। घर–घर में औरत–मरद पढ़ते हैं। हम मेरीगंज को अपने चन्ननपट्टी की तरह बनाना चाहते हैं। हम अपने से गाँव में झाड़ू देंगे, मैला साफ करेंगे। हम लोगों का सब किया हुआ है।"

इस अवसर पर बालदेव गाँव वालों को स्थानीय नेता विश्वनाथ चौधरी का एक पत्र भी दिखाते हैं जिसमें 'कस्तूरबा स्मारक निधि' की अस्थायी कमेटी के गठन हेतु होने वाली मीटिंग में बालदेव की उपस्थिति को आवश्यक बताया गया है। परिणाम यह निकलता है कि उनकी गाँव वालों पर धाक जम जाती है–

"चौधरी जी भी बालदेव से राय लिए बिना कुछ नहीं करते हैं। यह अपने गाँव का भाग है कि बालदेव जैसा हीरा आदमी यहाँ आकर रहते हैं। अपना गाँव भी अब सुधर जायगा जरूर।"

डाक्टर प्रशान्त के प्रथम बार गाँव आने पर बालदेव ही उसका स्वागत सत्कार करते हैं और गाँव के लोगों का उनसे परिचय कराते हैं। अभिप्राय यह कि वे मेरीगंज के वास्तव में ही लीडर बन जाते हैं। पुरेनियाँ में होने वाली कांग्रेस पार्टी की सभा में बालदेव इतने स्त्री–पुरूष एकत्र कर ले जाते हैं कि नेता लोग चकित रह जाते हैं –

"शिवनाथ चौधरी जी, गंगुली जी, शशांकजी तथा नाथ बाबू, सभी आश्चर्य से देखते हैं। चौधरी जी बादलेव पर बड़े खुश हैं। नाथ बाबू कहते हैं ऐसे ही सभी वरकर अपने फील्ड में वर्क करें तब तो ? दो महीने में ही इतने गाँवों को अकेले ही आरगेनाइज कर लिया है। चदन्निया मेम्बर कितना बनाया है ? पाँच सौ ? तब तो तुम .... आप जिला कमेटी के मेम्बर हो गए।"

उन्हें कपड़े चीनी आदि कंट्रोल रेट की वस्तुएँ बेचने का उत्तरदायित्व सौंप दिया जाता है। जिसे वे यथासाध्य ईमानदारी से पूरा करते हैं। गाँव में चरखा सेंटर खुलवाने में भी वे सक्रिय योगदान करते हैं।

संथालों और ग्रामवासियों में हुई मारकाट में बालदेव और कालीचरण गवाह बनाए जाते हैं। तहसीलदार विश्वनाथ कहते हैं कि बालदेव की गवाही पर ही सारी बात है। किन्तु बादलेव का निश्चय है कि वे सरकारी कटघरे में खड़े नहीं होंगे–

गवाही के लिए हम कटघरा में नहीं चढ़ा सकते। महतमाजी कहिन हैं – झगड़ूं न जाहू कचहरिया, बेईमानों के ठाठ जहाँ।"

बालदेव का भोलापन भी उल्लेखनीय है। उनकी दृष्टि में किसी व्यक्ति को कामरेड–

"टीक–मोंछ काटकर, मुर्गी का अंडा खिलाकर कामरेड बनाया जाता है। कम्फ जेहल में कितने लोगों को कॉमरेड होते देखा है। राजनीतिक दृष्टि से किंचित गिरावट उस समय लक्षित होती है जब बालदेव बावनदास को गांधीजी द्वार लिखी चिट्ठियों का राजनीतिक लाभ उठाना चाहते है।

**नारियों के प्रति मातृ–भाव की भावना :–**

बालदेव के चरित्र की यह विशेषता भी उल्लेखनीय है कि उनकी नारियों के प्रति दृष्टि में मातृत्व–भाव की प्रधानता है। पितृहीन बालदेव का माता के द्वारा असीम वात्सल्यपूर्वक पालन किया जाना इसका मूलकारण माना जा सकता है। बाद में बालदेव को कांग्रेस–पार्टी का सदस्य बनने के उपरान्त मायेजी के रूप में मातृभाव की झलक मिलती है, जिसका कारण है बालदेव के बीमार हाने पर मायेजी द्वारा उनकी अपने बच्चे की भांति देख–रेख करना। यही कारण है कि मेरीगंज में लछमी का बालदेव के प्रति आकर्षण मातृभाव का नहीं है, फिर भी बादलेव को लछमी में भी माता की ही झलक दिखाई देती है–

आँसू की गरम बूँदें बालदेव की बाँह पर ढुलक कर गिरीं। माँ, रूपमती मायेजी और लछमी दासिन ! मायेजी जैसा ही लछमी भी भाखन देना जानती है। लछमी भाखन दे रही है।"

वह जब प्रथम बार लछमी के सम्पर्क में आता है तो उसको लछमी के शरीर से एक विशेष प्रकार की सुगन्धि आती है –

लछमी के शरीर से एक खास तरह की सुगन्ध निकलती है। पंचायत में लछमी बालदेव के पास ही बैठी थी। बालदेव को रामनगर मेला के दुर्गा मंदिर की तरह गंध लगती है–मनोहर सुगन्ध। पवित्र गंध ! ... औरतों के देह से तो हल्दी लहसुन प्याज और घास की गंध निकलती है।"

लछमी रामदास की ज्यादतियों से तंग आकर बालदेव की ओर झुकती ही जाती है। वह बालदेव से कहती है–

हाँ ! मैं कहां जाऊँगी ? मेरा क्या होगा ? महंथ की दासी बनकर ही मैं मठ पर रह सकती हूँ ।" लछमी की आँखें भर आती हैं।

"नहीं लछमी, तुम ..... रामदास की दासी नहीं। मैं.... तुम आप।"

बालदेवजी लछमी पगली की तरह बालदेवजी से लिपट जाती है। रच्छा करो बालदेव। तुम कह दो एक बार–तुम्हें रामदास की दासी नहीं बनने दूंगा ! तुम बोलो चन्ननपट्टी नहीं जाऊँगी। मुझे छोड़कर मत जाओं बादलेव दुहाई।"

लछमी बालदेव जी को संभलते हुए कहते हैं कोई देख लेगा।"

लछमी चाहती है कि बादलेव उसको पत्नी के रूप में अपनाकर उसे रामदास के चंगुल से छुड़ाएँ, किन्तु बालदेव को तो लछमी में साक्षात् मायेजी और भारतमाता के दर्शन होते हैं –

लछमी आंखें मूँदकर ध्यान की आसनी पर बैठी है। सफेद मलमल की साड़ी पर बिखरे हुए लम्बे–लम्बे काले बाल! और गोरा मुखमंडल । ध्यान आसन पर बैठकर इस प्रकार उपदेश देने वाली यह लछमी कोई और है ! बालदेव के हाथ स्वयं ही जुड़ जाते हैं।

बालदेव को लगता है, खुद भारतमाता बोल रही है। यह सोच है। ठीक यही रूप है जिनके पैर खून से लथपथ हैं। जिनके बाल बिखरे हुए हैं। बावनदास कहता था भारथमाता जार–बेजार रो रही है। नहीं माँ रो नहीं। अब पंथ बता रही है। उचित पंथ पर अनुचित करम करने वालों को चेता रही हैं।

भारतमाता की जै ! महतमाजी की जै ! भारथमाता ! भारथमाता !"

महंथ रामदास बहुत देस से कनैल गाछ की आड़ में खड़े होकर देख–सुन रहे थे। ध्यान आसन पर बैठी हुई लछमी उपदेश दे रही है और बालदेवजी हाथ जोड़े एकटक से लछमी को देख रहे है। अचानक बालदेव जी लछमी के चरण पकड़कर हल्ला करने लगे –भारतमाता की जै !

भंडारी ! भंडारी ! महंथ रामदास पिछवाड़े की ओर भगते हुए चिल्लाते हैं, भंडारी ! बालदेव पगला गया । दौड़ो।"

बालदेव का पागलपन का दौरा समझकर पूरा गाँव इकट्ठा हो जाता है। बालदेव बाहें ऐंठकर हाथ छुड़ाकर खड़े हो जाते हैं –

आप लोग क्या समझते है मैं पागल हो गया हूँ ? कभी नहीं, हरगिज नहीं, कौन कहता है हम गाँजा पीते हैं। दारू–भाँग–गाँजा की दुकान में पिकेटिन किया है, और हम गाँजा पीयेंगे। छिःछीः। हम महतमाजी के पंथ को कभी नहीं छोड़ सकते। साच्छी है महतमाजी। लछमी को सम्बोधित करते हुए वे कहते हैं –

ओ ! लछमी ! .... लछमी दासिन ! साहेब बंदगी। ठीक है कोई बात नहीं। हम पर कभी–कभी महतमाजी का भी होता है।"

बालदेव के इस पागलपन के दौरे का कारण यह है कि वे ये सोचकर कि मलेरिया की गोलियाँ सात दिन का झंझट कौन उठाएगा, एक दिन में ही सातों गोलियाँ खा लेते हैं।

लछमी की प्रेरणा से बालदेव वैरागी धर्म स्वीकार कर लेते हैं।

"जिस दिन उन्होंने परसाद उठाया, उसी दिन से माथा ठंडा हो गया। लछमी तीन–चार दिन तक सतसंग करती रही। आखिर बालदेवजी हार गए। बालदेवजी अब गृहस्थ नहीं रहे, साधू हो गए। मोछभदरा (क्षौर कर्म) करवा कर बालदेवजी का मुँह ठीक सोलह पटनियाँ आलू की तरह हो गया है। अब वे जयहिन्द के साथ–साथ साहेब बंदगी भी जोड़कर बोलते हैं।

रामदास और उसकी दासिन (रखैल) रामपियरिया द्वारा जब लछमी का घोर अपमान किया जाता है तो उस रात के सतसंग में लछमी जो द्विअर्थक भजन गाती है –

एके गृह, एक संग में, हो बिरहिय संग केत ।

कब प्रीतम हँसि बोलिहैं जोह रही मैं पंथ।"

और उसके कपोलों पर आँसू ढुलकने लगते है तो बालदेव उसे आलिंगन बढ़कर लेते हैं –

लछमी ! लछमी ! रोओ मत लछमी ! बादलेव की बाँहों में भी इतना बल है ? लछमी को बाँहो में कसे हुए हैं।"

धीरे–धीरे बालदेव के हृदय में लछमी पर अधिकार की भावना बढ़ जाती है। वे दो–एक दिन के लिए रामकिसुन आश्रम जाते हैं, तो वहाँ के शर्माजी उससे यह व्यंग्य कर देते हैं –

अच्छा तो बालदेव जाओ ! हम बेवकूफ हैं जो तुमको रोकेंगे ! तुमको यहाँ रोक लें और उधर तुम्हारी कोठारिन किसी से सतसंग करने लगे तो हुआ ! हा हा हा ! माफ करना, अच्छा तो जैहिन्द ।"

तो बालदेव के हृदय में यह बात कुछ घर कर लेती है कि कहीं लछमी किसी से वास्तव में ही सतसंग न करने लगे। और वास्तव में ही जब उन्हें खलासीजी से यह ज्ञात होता है कि लछमी के समीप एक नवतुरिया साधू बैठकर बीजक पढ़ रहा है तो वे सोचने लगते हैं –

लेकिन लछमी तो अब मठ की कोठारिन नहीं ! एक भले घर की इसतिरी हैं। .... जब मैं घर में नहीं था तो वह क्यों गया ? आखिर लोग क्या सोचते होंगे ? नहीं यह बात अच्छी नहीं। लछमी को समझा देना होगा।'

उधर उनकी मौसी भी बालदेव और लछमी के **आसरम** के सामने आकर रोज गालियां सुना जाती है –

अरे भकुआ रे ! एही दिन के लिए पाल पोस के लिए इतना बड़ा किया था रे । .... मुड़िक टौना रे ! लछमिनियाँ ने तो तुमको मोखा की माटी खिलाकर बस कर लिया है। भेंड़ा बनाकर रख लिया है। रे बेलज्ज मोटकी–घुमसी की सूरत पर कैसे भूल गया रे।" लछमी को उसे कभी चावल, कभी गेहूँ और दाल देकर विस करना पड़ता है।

लछमी के समीप लौटकर बालदेव उससे उखड़ी–उखड़ी बातें करते हैं और उस पर कटाक्ष करते हुए कह देते हैं–

सतसंग ही करना है तो उनकी आसनी यहीं लगा दो। दिन–रात खूब सतसंग कर देना।" बालदेव जी ओंठ टेढ़ा करके एक अजीब मुद्रा बनाकर हाथ चमकाकर कहते हैं – सतसंग।

यह सुनकर लछमी के नथुने उठने पर और यह कहने पर कि क्या मुझे रंडी समझ लिय है, वे कह देते हैं –

हम तुम्हारे पालतू कुत्ता नहीं। हम अभी चन्ननपट्टी चले जाएँगे, अभी आँखें उठाकर खड़े हो जाते हैं। किन्तु लछमी क्रोध को पाप का मूल बताते हुए जब यह कहती है कि जाते हुए मुझे कलंक लगाकर मत जाइए और वह रोने लगती है, तो वे उसको समझाते हुए कहते हैं – तुम पर भला सन्देह करेंगे। रोओ मत !

"रोओ मत । लेकिन तुमको अब खुद समझना चाहिए कि तुमको अब खुद समझदार होना चहिए कि तुम अब मठ की कोठारिन नहीं, मेरी इसतिरी हो। लोग क्या कहेंगे"। और वे लछमी को क्षमा कर देते हैं।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि बालदेव गांधीवादी सिद्धान्तों मे सच्ची आस्था रखने वाले, अहिंसा के पुजारी तथा देश–सेवा का व्रत लिए हुए सरल हृदय प्राणी हैं।

### 4.3.5 महन्त सेवादास

महन्त सेवादास और उसका चेला रामदास उपन्यास के उन पात्रों में हैं जिनके लछमी नामक दासिन से अवैध सम्बन्ध कथानक को एक नई गति प्रदान करते हैं। उपन्यासकार ने उनका कथा में समावेश ही किंचित नाटकीय रीति से किया है –

सतगुरु हो ! सतगुरु हो !

महंत साहेब सदा ब्राह्मवेला में उठते हैं। हो रामदास ! आसन त्यागी जी । लछमी को जगाओ ! सतगुरु हो ! ये कभी जो बिना जगाए जागें। रामदास ! हो जी रामदास !"

रात बहुत बाकी है तो क्या हुआ ? एक दिन जरा सवेरे ही सही। सोओ मत ! धनी में लकड़ी डाल दो । कोठारिन को जगा दो। .... सतगुरु साहब ने सपना दिया है।"

महन्त सेवादास वार्धक्य की उस दशा को पहुँच चुके है जब दन्तविहीन मुख से कुछ के स्थान पर कुछ अन्य ही शब्द निकला करते हैं –

"माघ के ठिठुरते हुए भोर को मठ से प्रातकी की निर्गुण वाणी निकलकर शून्य में मंडरा रही है। बूढ़े महंथ साहब पहला पद कहते हैं। दंतहीन मुँह से प्रातकी के शब्द स्पष्ट नहीं निकलते। गले की घरघराहट सुर में बाधा डालती है, वेसुरा राग निकलता है। दमें से जर्जर शरीर में दम कहाँ ? .... लेकिन लछमी सब सँभाल लेती है। पाँच साल पहले प्रातकी गाने के समय उसकी आँखों के पलकें नींद से लदी रहती थी'। महंथ साहब जब गीत की दूसरी पंक्ति 'भोर भयो भाव भरण' गाते थे तो वह बहुत मुश्किल से अपनी हँसी रोक पाती थी।

सत्संग से महंत साबह साधुओं और शिष्यों को जिस प्रकार का उपदेश देते हैं उसकी कुछ बानगी अवलोकनीय है –

"सतगुरु सेवा सत्य करि माने सत्य विचार।

सेवक चेला सत्य सो जो गुरु वचन निहार ।।

फिर सात–चक्र परिचय !

प्रथम चक्र आधार कहावे गुद स्थल के मांही।

द्वितीय चक्र अधिष्ठान कहिए लिंगस्थल के मांही।

तृतीय चक्र मार्गपूरण जानो नाभी स्थल ।"

उपस्थित लोगों को वे अपने स्वप्न का जो वृत्तांत सुनाते हैं उसमें इस तथ्य पर बल दिया गया है कि गाँव में खुलने वाले अस्पताल में सभी लोगों को सहयोग देना चाहिए। स्वप्न–वृत्तांत मन गढ़ंत जैसा प्रतीत होता है –

आज, मध्य रात्रि में, सतगुरु साहेब सपने में मेरे आसन के पास आए। हम जल्दी से उठके साहेब बन्दगी किया। हमको दयाभाव देके साहेब कहिन–सेवादास, तुम नेत्रहीन हो, लेकिन तुम्हारे अन्तर के नैनों का जोत बड़ा विलच्छन है। हम भेख बदल के आए और तू पहचान लिया ? तुम्हारे ज्ञान नेत्र में दिब्बजोत है। सो, तुम्हारे गाँव में परमारथ का कारज हो रहा है और तुमको मालूम नहीं ? गांधी तो मेरा ही भगत है। गांधी इस गाँव में इसपिताल खोलकर परमारथ का कारज कर रहा है। तुम सारे गाँव को एक भंडारा दे दो। कहके साहब अन्तरधियान हो गए। हमारी निद्रा भंग हो गई। सतगुरु के बिरह में चित चंचल हो गया। बिरह अगिनि तन कैसे बूझे, गृहवन अंधकार नहीं सूझे। आखिर सतगुरु आज्ञा शब्द विचार कर चित को शान्त किया।"

भोज की बात को लेकर लोग तरह–तरह की बातें कहते हैं। कुछ लोगों की राय में यह महंत सेवादास द्वारा अपने पापों का प्रायश्चित है क्योंकि उसने महंत होते हुए भी रखैल रखी हुई है। यादव टोली के किसनू के शब्दों में –

"अंधा महंत अपने पापों का प्राच्छित कर रहा है। बाबाजी होकर जो रखेलिन रखता है वह बाबा जी नहीं। ऊपर बाबा जी, भीतर दगाबाजी। क्या कहते हो, रखेलिन नहीं, दासिन है। किसी और को सिखाना। पाँच बरस तक मठ में नौकरी किया है, हमसे बढ़कर और कौन जानेगा मठ की बात ? और कोई देखे या न देखे, ऊपर परमेसुर तो है।'' महंत जब लछमी दासिन को मठ पर लाया था तो वह एकदम अबोध थी, एकदम नादान एक ही कपड़ा पहनती थी । कहाँ वह बच्ची और पचास बरस का बूढ़ा गिद्ध।

लछमी को लेकर महंत सेवादास के विषय में ऐसी ही धारणा बन जाती है।

"महंत सेवादास इस इलाके के ज्ञानी साधु समझे जाते थे – सभी सास्तर पुरान के पंडित। मठ पर आकर लोग भूख–प्यास भूल जाते थे। बड़ी पवित्र जगह समझी जाती थी। लेकिन जब महंत दासिन को लाया, लोगों की राय बदल गई।

बसुमतिया मठ के महंत से इसी दासिन को लेकर कितने लड़ाई–झगड़े और मुकदमे हुए। बसुमतिया का महंत कहता था, लछमी दासिन का बाप हमारा गुरु भाई था, इसलिए बाप के मरने के बाद उस पर मेरा हक है। सेवादास की दलील थी लछमी का बाप जिस मठ का सेवक था वह मेरीगंज मठ के अधीन है इसलिए लछमी पर हमारा अधिकार है। अन्त में लछमी कानूनन सेवादास की ही हुई। सेवादास के वकील साहब ने समझाकर कहा था– महंत साहब ! इस लड़की को पढ़ा–लिखाकर इसकी शादी करवा दीजिएगा। महंत साहब ने वकील को विश्वास दिलाया – वकील साहब लछमी हमारी बेटी की तरह रहेगी। लेकिन आदमी की मति को क्या कहा जाय !

मठ पर लाते ही किशोरी लछमी को उन्होंने अपनी दासी बना लिया। लछमी अब जवान हुई है, लेकिन लछमी के जवान होने के पहले ही महंत सेवदास की आँखें अपनी ज्योति खो चुकी थीं। पता नहीं लछमी की जवानी को देखकर उनकी क्या हालत होती। अब तो महंत सेवदास को बहुत लोग प्रणाम बन्दगी भी नहीं करते। ..... कर्म–भ्रष्ट हो गया है। बगुला–भगत है। ब्रह्मचारी नहीं व्यभिचारी है।"

सेवादास के चरित्र के सम्बन्ध में लोगों की यह धारणा उचित ही है क्योंकि यह वास्तव में ही साधु–धर्म से गिरकर विवश लछमी की विवशता का अनुचित लाभ उठाता है। इसका परिणाम यह निकलता है कि सेवादास कहने के लिए ही महंत होता है, जबकि मठ के काम–काज का उत्तरदायित्व लछमी ही सँभालती है।

महंत सेवदास का प्राणान्त भी व्यभिचार–लालसा के कारण ही होता है। उनके नेत्रों की ज्योति चली गई है, मुँह में दाँत नहीं रहते, फिर भी उनकी लछमी के साथ विलास की भूख शान्त नहीं होती। जब तक लछमी अबोध किशोरी थी और महंत सेवादास अधेड़ व्यक्ति थे, तब तक तो वह उनकी कामतृप्ति की विवशता सहन करती आयी है, किन्तु अंततः अब तो उसको उनसे घृणा हो जाती है।

"लछमी ! ओ लछमी !"

"आई !" लछमी कनुमुनाती हुई उठती है। .... उस दिन वीजक छुकर कसम खाये थे और आज फिर पुकारने लगे। सतगुरु हो, तुम्हारी बुलाहट कब होगी ? बुला लो सतगुरु अपनी दासी को।

"लछमी !"

"महंत साहेब, चित को शांत कीजिए। सतगुरू का ध्यान कीजिए माया ....."

"सब माया है लछमी। लेकिन एक बार पास आओ ।"

अंधा आदमी जब पकड़ता है तो मानों उसके हाथों में मगरमच्छ का बल आ जाता है। अंधे की पकड़ लाख जतन करो, मुट्ठी टस–से–मम नहीं होगी हाथ है या लोहार की संड़सी ! दंतहीन मुख का दुर्गंध ! ..... लार ! .... महंत साहेब। अरे रामदास ! रामदास ! जल्दी उठो जी ! महंत साहेब को क्या हो गया।"

होता यह है कि महंत सेवादास को सतगुरु अपने समीप बुला लेते हैं। हाँ धार्मिक आस्था वाले लोग यह सोचते हैं कि उन्हें इच्छा–मृत्यु उपलब्ध हुई है। उन्होंने आज शाम को भंडारा किया था और रात को स्वेच्छापूर्वक प्राण त्याग दिए हैं –

"महंत साहेब सिद्ध पुरुष थे। इच्छा–मृत्यु हुई है। रात को बैठकर गाँव के बूढ़े–बच्चो को खिलाकर आये और रात में ही चोला बदल लिए। दुनिया में ऐसी मरनी सभी को नसीब नहीं होती। गियानी महातमा थे।"

रामदास भी उनकी इच्छा–मृत्यु के बारे में एक कल्पित कहानी गढ़ लेता है –

"भंडारा से लौटकर जब सरकार आए और आसन पर 'धेयान' लगाकर बैठे तो देह से 'जोत' निकलने लगा। हम मसहरी लगाने गये तो हमारे से मना कर दिया। हम धुनी के पास बैठकर देखते रहे। सरकार के देह का जोत और तेज हो गया और सरकार एकदम बच्चा हो गए। जोत की चमक से हमारी आंखें बन्द हो गईं। हम वहीं धुनी के पास लेट गए। कोठारिन जी जब हल्ला करने लगी तब आँखें खुली।"

अभिप्राय यह है कि महंत सेवादास एक दुर्बल चरित्र धर्माधिकारी हैं। उनके विषय में हमे लछमी का यह कथन भी उचित नहीं प्रतीत होता –

"चढ़ती जवानी में, सतगुरु साहेब की दया से, माया को जीतकर ब्रह्मचारी रहे। बुढ़ौती में तो आदमी की इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती है, माया के प्रबल आघातों को नहीं सँभाल सकती हैं। यह तो महंत साहेब का दोख नहीं।"

सेवादास की जवानी के दिनों में तो लछमी पैदा भी नहीं हुई होगी । अतः उसके द्वारा उनको जवानी में सच्चरित्र होने का दिया गया प्रमाण–पत्र उचित नहीं प्रतीत होता। उपन्यासकार ने इस पात्र के माध्यम से मठ–मन्दिरों में पनपने वाले व्यभिचार का पर्दाफाश किया है।

### 4.3.6 महंत रामदास

महंत रामदास के विषय में यह कहना सर्वथा उचित है कि वह भ्रष्ट और व्यभिचारी दुर्गुणों से युक्त है। और महंत बनने के सर्वथा अयोग्य है। महंती भी उसको सौभाग्यवश ही मिल जाती है अन्यथा वह एक अनपढ़ और गंवार व्यक्ति है। अपने बाल्यकाल के विषय में सोचता हुआ वह कहता है –

रामदास सोचता है, "यदि खंजड़ी बजाना नहीं जानते तो आज तक बेलाही के जमींदार के भैंस की पूँछ हाथ से नहीं छूटती। महंत साहब उसकी खंजड़ी सुनकर मोहित हो गए और वह रात को ही महंत साहब के साथ भागकर मेरीगंज मठ पर आ गया। पंद्रह साल पहले की बात ! पन्द्रह साल बाद रामदास का भाग फिरा है। जै हो सतगुरु साहेब की।"

महंत सेवादास की मृत्यु के उपरान्त उसका एक मात्र चेला होने के कारण रामदास को ही महंती अधिकार मिलता है और लरसिंघदास इस विषय में आचार्य जी का संदेश लेकर आता भी है किन्तु मेरीगंज मठ पर एक रात रहने के बाद उस पर स्वयं महंत बनने का मोह सवार हो जाता है। कारण यह है –

"नौ सौ बीघे की काश्तकारी। कलमी आम का बाग, दस बीघे में सिर्फ केला ही लगा हुआ है। एक–एक घौर में हजार केले फले हैं। हजारिया केला। दो कोड़ी गाय, चार गुजराती भैंस और सबसे कीमती सम्पति–अमल्य धन– लछमी दासिन ! लछमी दासिन कहती है, महंथ साहेब का बस यही एक चेला है – रामदास। तो कानूनन रामदास ही होने वाला अधिकारी महंथ है। रामदास काठ का उल्लू रामदास ! सतगुरु हो ! यह अंधेर है। रामदास महंथ नहीं हो सकता। छुछंदर की तरह तो वह सूरत है, वह महंथ होगा। नहीं ऐसा नहीं हो सकता।"

लरसिंघदास के षड्यंत्र के कारण रामदास को महंती मिलने से पूर्व बड़ा अपमान झेलना पड़ता है। उसके इशारे पर आचार्य गुरु के साथ आया हुआ नागा बाबा उसको खड़ाउओं से पीटता है।

"रामदास की तो पीटते–पीटते देह की चमड़ी उधेड़ दी है। नागा बाबा में सूअर ने बच्चे, कुत्ते के पिल्ले ! तै महंथ बनेगा। आ इधर ! तुझको खड़ाऊँ से टीका दे दूँ महंती का। तेरी बहिन को ! (खटाक) तेरी माँ को ! (खटाक) घसियारे का बच्चा। जा लक्कड़ लाकर धूनी में डाल।"

आचार्य गुरु कह देते हैं –

"रामदास को महंती का टीका नहीं मिल सकता। क्या सबूत है कि वह महंत सेवादास का चेला है ? है कहीं लिखा हुआ ? कोई कील है ? पंथ के नियम के मुताबिक चेलाहीन मठ का महंत अचारज ही बहाल कर सकता है।"

हाँ कालीचरण द्वारा लरसिंघदास को महंत बनाने का ऐन मौके पर विरोध किए जाने के कारण रामदास को महंती मिल जाती है और महंत बनकर वह अधर्मता की ओर बढ़ता जाता है। लछमी के आकर्षण के वशीभूत होकर वह भी सेवादास जैसा रास्ता अपनाना चाहता है। वैसे किसनू के शब्दों में वह इससे बहुत पूर्व ही लछमी के साथ मुँह काला कर चुका है–

"वैसा ही चंडाल है वह रमदसवा। वह साला भी अंध होगा देख लेना महंत एक बार चार दिन के लिए पुरैनियाँ गया था। इसने सोचा कि चार रात तो लछमी चैंन से सो सकेगी। ले बलैया ! बाध के मुँह से छूटी तो बिलार के मुँह मे गई। उसके बाद लछमी ऐसी बीमार पड़ी कि मरते मरते बची। पाप भला छिपे । रामदास को भिगी आने लगी और महंत सेवादास सूरदास हो गये। एक दम चौपट।"

अपने गुरु की मृत्यु तक रामदास के आचरण और स्वभाव में साधुओं जैसे गुणों का उद्रेक नहीं होता। उपन्यासकार के अनुसार–

"लछमी के रग रग में अब साधु–सुभाव, आचार–विचार और नियम– धरम रम गया है। साहेब की दया है। और यह रामदास ? गुरु जाने, इसकी मति गति कब बदलेगी। बचपन से ही साधु की संगति में रहकर भी जो नहीं सुधरा, वह अब कब सुधरेगा ? ..... भक्ति–भाव न जाने भोंदू, पेट भरे से काम। बस, दो ही गुण हैं – सेवा अच्छी तरह करता है और खंजड़ी बजाने में बेजोड़ है।"

उसके खंजड़ी–वादन की प्रशंसा में अन्यत्र कहा गया है –

"रामदास की खंजड़ी की गमक निःशब्द वातावरण में तरंगे पैदा करती है। खजड़ी में लगी हुई छोटी–छोटी झुनुकियों की हल्की झुनुक ! मानो किसी का पालतू हिरन नाच–दौड़ रहा हो। डिम डिमिक ! झन झुनुक–झुनुक।"

महंत बनने के उपरान्त रामदास अपने गुरु के आचरण का प्रायः पूर्ण रूप में ही अनुकरण करता है –

"महंत रामदास भी छींकने, खाँसने और जमाही लेने के समय महंत सेवादास जी की तरह चुटकी बजाते हैं, सतगुरु हो, सतगुरु हो, कहते हैं और आँखें स्वयं ही बन्द हो जाती हैं।

लछमी के इस भजन को सुनकर

संतो हो, करूँ बँहियाँ बल आपनी

सो कस मरे पियास ! हो संतो से कस मरे पियास।"

रामदास इस उधेड़नबुन में निमग्न हो जाता है –

"सो कस मरे पियास ? महंथ रामदास के आँगन में नदी बह रही है और वह प्यार से मर रहे हैं। ... सतगुरु वचन में कहा है –

जस खर चंदन लादे भारा, परिमल बासु न जानु गमारा।"

परिमल बास महंत रामदास को नहीं लगती, सो बात नहीं। परिमल बास से उनका भी मन मत्त हो जाता है, लेकिन वह क्या करें ? एक दिन मुँह से निकल गया था – लछमी। जरा इधर आना तो ! बस चार घंटे तक कोठारिन ने सतगुरु वचनामिरित की झड़ी लगा दी थी –

"अंतर जोति सबद इक नारी, हरि ब्रह्मा ताके त्रिपुरारी।

ते तिरिये भंग लिंग अनंता, तेउ न जाने आदि न अंता।"

महंत साहेब, आप अपने चित्त को मत विचलित कीजिए। यह आपके पूर्व जन्म का पुण्य है कि आपको महंती की गद्दी मिली है नहीं तो आपके जैसे लोगों को भैंस चराने के सिवा और कोई काम नहीं मिल सकता। आप मेरे गुरु बेटा है, मैं आपकी गुरु भाई।"

रामदास की कामाग्नि को लछमी गुरु वचनामृत सुना–सुनाकर शांत करती रहती है, किन्तु रामदास लछमी के लोगों से मिलने–जुलने पर नजर रखते है। उन्हें कालीचरन के विषय में संदेह रहता है क्योंकि लछमी उसकी प्रशंसिका है।

"महंत रामदास को पहले कालीचरण पर बड़ा संदेह था। जब वह मठ पर आता तो महंत साहब छिपकर लछमी और कालीचरण की बातें सुनते थे, बाँस की टट्टी में छेद करके देखते थे। लेकिन कालीचरण हमेशा लछमी से चार हाथ दूर ही हटकर खड़ा रहता था। उसकी बोली में भी माया की मिलावट नहीं रहती थी।

उस पर सन्देह करना बेकार है। लेकिन बादलेव जी ? वह तो आजकल आते ही नहीं। उनकी नजर बड़ी मैली है।"

रामदास लछमी के विषय में कड़ा रुख अपनाने से इसलिए डरता है कि कहीं वह कालीचरन से शिकायत न कर दे –

"महंत रामदास जी सोच–विचारकर देखते हैं कालीचरण के डर से ही वह प्यास है। कोई बात हुई कि लछमी उससे कह देगी, और उसके बाद ? चादर–टीका के दिन कालीचरण और उसके गणों ने जो कांड किया था, उसे भूलना मुश्किल है। .... और उन्हीं की बदौलत तो रामदास महंत बना है।"

फिर भी यह सोचकर कि क्या वह कालीचरन के कहने से महंती छोड़ देगा, एक रात को लछमी की कोठरी की छिकनी खोलकर उसके समीप जा पहुँचता है और उसके हाथों अपमानित होता है –

रामदास ! हाथ छोड़ो । बैठो। आखिर तुम चित्त को नहीं सँभाल सके। माया ने तुम्हें भी अंधा बना दिया।"

"माया से कोई परे नहीं है। माया को कोई जीत नहीं सकता।" महंत साहब आज लछमी की हर बात का जवाब देंगे।

तुम नरक की ओर पैर बढ़ा रहे हो, अब भी चेतो।"

अब चेतने से फायदा नहीं। मुझे सरग नहीं चाहिए। .... इस नरक में पहली बार नहीं आया हूँ।"

लछमी को बचपन की बातों की याद दिलाना चाहता है रामदास। लछमी हाथ छुड़ाकर बिछावन पर से उठ जाना चाहती है, लेकिन महंत साहब ने दस मिनट पहले ही चौथी चिलम गाँजा फूँका है।

मैं तुम्हारी गुरुभाई हूँ रामदास।"

कैसी गुरुभाई ? तुम मठ की दासिन हो। महंत के मरने के बाद नये महंत की दासी बनकर तुमको रहना होगा। तू मेरी दासिन है।"

चुप कुता। लछमी हाथ छुड़ाकर रामदास के मुँह पर जोर से थप्पड़ लगाती है। दोनों पाँवों को जरा मोड़कर, पूरी ताकत लगाकर रामदास की छाती पर मारती है। रामदास गिर पड़ता है। .... सतगुरु हो।"

बुखार से तपता हुआ रामदास कह उठता है कि उसे जान से ही क्यों नहीं मार डाला था ?

महंत साहब को बुखार है। छाती में दर्द है। डाक्टर साहब ने मालिश का तेल भेज दिया है। लछमी महंत साहब की छाती पर तेल–मालिश कर रही है। महंत साहब कराह रहे हैं, सतगुरु हो ! अब नहीं बचेंगे। हमको कासी भेज कोठारिन ! हम अपने पाप का प्राच्छित करेंगे। .....हमको जान से ही क्यों नहीं मार दिया ! .... हाय रे ! सतगुरु हो ।"

हाँ बालदेव का मठ पर आना रामदास को अच्छा नहीं लगता अतः वह लछमी से कहता है कि 'कोठारिन, इनको जो चन्ना देना है, देकर विदा करो। सतगुरु हो। महंत साहब दर्द से छटपटाते है। ..... बालदेवजी की नजर बड़ी मैली है।

रामदास को तब बड़ी दुर्गति भोगनी पड़ती है जब वह लछमी को अपने चंगुल में न फँसती देखकर वह ततमा टोली की रमपियरिया की ओर झुकता है। उसकी शिकायत करती हुई लछमी बादलेव से कहती है–

"आप उसे समझाइए बालदेव जी ! वह बोरा गया है। आजकल ततमा टोली में आना–जाना शुरु कर दिया है। भगवान भगत ने कल हिसाब किया है, रमपियरिया की माँ को चार सेर चावल दिलवा दिया है रामदास ने।

रमपियरिया के रामदास की दासिन बनने का यद्यपि जाति वाले विरोध करते हैं किन्तु बिरादरी भोज लेकर इस बात की स्वीकृति प्रदान कर देती है। बिरादरी को भोज देने का प्रबन्ध जब मठ की ओर से करने के लिए कहा जाता है, तो रामदास उत्तर देता है– "लछमी से पूछेंगे"। उसके इस उत्तर को सुनकर रमजू की स्त्री कहती है–

"महंत साहेब, बुरा मत मानिएगा, आप हिजड़ा हैं। रमपियारिया को लछमिनियाँ की लौंडी बना देंगे महंत साहेब, हम सब समझ गए।"

यह सुनकर जोश में आए रामदास का उत्तर है–

नहीं नहीं। ऐसा नहीं हो सकता। रामपियाड़ी जो कहेगी .... वही होगा।"

रामपियारिया के मठ में आकर रहने पर मठ एक प्रकार से सूअर का खुहार जैसा बन जाता है। लछमी के शब्दों में–

"देह का मैल भी मैं ही छुड़ा दूँगी ? कपड़ा मैं ही साफ कर दूँगी ? दस दिन भी नहीं हुए हैं, गद्दीघर (बीजक और महंत के रहने का कमरा) की दीवाल पर थूक खखर की ढेरी लग गई। अधजली बीड़ी के टुकड़ों से घर भरा हुआ है। वह भी मैं ही साफ करूँगी .... अब यह मठ नहीं,सूअर का खुहार है खुहार।"

बात बढ़ने पर लछमी मठ छोड़कर अलग रहने लगती है। लछमी के चले जाने पर रमपियरिया की माँ भी अपने बच्चों के साथ मठ पर पड़ी रहती है, परिणाम यह निकलता है–

"मठ पर तो अब कौआ–मैना के गू के साथ आदमी के बच्चे के भी पैखाने, भिनकते रहते है। रमपियरिया की माये दिन भर पड़ी रहती है, साथ में छोटे–छोटे तीन चार बच्चे रहते है।"

गाँजे को लेकर रामदास और रमपियरिया में तू–तू मैं–मैं हो जाती है। सुनते ही महंत साहब चिढ़ गए, ऐं सुबह को ही न एक भर ला दिया है भंडारी ने।"

रमपियरिया अब महंत साहब की मर्दानगी देख चुकी है। वह चुप क्यों रहे ? दम लगाने के समय होश रहता है कि नहीं। दिन भर घोड़ा के दुम की तरह चिलिम मुँह में तो लगा ही रहता है।

चुप चमारिन ! अखाड़ा को भरस्ट कर दिया ! सतगुरु हो .... लछमी ठीक कहती थी।

इसके बाद रमपियरिया की माये और बच्चों ने मिलकर ऐसा हल्ला मचाया कि बात कुछ समझ में ही न आई ! ....महंत रामदास चिल्ला रहे हैं, चिमटा खनखना रहे हैं और रमपियरिया गा–गा कर सुर चढ़ा कर रो रही है–

''अरे ! तोऽऽरा हाथ में कोढ़ फूटे ऐ कोढ़िया ! करे लछमिनियाँ के खातिर'' ..... अभिप्राय यह है कि रामदास परलोक की तो कौन कहे जीते–जी ही नरक भोगने लगता है।

### 4.3.7 बावनदास

बावनदास को उपन्यासकार ने गांधीजी के लघु संस्करण के रूप में प्रस्तुत किया है यद्यपि उसका उपन्यास की घटनाओं के विकास में विशेष योगदान नहीं है, तथापि जिन भी घटनाओं से वह सम्बन्धित है, वे घटनाएँ उसकी सुरभि से सुरभित हैं। उपन्यास के अन्तिम भाग में बावनदास द्वारा चोरबाजारी को रोकने में अपने प्राण न्यौछावर करना और उसकी झोली के चिथड़े की चीथरिया पीर के रूप में पूजा होना, पाठकों के हृदय में बड़ी ही करूण अनुभूति उत्पन्न करता है।

बावनदास और बालदेव एक ही दिन कांग्रेस पार्टी के सदस्य बनते हैं। उसकी रूपाकृति का परिचय उपन्यासकार के शब्दों में इस प्रकार हैं –

"पूर्व जन्म का फल अथवा सिरजनहार की मर्ज़ी। प्रकृति की भूल अथवा थायराएड, थायमस और प्युटिटिरी ग्लैंड्स के हेर–फेर। डेढ़ हाथ की ऊँचाई, साँवला रंग, मोटे होंठ, अचरज में डाल देने वाली दाढ़ी और चौंका देने वाली मोटी भोंडी आवाज। ऊँचाई के हिसाब से आवाज दस गुना भारी। अजीब चाल मानो लुढ़क रहा हो। अज्ञात कुलशील। जन्मजात साधु । जिस ओर होकर निकलता लोगों की निगाहें बरबस अटक जाती। फिर ताज्जुब की हँसी–मुस्कराहट। पीछे–पीछे बच्चों का हुजूम, तमाशा, कुत्ते भूँकते, इन्सान हँसते।"

रामकिसुन बाबू और उनकी पत्नी आभारानी की जिस सभा में बावनदास ने अपना नाम सुराजियों में लिखाया था, तो –

"रामकिसुन बाबू की स्त्री उसे देखते ही चिल्ला उठी थीं–भगवान ! बावन भगवान।"

और तब से आभारानी उनको सदैव भगवान कहकर ही पुकारती थीं। एक बार जब पुलिस बावनदास को डंडे मारकर भगाना चाहती थी तो –

"पहले ही डंडे की चोट को आभारानी ने झपटकर अपने शरीर पर ले लिया तो पुलिस के पाँव के नीचे की मिट्टी खिसक गई थी– आमार भगवान के मारो ना।" खून से लथपथ खादी की सफेद साड़ी। पत्थर को भी पिघला देने वाली करूणा से भरी बोली आमार भगवान !' बावन के पूर्वजन्म के सारे पाप मानों अचानक ही पुण्य में बदल गए। सूखे ठूंठ में नई कोंपल के अभाव में एक कदम भी न चलते पाकर हँसकर बोले थे–

"मां तुम्हारे भगवान् से ईर्ष्या होती है।"

बावनदास पहले कांग्रेस की सभाओं में खंजड़ी बजाते हुए भजन गाया करते थे। "लाखों की भीड़ में बावनदास खंजड़ी बजाकर गाता है–

"एक राम नाम धन साँचा जग में कछु न बाँचा हो।"

आवाज दूर तक नहीं पहुँचती। लेकिन बावनदास। डेढ़ हाथ ऊँचा यह झर आदमी कितना बड़ा हो गया है। महात्मा जी भीख माँगते हैं। हरिजनों के लिए दान दीजिए।" किन्तु बाद में वह गाने के स्थान पर व्याख्यान देने लगता है। एक सभा में तो जब बावनदास की ऊँचाई के अनुकूल माइक फिट नहीं हो पाता तो स्वयं पंडित नेहरू अपने हाथ में माइक सँभालकर उनका भाषण करवाते हैं –

नैशनल हेरल्ड के मुखपृष्ठ पर बड़ी–सी तस्वीर छपी थी – बावनदास के गले में माला है, नेहरूजी हाथ में माइक लिए झुके हुए हैं, मुस्करा रहे है। तस्वीर के ऊपरी लिखा हुआ था, माइक ऑपरेटर नेहरू।"

बावनदास में देशभक्ति की भावना कूट–कूटकर भरी हुई है और तदर्थ वह अपने प्राण सदैव हथेली पर रखे रहते हैं। सन् 1942 का ही चित्र देखिए –

''कचहरी पर चढ़ाई। धाँय–धाँय ! पुलिस हवाई फायर करती है। लोग भाग रहे है। बावनदास ललकारता है, जनता उलटकर देखती है। डेढ़ हाथ का इन्सान सीना ताने खड़ा है। ..... बम्बई से आई आवाज ! .... जनता लौटती है। बावनदास पुलिस वालों के पाँवों के बीच में से घेरे के उस पार चला जाता है और विजयी तिरंगा शान से लहरा उठता है। महात्मा गांधी की जय !''

अपनी कर्तव्यनिष्ठा के कारण बावनदास का देश के चोटी के नेताओं से व्यक्तिगत परिचय है –

बावन को गांधीजी जानते हैं, नेहरू जानते हैं और राजेन्द्र बाबू भी पहचानते हैं। प्रान्त भर के लीडर और राजनीतिक कार्यकर्ता जानते है।" कैम्प जेल में बावनदास और चुन्नी गुसाईं ने पच्चीस दिन का अनशन करके अग्रेज़ सरकार की नाक में दम कर दिया था–

रूदरफोर्ड और आर्चर ने इन दोनों को देखने माँगा था। गांधीजी की कठोर परीक्षा में, सत्य की परीक्षा में, सत्याग्रह की परीक्षा में, खरे उतरने–वाले दो कुरूप और भद्दे इंसान।

बावनदास का चरित्र इस दृष्टि से भी गांधीजी का लघु संस्करण प्रतीत होता है कि वह भी गांधीजी की तरह गलतियाँ करता है, किन्तु उनका प्रायश्चित करके तुरंत ही स्वयं को सुधार लेता है। एक बार वह मुठिया में (एक–एक मुट्ठी के रूप में एकत्र किया गया) वसूल हुए चावलों को बेचकर उनमें से दो आने की जलेबियाँ खा लेता है, किन्तु शीघ्र ही उसकी आत्मा उसको धिक्कारने लगती है–

लेकिन पेट में पहुँचने के बाद उसे अचानक ज्ञान हुआ। उसकी आँखों के आगे से माया का पर्दा उठ गया। ये पैसे ? मुठिया ? ..... उसकी आँखों के सामने गाँव की औरतों की तस्वीर नाचने लगीं। हाँडी के चावल डालने के पहले, परम शक्ति और श्रदा से एक मुट्ठी चावल गांधी बाबा के नाम पर निकाल कर रख रही है। कूट–पीसकर जो मजदूरी मिली है, उसमें से एक मुट्ठी। भूखे बच्चों का पेट काटकर एक मुट्ठी। और बावन ने उस पैसे से अपनी जीभ का स्वाद मिटाया ! व्रतभंग । तपभ्रष्ट ! दुहाई गांधी बाबा ! छिमा करो ! बावन फूट–फूट रोने लगा। उसकी आँखों से आँसू बह रहे थे और वह कंठ में अँगुलियाँ डालकर कै करता जाता था। सेत्ताराम ! सेत्ताराम। दो दिनो का उपवास। आत्मशुद्धि, प्रायश्चित ! रामकिसुन बाबू ने बहुत समझाया, आभारानी परोसी हुई थाली लेकर सामने बैठी रही, लेकिन बावन ने उपवास नहीं तोड़ा। ...माँ इस अपवित्तर मन को दंड देने से मत रोको। अशुद्ध आतमा मुझे बाबा की राह से डिगा देगी।"

इसी प्रकार के दूसरे अवसर पर उसने पर्दे की आड़ से विचित्रावस्था में सोई हुई तारावती की ओर मंत्रमुग्ध ा जैसी दशा में देखते रहने का पाप किया था। उस समय कुछ देर के लिए उसकी विचित्र मनोदशा हो गई थी –

"पलंग पर अलसाइ सोई जवान औरत ! बिखरे हुए घुँघराले बाल, छाती पर से सरकी हुई साड़ी, खद्दर की खुली अँगिया। बावन के पैर थरथराते हैं। वह आगे बढ़ना चाहता है। ..... वह जानवर है। वह इस औरत के कपड़े को फाड़कर चित्थी–चित्थी कर देना चाहता है। वह अपने तेज नाखूनों से उसके देह को चीर–फाड़ डालेगा।"

किन्तु तभी सहसा ही उसके विचार पलट जाते हैं क्योंकि उसे लगता है मानो गांधी बाबा उसे देख रहे हैं –

ऐं ! सामने की खिड़की से कौन झाँकता है। गांधीजी की तस्वीर ? हाथ जोड़कर हँस रहे हैं बापू ! .... बाबा ! .... धधकती हुई आग पर एक घड़ा पानी। बाबा, छिमा ! छिमा ! दो घड़े पानी ! दुहाई बापू ! पानी, पानी पानी ! शीतल जल ! ठंडक !

बावन आँखें खोलता है। रामकिसुन बाबू पानी की पट्टी दे रहे हैं। माँ पंखा झुला रही हैं। गांगुली जी चुपचाप खड़े हैं और घबराई हुई तारावती जी कह रही हैं, "चीख सुनकर मेरी नींद खुली तो देखा यह धरती पर छटपटा रहा है।"

इस बार बावनदास सात दिवस तक व्रत रखकर आत्मशुद्धि इन्द्रियशुद्धि और प्रायश्चित करता है। वह अपनी भूल बता देता है तो गांगुली जी कहते हैं कि यह अच्छा ही हुआ कि तुम्हारे भगवान को सूरदास की बात याद नहीं आई, अन्यथा वे अपनी आँखें भी फोड़ सकते थे।

मेरीगंज में चर्खा सेंटर खुलता है तो बावनदास भी वही आकर रहने लगते हैं। संथालों और ग्रामवासियों में होने वाली मारकाट से पूर्व बालदेव सोचते हैं कि यदि बावनदास गांधीजी को चिट्ठी लिखवाने के लिए बाहर न गया होता तो वह सबको मात कर देता।

"बावनदास यदि रहता तो अभी अकेले सबको, मय तहसीलदार बिसनाथ के कानून के सबकी मात कर देता। लेकिन उसका भी दिमाग खराब हो गया है। सात दिन हुए चिट्ठी लिखवाने गया है, सो लौटा नहीं। गांधीजी की चिट्ठी देगा। .... गांधीजी को इतनी फुरसत कहां है जो बाबा तुम्हारी चिट्ठी का जवाब देंगे।"

स्वराज्य मिलने पर देश में उल्लास का वातावरण छा जाता है, किन्तु बावनदास का मन खिन्न है –

"बावनदास को अब अपने पर भी परतीति नहीं होती है। .... बालदेवजी कहते हैं चित्र चंचल हो गया है बावनदास का और थोड़ा 'भरम' भी गया है। बस सिरिफ गांधीजी पर भरोसा है बावन को। ..... बापू सब पार लगावेंगे।

लेकिन उसके दिल में न जाने क्या समा गया है कि हर बात का खराब रूप ही पहले देखता है। संदेहात्मक दृष्टिकोण से ही वह सारी दुनिया को परखता है। बापू ने चिट्ठी का जवाब दिया है :–

"भगवान बावनदास जी ! आप ही धीरज छोड़ देंगे तो भक्तजनों का क्या होगा ? .... बापू के प्रणाम।"

बावन कठ हँसी हँसाते हुए कहता है, "गांगुली जी बापू को देखिए। .... अब हम क्या करें ? मन में सन्देह होता है, दिल उदास हो जाता है।"

गांधीजी की मृत्यु के उपरान्त बावनदास का चोला एकदम ही बदल जाता है –

"बावनदास को देखकर डर लगता है। एकदम सूखकर काँटा हो गये हैं। .... बल इतना ज्यादा कैसे थक गया ?"

बालदेव पटना का हाल पूछते हैं तो बावनदास का निराशाा से ओतप्रोत उत्तर है –

"सुराज मिल गया, अब क्या है। छोटन बाबू का राज है। एक कोरी बेमान, बिलेक मारकेटी के साथ कचेहरी में घूमते रहते हैं। हाकिमों के यहाँ दाँत खिटकाते फिरते हैं। सब चौपट हो गया।"

गांधीजी की भस्म को प्रवाहित करने के लिए कौन लाए ? इस तथ्य को लेकर पटना के कांग्रेसी नेताओं में मची होड़बाजी का उल्लेख करते हुए बावनदास का कथन है –

भसम लाने ... हा ! हा ! देस को भसम करदेंगे ये लोग। भसमासुर !" बालदेव द्वारा यह शंका व्यक्त करने पर कि आपको किसी सोशलिस्ट नेता ने तो नहीं बहका दिया, बावनदास सोशलिस्टों के विषय में भी दो टूक बातें कह देते हैं –

"सोसलिस ? सोसलिस ? क्या कहेगा सोसलिस हमको ? सब पार्टी समान। उस पार्टी में भी जितने बड़े लोग हैं मन्तरी बनने के लिए मार कर रहे है। सब मेले (एम. एल. ए) मंतरी होना चाहते हैं बालदेव ! देस का काम, गरीबों का काम, चाहे मजूरों का काम, जो भी करते हैं, एक ही लोभ से। .... उस पार्टी में बस एक जैपरगास बाबू है। हा हा हा ! उनको भी कोई गोली मार देगा।"

गांधीजी के खतों के छोटे से पुलिदें को बालदेव को सौंपकर बावनदास हिन्दुस्तान और पूर्वी पाकिस्तान के बार्डर की ओर चल पड़ता है। बावनदास की उस समय की मनोदशा ऐसी है कि वे भौंककर आने वाले कुत्ते की ओर भी पलटकर नहीं देखते। गाड़ी में यात्रा के उपरान्त वे कलीमुद्दींपुर की ओर पैदल जाने लगते हैं और नागर नदी के किनारे अपना डेरा लगा देते हैं। उन्हें खबर मिली है कि वहाँ से चोरबाजारी की गाड़ियाँ गुजरेंगी।

हाँ गाड़ियाँ आवेंगी। पचासों गाड़ियाँ। कपड़े, चीनी और सीमेंट से लदी हुई गाड़ियाँ। कटहा के दुलारचन्द कापरा, वही जुआ कंपनी वाला, जिसकी जुए की दुकान पर नेवीलाल, भोला बाबू और बावन ने फारबिजगंज मेला में पिकेटिंग किया था ... आज कटहा थाना – काग्रेंस का सिकरेटरी है। उसी की गाड़ियाँ हैं। सपलाई निसिपिट्टर और कटहा थाना के दारोगा और यहाँ कलमुद्दींपुर का नाका वाले हवलदार मिलाकर रकम आठ आना और उधर दुलारचन्द कापरा रकम आठ आना। उधर के हाकिम–हुक्कामों को भी इसी तरह हिस्सा मिलेगा। लाखों का कारोबार है।"

गाड़ियों के आने की आवाज आने लगती है तो बावनदास बापू से इस परीक्षा में पार उतारने की प्रार्थना करने लगते हैं – ''बापू ! माँ ! मुझे बुला लो अपने पास। क्या करूँगा इस दुनिया में रहकर । .... धरम नहीं बचेगा।"

बावनदास गाड़ियों का मार्ग रोककर खड़े हो जाते हैं और उन गाड़ियों के साथ आने वाले सिपाही रामबुझावन सिंह को पहचान लेते हैं और वह बावनदास को अपने निश्चय पर अडिग देखकर सिपाही, (जो अपने हिस्से के ढाई हजार रुपए ले चुका है) गाड़ियों को वहीं छोड़कर इस बात की दुलारचन्द कापरा को सूचना देता है। मोरगिया शराब पीकर मुर्ग–मुसल्लम उड़ाने वाले सप्लाई इंस्पेक्टर और दुलारचन्द कोई दो टाँगवाली मुर्गी लाने की बात कर रहे होते हैं कि रामबुझावनसिंह लौटकर रस में भंग कर देता है। सब एक–दूसरे का मुँह ताकने लगते हैं। दुलारचन्द शराब का एक और पैग पीकर तथा यह कहकर कि –

''मैं पंजाबी हूँ जी ! मगर आगे आप लोग जानो। मैं अपना फरज अदा करने जाता हूँ। बावन के समीप जा पहुँचता है। बावन उसको गाड़ी के पीछे से झाँकते हुए देखकर कहते हैं –

''कौन ? कापरा जी ! गाड़ी से क्या झाँकते है ! सामने आइए !" बावनदास हँसता है। यह सुनकर कि गाड़ी पास होने दो बावन ! वे कहते हैं –

"आइए सामने ! पास कराइए गाड़ी। आप भी काग्रेंस के मेम्बर है और हम भी । खाता खुला हुआ है अपना–अपना हिसाब लिखवाइए। आज के इस पवित्तर दिन (उस दिन गांधीजी का श्राद्ध हुआ है) को हम कलंक नहीं लगाने देंगे।''

परिणाम यह निकलता है कि बावनदास को रौंदते हुए गाड़ियाँ निकाली जाती हैं जिससे बावन की लाश की चिथियाँ उड़ जाती हैं। हवलदार, सिपाही और दुलारचन्द उस लाश तथा बावन की झोली को नदी के उस पार पाकिस्तानी सीमा में फैंक देते हैं, जबकि सुबह पाकिस्तानी गश्ती पुलिस उसे भारतीय सीमा में फेंक जाती है। उनकी झोली भी एक दरखत पर लटका दी जाती है, जिसकी बाद में चेथरिया पीर के रूप में पूजा होने लगती है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि बावनदास का चरित्रांकन करते हुए उपन्यासकार के मस्तिष्क में गांधीजी का चित्र रहा है। यही करण है कि अपने गुणों के कारण जिनमें किंचित् अवगुणों का भी स्पर्श है, गांधीजी का लघु संस्करण प्रतीत होता है। उसकी आत्मशुद्धि प्रायश्चित, अहिंसावाद और पर सेवा तथा स्वयं को देश के उत्थान और सिद्धान्तों की रक्षा के लिए उत्सर्ग करने की भावना, बावन के चरित्र में मानवेतर गुणों का समावेश सिद्ध करती है।

### 4.3.8 ज्योतिषी काका

ज्योतिषी काका के माध्यम से उपन्यासकार फणीश्वरनाथ रेणु ने गाँव के उन पुराणपंथी ओझाओं का चित्रण किया है जो अस्पताल आदि वैज्ञानिक आविष्कारों पर आधारित साधनों का इस दृष्टि से विरोध करते हैं कि उनसे उनके निजी हितों को ठेस लगती है। ऐसे लोगों का कार्य विभिन्न जातियों के लोगों के मध्य वैमनस्य उत्पन्न करना, भी होता है जिससे उनकी पूछ बनी रहे। मेरीगंज की स्थिति यह है –

"राजपूतों और कायस्थों में पुश्तैनी मनमुटाव और झगड़े हाते आए हैं। ब्राह्मणों की संख्या कम है, इसलिए वे हमेशा तीसरी शक्ति का कर्त्तव्य पूरा करते रहे है।

राजपूतों को ब्राह्मण टोली के पंडितों ने समझाया–जब जब धर्म की हानि हुई है राजपूतों ने ही उसकी रक्षा की है। घोर कलिकाल उपस्थित है, राजपूत अपनी वीरता से धर्म को बचा लें। ब्राह्मण टोली के बूढ़े ज्योतिषी जी आज भी कहते हैं यह राजपूतों के चुप रहने का फल है कि आज चारों ओर, हर जाति के लोग गले में जनेऊ लटकाए फिर रहे हैं। भूमफोड़ क्षत्री तो कभी नहीं सुना था ! शिव हो ! शिव हो !"

गाँव में अस्पताल खुलने की बात सुनकर ज्योतिषी काका सम्पूर्ण गाँव में यह अफवाह फैला देते हैं कि यह गाँव में बीमारी फैलाने का प्रयास किया जा रहा है –

''ज्योतिषी जी का विश्वास है कि डाक्टर लोग ही रोग फलाते हैं। सुई भोंककर देह में जहर दे देते हैं, आदमी हमेशा के लिए कमजोर हो जाता है, हैजा के समय कुओं में दवा डाल देते हैं। गाँव का गाँव हैजा से समाप्त हो जाता है। काला बुखार का नाम पहले कभी लोगों ने सुना था ? पूरब मुलुक कामरू कमिच्छा हासाम से कालाबुखार वालों का लहू शीशी में बन्द करके यही लोग ले आये थे। आजकल घर–घर में कालाबुखार फैल गया है। .... इसके अलावा, बिलैती दवा में गाय का खून मिला रहता है।"

''कोई माने या नहीं माने हम कहते हैं कि एक दिन इस गाँव में गिद्ध–कौआ उड़ेगा ! लक्षण अच्छे नहीं हैं। गाँव का ग्रह बिगड़ा हुआ है। किसी दिन इस गाँव में खून होगा खून ! पुलिस–दरोगा गाँव की गली गली में घूमेगा। और यह इसपिताल ? अभी तो नहीं मालूम होगा। जब कुएँ में दवा डालकर गाँव में हैजा फैलाएगा तो समझना । शिव हो ! शिव हो !''

ज्योतिषी काका डाक्टरों का जो विरोध करते हैं, उसका उन्हें दुष्परिणाम भी भोगना पड़ता है। उनकी पत्नी के बच्चा न होने पर उसका पेट चीरकर बच्चा निकालने की बात उठती है, ज्योतिषी जी इस बात को स्वीकार नहीं करते –

''स्त्री की मृत्यु के बाद से ज्योतिषी जी बहुत गुमसुम रहते हैं। डाक्टर को कितना कहा कि कोई दवा देकर रामनारायण की माँ को उबारिए लेकिन कौन सुनता है ? बस एक ही जवाब ! बच्चा को पेट काटकर निकालना होगा। शिव हो ! शिव हो ! पराई स्त्री को बेपर्द करने की बात कैसे उसके मुँह से निकली।''

ज्योतिषी काका यदा–कदा उचित पक्ष का समर्थन करते दृष्टिगत होते हैं। जैसे संथालों से हुई मारकाट में हरगौरी के मारे जाने पर ये कहते हैं –

''जो भी हो न्याय बात तो यही है विश्वनाथ बाबू इस मुकदमें में अभी पूरी पैरवी करें।''

वे डरपोक ऐसे हैं कि इस भय से काँपते रहते हैं कि कहीं कालीचरण और बालदेव संथालों से हुई लड़ाई में उन्हें भी सम्मिलित न बता दें –

''जोतखीजी के पेट में डर समा गया है – कालीचरण और बालदेव के ही हाथ में जब सब कुछ है तो वे जिसका नाम बतला दें, वह गिरफ्तार हो जाएगा – तुरंत। और कालीचरण, कालीचरण ही क्यों, बालदेव भी उन पर मन ही मन नाराज हैं। बालदेव का तो उतना डर नहीं, मगर कालिया –शिव हो। शिव हो।''

कदाचित् इसी भय से वे कालीचरन की हस्तरेखाएँ देखकर उसके अच्छे भविष्य की घोषणा करते हैं –

''ज्योतिषी काका ने कालीचरण का हाथ देखा है–खूब नन्छतर वली है कालीचरण राजसभा में जस है। बेटा–बेटी भी है। धन भी है। मगर एक गरह बड़ा जब्बड़ है।''

ज्योतिषी काका ने गाँव में अस्पताल खुलते समय भविष्यवाणी की थी कि यहाँ खून होगा। गाँव में दारोगा घूमेगा। यह भविष्यवाणी हरगौरी की मृत्यु के अवसर पर पूरी हो जाती है। इसलिए उसका ग्रामीणों की दृष्टि में महत्व बढ़ जाता है। वे इस बात को सच मान लेते हैं कि ज्योतिषी काका द्वारा डाक्टर प्रशान्त को जर्मनी का जासूस बताना उचित ही था, तभी तो वह गिरफ्तार कर लिया गया है –

''ज्योतिषी जी ठीक ही कहते थे। जरमन वाला का सी आई डी है यह डाक्टर । यहाँ के लोगों को सूई भोंककर कमजोर करने का काम करता था। कुएँ में दवा डालकर सचमुच में हैजा फैलाया है। जरमन वाला का एक यारी है यहाँ कमसीन कौमनीस पार्टी सुनते हैं, उसी पार्टी का आदमी है।''

ज्योतिषी काका ही इन भविष्यवाणियों को सत्य सिद्ध हुई मानकर–

"गाँव के लोग आजकल दिन में पाँच बार परनाम करते है। अलवत्त बरमगियानी है ज्योतिषी काका। कलजुग में भी यदि कुछ तेज बाकी है तो बामन में ही। जोतिस विद्या  हँसी खेल नहीं है।

ज्योतिषी काका ओझाई भी करते हैं और गाँव वालों को उल्टी–सीधी बातों में बहलाते रहते हैं। हीरू के मुख से यह सुनकर कि उसके हँसते–खेलते पुत्र की अचानक ही मृत्यु हो गयी है, वे कहते हैं –

"इतना जल्दी ? कल कौन था ? हुँ ! साप को मारा है न ?"

यह उत्तर पाकर कि हाँ वह ठीक सूरज डूबने के समय मरा है , ज्योतिषी काका ओझा की भाँति सिर हिलाते हुए कह उठते हैं –

"करसामाँ (करिश्मा) है। डाइन का कारनामा है। समझे हीरू ? सुक्रवार को अमावस्या है। जिस पर तुमको सन्देह हो उसके पिछवाड़े में बैठ रहना। ठीक दो पहर वह निकलेगी। उसका पीछा करता वह तुम्हारे बच्चे को जिलाकर तेल–फुलेल लगाकर, गोदी में लेकर जब नाचने लगेगी तो उस समय यदि उससे बच्चा छीन लो तो फिर कोई उस बच्चे को मार ही नहीं सकता। इन्द्र का बज्र भी फूल हो जाएगा।"

ज्योतिषि काका के बहकावे में आकर हीरू पारबती की माँ को डाइन मानकर उसकी हत्या कर देता है। अपने इस प्रकार के कारनामों के कारण ही ज्योतिषी काका की अंततः बड़ी बुरी दशा होती है –

"जोतसीजी को लकवा मार गया। अरधांग ! मुँह टेढ़ा हो गया है। एक आँख एकदम पथरा गई। पखाना–पेशाब सब बिछावन पर ही होता है। राम–नारायण उनके पास अकेले में बैठने में डरता है। रामनारायण जानता है सारी बातें। पारवती की माँ की हत्या की रात से ही उनकी हालत खराब हो गई थी। पेट खूब चला। खून का पैखाना होने लगा– एकदम टटका खून। लाल लाल ....। इसके बाद गाँव से लाश जैसे ही निकली लकवा मार गया। भगवान के टटका इंसाफ को देखकर रामनारायण डर गया था। इतनी जल्दी पाप को फलते बहुत कम देखा है। पैखाने में इतनी दुर्गंधा है कि चार बीघा आसपास लोगों को कै हो जाय ! नरक भोग और किसको कहते हैं। "

हाँ इतने कष्ट भोगते हुए भी वे अपनी अटपटी भविष्यवाणियों से बाज नहीं आते –

"लेकिन जोतसी जी ने कहा था ठीक। सुनते हैं कि जिस दिन पारवती की माँ के केस में दारोगा साहब आये, उस दिन भी बोले हैं, अभी क्या हुआ है – और भी बाकी है। "

संक्षेप में ज्योतिषी काका गाँव के उन ओझा–पुरोहितों का प्रतिनिधित्व करते हैं जिनकी ग्रामीण जीवन में उपस्थिति अनिष्टकर ही सिद्ध हुआ करती है।

### 4.3.9 लछमी

लछमी आलोच्य उपन्यास के नारी पात्रों में प्रमुख स्थान रखती है। उसका उपन्यास में जितनी अधिक घटनाओं और पात्रों से सम्बन्ध है उतना किसी अन्य नारी पात्र का नहीं है। परिस्थितियों की विवशतावश वह दासी और रखैल का जीवन व्यतीत करने को विवश होती है और अपनी अबोधावस्था में अपना कौमार्य खंडित करा बैठने का दुर्भाग्य भोगती है, अन्यथा भोग–विलास की ओर उसकी अभिरुचि नहीं लक्षित होती।

**अनाथ बालिका :–**

लछमी का बचपन उसके दुर्भाग्य की करूण गाथा है। उसकी माता का तभी निधन हो जाता है जब वह पूर्णतः अबोध थी–

"सतगुरु के सिवा कोई भी उसका नहीं। माँ की याद नहीं आती। पसराहा के मठ के पास अपनी झोपड़ी की याद आती है सुबह होते ही बाबूजी कंधे पर चढ़ाकर मठ पर ले जाते थे। .... बाबूजी की महंत साहब बहुत मानते थे। कोई काम नहीं। दिन भी महंत साहेब की धूनी के पास बैठे रहते। गाँजा करो। चूला चढ़ाओं, मठ पर ही हमारा खाना–पीना होता था।" एक दिन ऐसा आता है जब महन्त और रामधन की हैजे से मृत्यु हो जाती है और लछमी अनाथ हो जाती है। अनाथ लछमी किसके संरक्षण में रहे इस तथ्य को लेकर मेरीगंज के मठाधीश सेवादास और बसुमतिया के महंत के मध्य मुकदमें बाजी होती है। सेवादास की दलील थी कि लछमी का बाप जिस मठ का सेवक था वह मठ मेरीगंज के मठ के अधीन है जब की दूसरा महंत लछमी के पिता को अपना गुरुभाई बताकर उस पर अपना अधिकार जताता था। मुकदमें में सेवादास की जीत हुई, जिससे उसके वकील ने कहा था–

महंत साहब इस लड़की को पढ़ा–लिखाकर इसकी शादी करवा दीजिएगा। महंत साहब ने वकील को विश्वास दिलाया था–वकील साहब लछमी हमारी बेटी की तरह रहेगी।" .... लेकिन आदमी की मति को क्या कहा जाये मठ पर लाते ही किशोरी लछमी को उन्होंने अपनी दासी बना लिया था।

**अबोध किशोरावस्था में ही भ्रष्ट :–**

यह लछमी का दुर्भाग्य ही है कि वह अबोधावस्था में ही नर–पशु सेवादास की काम–तृष्णा की शिकार हो जाती है। सेवादास के यहाँ ग्वाले का कार्य करने वाले किसनू के शब्दों में –

"अंधा महंत अपने पापों का प्राच्छित कर रहा है। बाबाजी होकर जो रखैलिन रखता है वह बाबा जी नहीं। ऊपर बाबा जी भीतर रंगवाजी क्या कहते हो। रखेलिन नहीं दासिन है। किसी और को सिखाना।

सेवादास की तरह उसका शिष्य रामदास भी उसकी असहायावस्था का अनुचित लाभ उठाता है और उसे गर्भ रह जाता है।

"वैसा ही चांडाल है यह रामदावा। वह साला अन्धा होगा देख लेना।" महंत एक बार चार दिन के लिए पुरैनिया गया था। हमने सोचा कि चार रात तो लछमी चैन से सो सकेगी। ले बलैया। बाघ के मुँह से छूटी तो बिलाव के मुँह में गई। उसके बाद लछमी ऐसी बीमार पड़ी कि मरते–मरते बची पाप भला छिपे ? रामदास को मिरगी आने लगी और महंत सेवदास सूरदास हो गए। एकदम चौपट !"

**युवावस्था में चरित्र की दृढ़ और तेजस्वी :–**

यह तो सत्य है कि लछमी का हृदय डाक्टर प्रशान्त को देखकर पसीज उठता है और वह बालदेव की सरलता के कारण तो उनकी ओर अधिकाधिक आकृष्ट होती जाती है, तो भी उसमें पर्याप्त चारित्रिक दृढ़ता और तेजस्विता है। प्रथम बात तो यह है कि वह होश सँभालने पर सेवादास से भी बीजक छुआकर यह शपथ लिवा देती है कि वे भविष्य में उसको सहवास के लिए विवश नहीं करेंगे – जो उसकी अबोधावस्था का अनुचित लाभ उठाते हुए उसे अब तक सताते आए हैं। ऐसी शपथ ले लेने पर भी जब रामदास एक रात को उसे अपने समीप बुलाते हैं तो वह कुनमुनाती हुई उठती है –

"उस दिन बीजक छूकर कसम खाये थे और आज फिर पुकारने लगे। सतगुरु हो, तुम्हारी बुलाहट कब होगी ? बुला लो सतगुरु अपने पास दासी को।" वह सेवादास को समझाकर शान्त करने का भी प्रयास करती है और जब कि उसके निषेध की चिन्ता नहीं करते, तो कुछ इस प्रकार से प्रतिरोध करती है कि सेवादास के प्राण पखेरू उड़ जाते हैं।

लरसिंघदास के हाव–भाव देखकर ही लछमी पहचान जाती है कि इस व्यक्ति का आचरण ठीक नहीं है –

"लछमी ने लरसिंघदास की आँखों में न जाने क्या देखा है कि उसकी छाया से भी बचकर चलती है, रात में किवाड़ मजबूती से बन्द करके सोती है। किवाड़ की छिटकिनी लगाने के बाद एक ओखल किवाड़ से सटा देती है।"

उसके कमरे में धँसने की चेष्टा में असफल हुआ लरसिंघदास खिसियाकर रामदास को अंधे गुरु का अंधा चेला कहकर डपटता है, तो प्रातःकाल सतसंग के अवसर घर लछमी उस पर बिगड़ उठती है –

"क्यों आप वैसी भाखा बोले थे ? महंत होने के पहले ही अंधे हो गए ? मैं गुरु–निन्दा नहीं सुन सकती, नहीं सह सकती। रामदास को आप क्या समझते हैं ? वह इस मठ का अधिकारी महंत है। आपके जैसे एक कोट्टी बिलटा (आवारा) साधुओं को वह रोज परसाद देगा। .... बात करना भी नहीं जानते।"

लरसिंघदास जब उस पर उलटा आक्षेप लगाते हुए यह कहता है कि तुमने अचारज गुरु को गाली दी हैं, क्योंकि वे मेरे गुरु–भाई हैं और तुम मुझको बिलटा कहती हो, तो लछमी उस पर बरस पड़ती है –

"रामदास ! लछमी गरज उठती है, गरदनियाँ देकर निकाल दो इसको। यह साधू नहीं राक्षस है। इसके सिर पर माया सवार है। इससे पूछो कि आज सबेरे जब मै स्नान कर रही थी तो बाँस की टट्टी में छेद करके यह क्या

देखता था ? सैतान।"

इसी प्रकार लछमी उस रामदास को भी अवसर आने पर कड़ी फटकार लगाती है जो मठ का महंत होने के नाते उसपर उसी प्रकार अपना अधिकार समझता है, जैसे सेवादास समझा करता था। लछमी आरम्भ से तो उसे शांतिपूर्वक यह समझाती है कि मैं तुम्हारी गुरुभाई हूँ, किन्तु जब रामदास यह कहने लगाता है कि तुम मेरी दासिन हो, तुम्हें मेरी रखैलिन बनकर रहना पड़ेगा, तो लछमी प्रचंड रूप धारण कर लेती है –

चुप कुत्ता ! लछमी हाथ छुड़ाकर रामदास के मुँह पर जोर से थप्पड़ लगाती है। दोनों पाँवों को जरा मोड़कर, पूरी ताकत लगाकर रामदास की छाती पर मारती है, रामदास उलटकर गिर पड़ता है।"

लछमी की तेजस्विता के दर्शन बालदेव के प्रसंग में भी होते हैं। यद्यपि वह बालदेव की प्रति पूर्ण भाव से समर्पित है, तो भी जब बालदेव नबतुरिया साधु के साथ सत्संग को लेकर उस पर व्यंग्य प्रहार करते हैं तो लछमी तिल–मिलाकर कह उठती है – "क्या तुमने मुझे रंडी समझ लिया है ?" इसी प्रकार बावनदास की चिट्ठियों को बालदेव से छीनने के प्रयास में वह अपनी साड़ी में आग लग जाने की भी चिन्ता नहीं करती।

**क्षमाशील :–**

लछमी के चरित्र में क्षमाशीलता का गुण भी पर्याप्त मात्रा में है। कुछ तो परिस्थितियों की विवशता के कारण और कुछ साधुओं जैसी प्रवृत्ति के फलस्वरूप वह रामदास और बालदेव के अपराधों को अनदेखा ही नहीं कर देती है, अपितु एक प्रकार से स्वयं ही उनसे क्षमा–याचना कर लेती है। लछमी के हाथों रात को बुरी तरह मार खाकर और अपमानित होकर रामदास यद्यपि मर जाने की कामना व्यक्त करता है, प्रायश्चित के लिए काशी जाना चाहता है, किन्तु लछमी उस प्रसंग को भुलाकर उसकी पूर्ववत् ही सेवा करने लगती है। इसी प्रकार यद्यपि बालदेव द्वारा वांछित किए जाने पर वह यह कहती है ? –

"बोलिए । क्या समझते हैं रंडी समझ लिया है क्या। ठीक ही कहा हैं, जानवर की मूँडी को पोसने से गले की फाँसी छुड़ाता है, मगर आदमी की भी।"

किन्तु जब बालदेव यह कहते हैं –

हम तुम्हारे पालतू कुत्ता नहीं। हम अभी चन्ननपट्टी चले जाएँगे अभी।" तो उनको रोकते हुए लछमी सिसकते हुए कहती है –

"गोस्सा मत होइए गोसाईं साहेब ! करोध पाप को मूल। जाते–जाते देह में अकलंग (कलंक) लगाकर मत जाइए। मेरी तकदीर ही खराब है।" और जब बालदेव कह देते हैं कि तुम अब मठ की कोठारिन नहीं हो मेरी स्त्री हो, तुमको अब स्वयं समझना चाहिए कि लोग क्या कहेंगे तो वह उनके चरणों में गिरकर क्षमा–याचना

कर लेती है –

"लछमी बालदेव जी के पाँव पर गिर पड़ती है, छमा प्रभु ! दासी का अपराध। इसी प्रकार वह बावनदास की चिट्ठियों को लेकर हुई बालदेव के साथ छीना–झपटी में जल जाती है, किन्तु फिर भी प्रातःकाल उठकर उसी प्रकार बालदेव के चरणों से अपनी आँखें छुआती है, जैसे पहले छुआया करती थी।

**कुशल वक्ता :–**

लछमी चतुर भी है और अवसरानुकूल बातें करके विपक्षी को निरुत्तर कर देने का भी सामर्थ्य रखती है। वह उचित ही जानती है कि भंडारे का प्रबन्ध यदि बालदेव को छोड़कर किसी अन्य को सौंपा गया तो भंडारा चौपट हो जाएगा। अस्पताल के निर्माण और मठ के भंडारे को लेकर होने वाली सभा में लछमी अपने पक्ष को बड़ी चतुराई से प्रस्तुत करती है –

"ज्योतखी जी ठीक कहते हैं, गाँव के ग्रह अच्छे नहीं। जहाँ छोटी–छोटी बातों को लेकर इस तरह झगड़े होते हैं, जहाँ आपस में मेल–मिलाप नहीं वहाँ जो कुछ न हो वह थोड़ा है। गाँव के मुखिया लोग हैं इसके लिए सबसे बड़े दोखी है।

लछमी के इस कुशल भाषण का वांछित प्रभाव पड़ता है और राजपूत तथा कायस्थ जिनमें पुश्तैनी मनमुटाव चला आ रहा था, उनके प्रतिनिधि सिंघ साहब और तहसीलदार विश्वनाथ एक हो जाते हैं।

बालदेव को पंथ में दीक्षित होने के लिए कहने पर जब वे यह तर्क देते हैं कि कोठारिन जी, असल चीज है मन। कंठी तो बाहरी चीज है।"

तो लछमी उन्हें यह कहकर निरुत्तर कर देती है –

कंठी बाहरी चीज नहीं है बालदेव जी। भेख है यह। आप विचार कर देखिए। जैसे आपका यह खध्धड़ कपड़ा मलमल और मारकीन कपड़ा पहनने वाले मन से भले ही महातमाजी के पथ को माने लेकिन आप उन्हें सुराजी तो नहीं कहिएगा।"

एक ओर उसकी यह चतुरता है तो दूसरी ओर यह उसका घोर सीधापन भी है कि वह स्वयं को सेवादास के पतन का कारण समझती है –"यह तो महंत साहेब का दोष नहीं। उसका भाग ही खराब है। यदि वह नहीं होती तो महंत साहेब सतगुरु के रास्ते से नहीं डिगते। यह ध्रुव सत्त है। दोख तो लछमी का है। एक ब्रह्मचारी का धरम भ्रष्ट करने का पाप उसके माथे है।"

**बालदेव के प्रति आसक्ति :–**

लछमी का बालदेव के प्रति आकर्षण शनै–शनै आसक्ति में परिणत हो जाता है। बालदेव भी उसकी ओर आकृष्ट है और उन्हें उसमें भारत माता की झलक मिलती है। दूसरी ओर लछमी उनके सरल स्वभाव पर मुग्ध है। लछमी के बालदेव की ओर आकृष्ट हाने का एक कारण यह भी माना जा सकता है कि सेवादस की दृष्टि में बालदेव बड़े ही शुद्ध आचरण वाले पुरुष हैं।

"रुपैया को बजाकर देखा जाता है और आदमी को एक ही बोली से पहचाना जाता है। महंथ साहेब कहते थे–शुद्ध विचार का आदमी है। संस्कार बहुत अच्छा है।" वह बालदेव की इस सिधाई पर प्रमुदित हो उठती है कि वह उसको ही अपना गुरु बनाना चाहते है और उन्हें अपना बीजक सौंप देती है।

वासुदेव और कालीचरण द्वारा नागा बाबा को मार भगाने की घटना के पश्चात् बालदेव मठ पर आना बन्द कर देते हैं, क्योंकि यह हिंसाकांड उनकी दृष्टि में लछमी द्वारा करवाया गया था। किन्तु –

"लछमी बालदेव को भूली नहीं है। कहती है साधु स्वभाव के पुरुष हैं, किसी का चित्त नहीं दुखाना चाहते। बहुत सीधे हैं बालदेव जी। सच्चे साधू हैं। उनसे छिमा माँगना होगा।"

हाँ चरखा सेंटर खोलने में सहायता के लिए एक दिन बालदेव मठ पर आ पहुँचते हैं। रामदास चाहता है कि बालदेव को मठ से शीघ्र ही चलता किया जाए अतः वह उसके कहने पर बालदेव को दस रुपये का नोट देते हुए कहती है –

"आजकल तो हाथ एकदम खाली हैं आप तो आजकल इधर का रास्ता ही भूल गए हैं। हमसे जो अपराध हुआ है छिमा कीजिए।"

महंत रामदास द्वारा लछमी के साथ बलात्कार करने का अचानक प्रयास करने तथा बाद में रामपियरिया को दासी बनाने के प्रस्ताव से लछमी बालदेव की सहायता की अकांक्षी बन जाती है–

"हाँ ! मैं कहाँ जाऊँगी ? मेरा क्या होगा ? महंत की दासी बनकर ही मैं मठ पर रह सकती हूँ। लछमी की आँखें भर आती हैं।

बालदेव द्वारा यह आश्वासन देने पर कि नहीं लछमी तुम रामदास की दासी नहीं मैं .....।" वह भावावेश में बालदेव को आलिंगनबद्ध कर लेती है।

बालदेवजी ! लछमी पागल की तरह बालदेव जी से लिपट जाती है, रच्छा करो बालदेव ! तुम कह दो एक बार– तुम्हें रामदास की दासी नहीं बनने दूँगा। तुम बोलों चन्ननपट्टी नहीं जाऊँगा। मुझे छोड़कर मत जाओ बालदेव। दुहाई।"

रामपियरिया द्वारा अपमानित किए जाने पर लछमी बालदेव के साथ एक नये घास–फूस के बने बँगले में

रहने लगती है और अपनी सेवा द्वारा बालदेव की काया–पलट कर देती है – "बालदेव अब कितने साफ–सुथरे रहते हैं। बगुला के पंखों की तरह खादी की लुंगी और मिर्जई दम–दम करती है। देह भी थोड़ा साफ हो गया है। लछमी अपने हाथों से सेवा करती है।"

**सहृदय :–**

लछमी के चरित्र में सहृदयता का गुण भी अपेक्षित मात्रा में विद्यमान है। वह बावनदास को देखकर सोचती है– इस चिरकुट खद्दड़ की दोलाई से जाड़ा कैसे काटते हैं, बावनदस जी ?" अतः वह उनसे विनय के स्वर में कहती है –

दास जी ! इस चादर से जाड़ा कैसे काटते हैं ? ठहरिए एक पुराना कम्बल है। ले लीजिए । लछमी बिनती के सुर में कहती है।"

वह बालदेव की ओर भी इसी कारण अधिक आकृष्ट होती है कि लछमी उनको अधिकतर फटेहाल तथा दीन–दुनिया से बेखबर पाती है।

**साधु–स्वभाव से ओत–प्रोत :–**

लछमी के स्वभाव में साधुओं जैसे गुणों का विकास होता जाता है और वह शनैः–शनैः किसी सच्चे साधु जैसी धर्मनिष्ठ और दयामयी हो जाती है। उपन्यासकार के शब्दों में –

"लछमी उठी । उठकर महंत साहब के आसन के पास आई। हाथ जोड़कर साहेब बंदगी किया और आँखें मलते हुए कुएँ की ओर चली गई।

लछमी के रग–रग में अब साधु–स्वभाव, आचार–विचार और नियम–धरम रम गया है।"

लछमी में कुछ दुर्बलताएँ भी है। वह इस तथ्य को सहन नहीं कर पाती कि महंत रामदास रमपियरिया को अपनी दासी बनाए और इस बात पर उसकी रामदास और रमपियरिया दोनों से ही चख–चख होती है। इसी प्रकार वह बालदेव के प्रति अपनी आसक्ति को अधिक समय तक नहीं छिपा और रोक पाती, अपितु ऐसे पद गाती है जिनका अभिव्यंग्यार्थ यह है कि वह बालदेव के साथ निवास करते हुए भी विरहिणी जैसा जीवन व्यतीत कर रही है, जैसे –

"ज्वाला बिरह वियोग की रही कलेजे छाय

प्रेमी मन माने नहीं, दूरसन से अकुलाय।

एके ग्रह एक सँग में, हो विरहिण सँग कंत।

जब प्रीतम हँसि बोलि हैं जो रही मैं पंथ।"

संक्षेप में कहा जा सकता है कि लछमी रूपी कमल महंत सेवादास और रामदास–रूपी कीचड़ में फँस कर भी उसमें लीन होने के स्थान पर, उससे छुटकारा पाने के लिए प्रयत्नशील रहता है। स्वतंत्रता के जुनून में उसकी भारत–माता के रूप में सवारी निकालना उसके निर्मल चरित्र के अनुरूप ही है।

### 4.3.10 कमला

कमला 'मैला आँचल' के नारी पात्रों में उल्लेखनीय स्थान रखती है। उसका चारित्रिक विकास मात्र लछमी से ही कुछ कम हुआ है अन्यथा वह उपन्यास के नारी पात्रों में विशिष्ट स्थान रखती है। वह मेरीगंज के सबसे अधिक धनाढ्य व्यक्ति तहसीलदार विश्वनाथ प्रसाद की एक मात्र संतान और डाक्टर प्रशान्त की प्रेमिका है। उसका दुर्भाग्य यह है कि उसका जहाँ कहीं भी विवाह करने का प्रयत्न किया जाता है उसमें कुछ न कुछ ऐसा व्यवधान आ पड़ता है कि वह शादी टूट जाती है और प्रकारान्तर से कमला कुलक्षिणी कन्या के रूप में प्रसिद्ध हो जाती है। विवाह योग्य अवस्था होने पर भी विवाह न हो पाने के कारण उसे हिस्टीरिया के दौरे पड़ने लगते हैं, और इस बीमारी से उपचार के प्रसंग में ही वह डाक्टर प्रशान्त के सम्पर्क में आती है और अंततः उसकी प्रेमिका तथा बाद में उसकी पत्नी बन जाती है।

कमला का उपन्यास में पदार्पण इस प्रसंग से होता है कि डाक्टर के हाथ धोने के लिए साबुन की आवश्यकता पड़ती है तो लोग कहते हैं कि गमकौआ (सुगंधित) साबुन तो मात्र कमली से मिल सकता है, क्योंकि मेरीगंज में एक मात्र कमला ही गमकौआ साबुन प्रयोग करती है।

"तहसीलदार साहब की बेटी कमला जब गमकौआ साबुन से नहाने लगती है तो सारा गाँव गमगम करने लगता है।"

उसको डाक्टर प्रशान्त को बेहोशी की अवस्था में दिखाते हुए तहसीलदार साहब कहते हैं कि ''यह प्रायः एक घंटे तक बेहोश रहा करती है। ज्योतिषी जी से जन्तर बनवा कर दिया, झाड़ फूँक कराकर भी देखा किन्तु कोई लाभ नहीं हुआ है। डाक्टर साहब, वही मेरा बेटा, यही मेरी बेटी– सब कुछ यही है।"

डाक्टर प्रशान्त को उसके विवाह टूटने की बातों के साथ ही केस–हिस्ट्री ज्ञात हो जाती है –

"तीन जगह बात चली, मगर – पहली जगह से तो पान देने की बात भी पक्की हो गई थी। ठीक पान–तिलक के दिन लड़के की माँ मर गई। दूसरी जगह बातचीत ठीक हुई तो उनके घर आग लग गई। तीसरे लड़के को मैया हो गयी, इंतकाल हो गया। अब कोई लड़का वाला तैयार ही नहीं होता है। हजार, दो हजार, पाँच हजार, रुपया भी कबूलते हैं मगर ..... आखिर में एक पछबरिया कैथ को घरजमैया रखने के लिए लाये, बस उसी दिन से कमली को मिरगी आने लगी। लोग तो कहते हैं कि कमला मैया (नदी का नाम) है। कमला का नाम इसी से मनौती माँगने पर हुआ था। नहीं चाहती हैं कि कमला की सादी हो। कमला मैया भी कुमारी ही थी न।"

धीरे–धीरे डाक्टर और कमला एक दूसरे में अभिरूचि लेने लगते हैं। डाक्टर उसे सुई लगाने की बात कहता है तो वह दवा पीने को तैयार हो जाती है। इसी समय डाक्टर प्रशान्त के रेडियो पर प्रसारित होने वाले इस लोक गीत को सुनकर –

"माइगे, हम ना बियाहेब अपन गौरा के,

जौं बुढ़वा होइत जमामगे भाई।"

कमला खिलखिला कर हँस पड़ती है। डाक्टर प्रशान्त को उसके रोग का निदान मिल जाता है –

"केस अजीब है। केस–हिस्ट्री और भी दिलचस्प हिस्टीरिया, फोबिया, काम–विकृति और हठ–प्रवृत्ति ....। मैंने अपने पोर्टेबल रेडियो से उसके दिमाग को झकझोर कर दूसरी ओर करने की चेष्टा की है।"

डाक्टर प्रशान्त के दो एक बार आने पर ही कमला उसको अपना हृदय समर्पित कर बैठती है जैसा कि उसके निम्नांकित उद्‌गारों से स्पष्ट है –

"डाक्टर की मुस्कराहट बड़ी जानलेवा है, जब आवेगा तो मुस्कराते हुए आवेगा। डर लगता है ? हाँ हाँ डर लगता है तो तुमको क्या ? तुमको तो मजा मिलता है ना मुस्कराए जाइये ! गले में आला लटकाए फिरते हैं बाबू साहेब। छाती और पीठ के लगाकर लोगों के दिल की बीमारी का पता लगता है। झूठ। इतने दिन हो गये, मरे दिल की बात, मेरी बीमारी के कहाँ जान सके !"

कमला स्वयं तो प्रशान्त के प्रति आसक्त हो ही जाती है, उसे यह अनुभूति भी होने लगती है कि प्रशान्त मेरे अतिरिक्त अन्य किसी युवती से मीठी बातें नहीं कर सकता।

"सिपैहिया टोली की कुसुमी कहती थी, डाक्टर मुझसे भी पूछता था–मीठी दवा चाहिए क्या ? मैं नहीं विश्वास करती। डाक्टर ऐसा नहीं है। कुसुमी झूठ बोलती है। मीठी दवा और किसी को मिल ही नहीं सकती है। डाक्टर खबरदार ! कुसुमी बड़ी चालबाज लड़की है। बहुतों को बदनाम किया है उसने । हरगौरी उसका मौसेरा भाई है लेकिन–जाने दो क्या करोगे सुनकर ?"

कमला के आग्रह के कारण ही डाक्टर प्रशान्त तहसीलदार साहब के यहाँ रोज रात को चाय पीने आने लगता है और जब–तब भोजन भी करता है। कमला उसकी प्रयोगशाला को देखने के बहाने उससे खुले आम मिलने जाने लगती है और गाँव के नर–नारियों में चर्चा का विषय बन जाती है। पिता की अनुपस्थिति में वह मिरगी का दौड़ा पड़ने का स्वाँग रचती है और जब होश में आती है तो देखती है –

"कमला ने आँखें खोल दीं। उसका सिर डाक्टर की गोद में है, माँ हाथ में चम्मच लिए खड़ी है।"

डाक्टर प्रशान्त उसकी 'नल–दमयन्ती' शीर्षक पुस्तक को खोलने पर देखता है कि कमला ने अपने नाम के आगे से कुमारी शब्द काटकर उसके बाद बैनर्जी शब्द जोड़ दिया है। नल–दमयंती की तस्वीरों के नीचे प्रशान्त और कमला लिखा हुआ है।

होली के अवसर पर प्रशान्त कमली के हाथ पर गुलाल लगाने के लिए चुटकी में गुलाल लेता है तो कमला उसे टोकते हुए कहती है –

"आप होली खेल रहे हैं या इंजैक्शन दे रहे हैं। चुटकी में अबीर लेकर ऐसे खड़े हैं मानों किसी की मांग में सिंदूर देना है।" प्रोत्साहन पाकर प्रशान्त अबीर की पूरी झोली ही कमला के सिर पर उँडेल देता है। प्रशान्त और कमला एक दूसरे के अधिकाधिक निकट आते जाते हैं।

कमला की माँ को उसका प्रशान्त से इस सीमा तक हेल–मेल अच्छा नहीं लगता किन्तु वह अपनी पुत्री से कुछ कह नहीं पाती। कमला की आँखों में विचित्र प्रकार की झलक देखकर चिंता होती है किन्तु वह यह सोचकर अपने मन को समझा लेती है कि "मेरी बेटी तो माँ कमला है – वह जो चाहे करे।"

कमला को पारवती की माँ समझाती भी है कि वह डाक्टर के साथ इस प्रकार के सम्बन्ध नहीं रखे क्योंकि उसका भयंकर परिणाम निकलेगा, किन्तु कमला डाक्टर के इस आश्वासन को ही पर्याप्त समझती है कि "जो भी हो, बुरा नहीं होगा।" उसकी यह धारणा बन जाती है कि डाक्टर प्रशान्त जिन है जो मोहक रूप धारण करके उसे भरमाता रहता है।

डाक्टर प्रशान्त को सजा हो जाने पर जब कमला की माता को उसके गर्भवती होने का रहस्य ज्ञात होता है तो पति–पत्नी अजीब उलझन में फँस जाते हैं। कमला अपनी ओर से भी माँ के सामने यह प्रस्ताव रखती है कि मुझे गुदाम–घर में बन्द कर दीजिए। माँ अपराध करने के लिए आखिर कोई सजा तो मिलनी ही चाहिए। इसको घर में ही जेहल दे दो।" जब तहसीलदार साहब अपनी पत्नी पर बहुत बिगड़ते हैं तो वह पिता से अनुनय करती है कि मेरे अपराध की सजा माता को न देकर मुझको दीजिए। यह उसका सौभाग्य ही है कि जेल से छूटकर डाक्टर प्रशान्त उसको अपना लेता है। और उसका यह दृढ़ विश्वास प्रशान्त मेरे साथ विश्वासघात नहीं कर सकता, सच सिद्ध हो जाता है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि कमला एक धनाढ़य पिता की पुत्री होते हुए भी इस दृष्टि से अभागी है कि उसके लिए कोई उपयुक्त वर नहीं मिलता। वह डाक्टर प्रशान्त की भावकुता में फँस कर जो आत्म–समर्पण कर देती है वह उसकी दृढ़ आस्था के कारण अंततः सफल ही सिद्ध होता है।

## 4.4 कठिन शब्द

1. धनाढ़य
2. आत्म–सर्मपण

3. सौभाग्य
4. अनुनय
5. प्रस्ताव
6. भयंकर
7. हिस्टीरिया
8. प्रयोगशाला
9. क्षुद्र मनोवृति

## 4.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. बालदेव के चरित्र पर प्रकाश डालिए।

2. 'परित्यक्ता बंगालिन युवती द्वारा पारिपोषित' किस पात्र के लिए कहा गया है, चरित्र–चित्रण कीजिए।

3. 'लछमी का बचपन उसके दुर्भाग्य की करूण गाथा है' इस वक्तव्य के आधार पर लछमी का चरित्र–चित्रण कीजिए।

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

## 4.6 पठनीय पुस्तकें


1. मैला आँचल – फणीश्वर नाथ रेणु
2. हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी – आचार्य नंददुलारे वाजपेयी
3. हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन – डॉ० गणेशन
4. हिन्दी उपन्यास का उद्‌भव और विकास – उमेश शास्त्री
5. नया साहित्य नये प्रश्न – डॉ० नंददुलारे वाजपेयी
6. प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासों में सांस्कृतिक मूल्यों का विघटन – डॉ० रामस्वरूप अरोड़ा
7. समकालीन हिन्दी उपन्यास की भूमिका – डॉ० रणवीर रांग्रा
8. आंचलिकता से आधुनिकता बोध – भगवती प्रसाद शुक्ल
9. हिन्दी उपन्यास की उपलब्धियाँ – लक्ष्मी शंकर
10. आस्था और सौंदर्य – डॉ० रामविलास शर्मा
11. हिन्दी उपन्यास : पहचान और परख – डॉ० इन्द्रनाथ मदान
12. आँचलिक उपन्यास और उनकी शिल्प विधि – डॉ० आदर्श सक्सेना
13. लोकदृष्टि और हिन्दी साहित्य – डॉ० चन्द्रावली सिंह


******

# त्यागपत्र की समस्याएँ

5-0 रूपरेखा

5.1 उद्देश्य

5.2 प्रस्तावना

5.3 त्यागपत्र की समस्याएँ

5.3.1 प्रेम विवाह की समस्याएँ

5.3.2 अनमेल विवाह के दुष्परिणाम

5.3.3 नारी : आर्थिक स्वावलम्बन

5.3.4 भारतीय परिवारों में नारी की स्थिति

5.3.5 नारी के प्रति परम्परावादी दृष्टिकोण

5.3.6 नारी के प्रति अतृप्त भाव

5.3.7 आत्म पीड़ा से जूझती नारी

5.3.8 दाम्पत्य प्रेम का अभाव

5.3.9 जैविकीय तत्व का अभाव

5.4 सारांश

5.5 कठिन शब्द

5.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

5.7 पठनीय पुस्तकें

## 5.1 उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरान्त आप जानेंगे –

- कि उपन्यास आधुनिक युग की ऐसी विधा है जिसमें जीवन की नानाविध घटनाएँ अपनी सम्पूर्णता में अभिव्यक्त होती हैं।
- उपन्यास 'त्यागपत्र' के माध्यम से लेखक ने भारतीय समाज को खोखला करने वाले पारस्परिक मानदण्डों और मान्यताओं पर करारी चोट की है।
- इस उपन्यास में नारी सम्बन्धी सामाजिक समस्या पर परम्परागत मूल्यों से हट कर विचार किया गया है।

## 5.2 प्रस्तावना

उपन्यास आधुनिक युग की एक ऐसी विधा है जिसमें जीवन की नानाविध घटनाएँ अपनी सम्पूर्णता में अभिव्यक्त होती है। जैनेन्द्र का अत्यधिक प्रसिद्ध उपन्यास 'त्यागपत्र' (1937) कथा नायिका मृणाल के विवाहपूर्व, विवाह–पश्चात और विवाहेतर जीवन की धुरी पर घूमता है। उपन्यास में भारतीय नारी की विवशता एवं परवशता का सकरूण चित्र खींचा गया है। नारी सम्बन्धी सामाजिक समस्या पर परम्परागत मूल्यों से हटकर विचार किया गया है। जैनेन्द्र ने अपनी मौलिक चिन्तन धारा से हिन्दी उपन्यास के लिए नये क्षेत्रों का उद्‌घाटन किया। नलिन विलोचन शर्मा ने भी इसी तथ्य को प्रस्तुत करते हुए बताया है, "जैनेन्द्र ने गाँव, खेत खुली हवा और सामाजिक जीवन के विस्तारों को छोड़कर शहर की गली और कोठरी की सभ्यता को व्यक्ति के आभ्यंतरिक जीवन की गुत्थयों और गहराई को और भी पहले से अपने उपन्यासों का विषय बनाना शुरु कर दिया था।" 'त्यागपत्र' के माध्यम से भारतीय समाज को खोखला करने वाले पारस्परिक मानदण्डों और मान्यताओं पर करारी चोट की गयी है। उपन्यासकार ने व्यक्ति के माध्यम से जीवन और समाज तथा उसकी समस्याओं के अन्तर्मन में बैठने का प्रयत्न किया है।

## 5.3 'त्यागपत्र' की समस्याएँ

अतः उपन्यास के माध्यम से लेखक ने समाज के प्रचलित नियमों, परम्पराओं के सामने कुछ प्रश्न उपस्थित किए हैं और विभिन्न समस्याओं को उकेरा है। जिनका आकलन निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर किया जाएगा।

### 5.3.1 प्रेम विवाह की समस्या :–

त्यागपत्र' की मृणाल जन्मजात रूप से प्रेममयी है। इसी कारण वह बाद में व्यथा सिजने की करूण धारणा को ही अपनाकर उपन्यासकार के विचार में अपने–आपको उत्सर्ग कर देती है। प्रेममयी मृणाल को मातृ–पितृ स्नेह–संभार से वंचित रहना पड़ता है। तब स्त्रीत्व और शारीरिक–बोध के साथ उसके प्रेम का केन्द्र एक पुरुष–शीला का भाई बनता है, पर उसे प्राप्त कर पाने में सफल होने के स्थान पर वह पाती है पहले से ही उपेक्षित व्यवहार करने वाली भाभी से तीखे प्रहार और अनिच्छित–अपरिचित और परिस्थितियों के साथ विवाह–निर्वाह। वहाँ भी उसे प्रेम, विश्वास और

सम्मान नहीं मिल पाते मिलती है विवाहित जीवन के नाम पर असह्य अपमानपूर्ण मर्यादा और वैयक्तिक स्वतंत्रता के तनिक से प्रदर्शन पर भी अयाचित पति की प्रताड़ना, बेंतों की मार और अनवरत अपमान। वह वापस भाई–भाभी के घर न आकर वहीं रहना चाहती है, वापस नहीं जाना चाहती, पर 'विवाह' नामक संस्था के अग्नि कुण्ड में उसे दुबारा एक प्रकार से बलात् ठेल दिया जाता है। जहाँ पर चाह नहीं, वहाँ राह भी नहीं, अतः मृणाल को विवाह के नाम पर छली जाकर पतिगृह से भी परित्यक्त एवं निर्वासित होना पड़ता है। उसका यह निर्वासन आगे चलकर करूणा और रिक्तता की एक ऐसी कहानी बनता जाता है जो उसके जीवन के साथ ही समाप्त होती है।

अब प्रश्न उठता है कि बेचारी मृणाल का यह त्रासद, दुःखद एवं करूण अन्त क्यों हुआ ? निश्चय ही इसके लिए युगीन भद्र समाज, मध्यवर्गीय बुर्जुआ सामाजिक चेतना और पारिवारिक तथाकथित मर्यादा ही जिम्मेदार है। मृणाल का इच्छित प्रेम–विवाह हो नहीं पाता। वहाँ जाति और सामाजिक स्थितियों, तथाकथित मूल्यों का व्यवधान है। आज की परिस्थितियों में प्रेम–विवाह असम्भव या नई बात नहीं रह गया, जबकि सन् 1937 की परिस्थितियों में वह निश्चय ही था। प्रेमी–प्रेमिका के कोई दुस्साहस करने पर उन्हें निर्वासित– सा जीवन व्यतीत करना पड़ता। अतः चाहने पर भी मृणाल शीला के भाई को, प्राप्त नहीं कर सकती। वह भी कोई विशेष साहसिकता नहीं दिखाता। परिणामस्वरूप स्थूल और सूक्ष्म दोनों स्तरों पर यह सारा उपन्यास घटित होता है। यदि प्रेम–विवाह हो जाता, तो परिस्थितियाँ भिन्न हो सकती थीं तब प्रेम और भावनामयी मृणाल का हठ जीवन और समाज के लिए किसी और भव्य रूप में परिणत होकर व्यंजित होता, जबकि यहाँ समाज की तथाकथित भद्रता के प्रति हठीला प्रतिशोध, आत्मदहन बनकर व्यक्त होता है। साथ ही वह वेश्या–समस्या के रूप में भी सामने आता है, जिनके उद्धार की बात उपन्यास के अन्तिम पृष्ठों में मृणाल प्रमोद से कहती है। सामान्य सम्बल के रूप में उससे ढेर सारे रुपये की कामना भी करती है, ताकि वह अपने समान निरीह जीवन बिता रही समस्त नारियों को सम्बल प्रदान कर सके। इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्रेम–विवाह की समस्या ही इस समूचे उपन्यास के घटित होने की मुख्य समस्या है।

### 5.3.2 अनमेल–विवाह के दुष्परिणाम :–

जब यह उपन्यास रचा गया था, तब देश में व्यापक स्तर पर 'अनमेल विवाह' भी प्रचलित थे। प्रेमचन्द की 'निर्मला' और प्रसाद के नाटक 'ध्रुवस्वामिनी' में भी अनमेल–विवाह की विस्तार से चर्चा हुई है। उसके दुष्परिणाम भी दिखाये गये हैं। इन तथ्यों के आलोक में ही यहाँ 'त्यागपत्र' में अनमेल विवाह की समस्या और उसके दुष्परिणामों का सही मूल्यांकन सम्भव हो सकता है। मृणाल को अनमेल विवाह की शिकार क्यों होना पड़ा, उपरोक्त कारणों में से सहज ही विशिष्ट कारण खोजा जा सकता है। पहली बात तो यह है कि मृणाल मातृ–पितृ–हीन अनाथ बालिका है और अवाछिंत रूप से अपने भाई–भाभी के आश्रय में रह रही है। भाई की उपेक्षा तो उपन्यास में कहीं प्रकट नहीं हो पाती, पर भाभी का व्यवहार पग–पग पर मृणाल के साथ उपेक्षा–अवमानना पूर्ण ही रहता है। यों कहिए कि वह मृणाल को एक अनचाहा बोझ ही अधिक मानती है। उस पर वह संस्कारगत रूप में तथा कथित मर्यादाओं का भी हद से ज्यादा ध्यान रखने वाली है, उसी कारण मृणाल की तनिक–सी स्वच्छंदता या स्वतन्त्रता वह सहन नहीं कर पाती। मृणाल का भाई,

मध्यवर्गीय स्वभाव का दब्बू और अनावश्यक रूप से पत्नी–समर्पित है, अतः वह चाह कर भी मृणाल की इच्छा व आकांक्षाओं का सम्मान नहीं कर पाता। ऐसी परिस्थितियों में जब मृणाल के रोज–रोज स्कूल से लेट आने, शीला के घर रह जाने और इस सबके मूल कारण शीला के भाई के साथ मृणाल के प्रेम का आभास मृणाल की भाभी को मिलता है, तो अपनी तथाकथित मानसिकता में उसका बौखला जाना स्वाभाविक ही है। मृणाल के प्रति उसकी वत्सलहीनता मनोविज्ञान के स्तर पर ईर्ष्या–भाव को भी जगा देती है। उसके सामने पारिवारिक और सामाजिकता का थोथा सम्मान–भाव अँगड़ाई लेकर खड़ा हो जाता है। जिस सबका परिणाम होता है–मृणाल का अनमेल विवाह।

वत्सलता और प्रेम की भूखी नारी–मृणाल उस स्थिति में भी बच्चे की तरह सच्ची बन कर जीवन निर्वाह करने का प्रयत्न करती है, पर यहाँ भी उसे अनवरत प्रताड़ना, अवमानना और वही भाभी वाले बेंत ही सहने को मिलते हैं। परिणामस्वरूप वह उस पति नायक पशु–पुरुष के प्रति घृणा भाव से भर उठती है। उसके दिए गर्भ तक को वह जमालगोटे के प्रयोग से गिराने, उसके यहाँ कभी न जाने का प्रयत्न करती है। पर थोथी मर्यादाओं और परम्पराओं से घिरी भाभी को कुछ भी स्वीकार नहीं होता। अतः उसे वापस उसी पति–पशु के शिकंजे में जाना पड़ता है। इस प्रकार असफल प्रेम का और उसके बाद अनमेल विवाह की शिकार होकर बेचारी, मृणाल को किसी तरह जीवन जीना पड़ता है। कहा जा सकता है कि असफल प्रेम और अनमेल विवाह का ही वह सब परिणाम है कि जो 'त्यागपत्र' उपन्यास में आगे सब घटित होता है। कोयले वाले का आश्रय और वहाँ से भी तिरस्कृत होकर जीवन से लड़ते–झगड़ते वेश्यालय तक पहुँच जाना एक प्रकार से अनमेल विवाह की चरम परिणति भी स्वीकारी जा सकती है। इस प्रकार नारी के जीवन में समस्या–से–समस्या जन्म लेती जाती है। अतः उसका अन्तराल व्यथा–पीड़ा का जमघट बनता जाता है। मृणाल की वैयक्तिक समस्या समाज में घटित हो रही सामूहिकता की ओर भी निश्चय ही स्पष्ट इंगित करती है। इस समस्या का भी उपन्यासकार ने कोई स्पष्ट समाधान न दिया। वह युग–परिवेश में कोई समाधान दे पाने की मनःस्थिति में है भी नहीं पर संकेत यही मिलता है कि अनमेल विवाह से बचना सामाजिकता के स्वास्थ्य की रक्षा के लिए अनिवार्य है। इसका एक समाधान प्रेम–विवाह भी है। दूसरे शब्दों में युवक–युवतियों को स्वेच्छा से जीवन–साथी चुनने की छूट देना भी है।

इस प्रकार जैनेंद्र ने प्रत्यक्ष समाधान तो प्रस्तुत नहीं किया, पर बड़ी तीव्रता और कलात्मकता से जीवन और समाज में आ गये वैषम्यों, विसंगतियों की ओर युग के व्यक्तियों, सामाजिकों का ध्यान अवश्य आकृष्ट किया है। इस सन्दर्भ में डॉ॰ लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय के शब्द विशेष रूप में द्रष्टव्य हैं– "यह उपन्यास घनीभूत वेदना का ऐसा मर्मस्पर्शी विजन (अरक्षण्य) है, जो मन को पूर्णतया उद्वेलित कर देता है और व्यक्ति यह सोचने पर विवश हो जाता है कि नारी की इस भयानक दुर्गति का कारण व उत्तरदायित्व किस पर है। सड़ी–गली परम्पराओं पर जहाँ नारी की स्वतन्त्रता अभिशाप है और उसे शोषण के लिए निर्जीव गठरी–मात्र समझ लिया जाता है या उस सामाजिक व्यवस्था पर, जहाँ वह पुरूष की दासी बनने पर विवश है, क्योंकि उसके जीने का कोई आर्थिक आधार नहीं।" इस प्रकार अनमेल–विवाह के माध्यम से उत्पन्न हो जाने वाली अन्य अनेक समस्याओं की ओर भी लेखक इंगित करता जाता है, जो आरम्भ से ही नारी की विवशता, शोषण और ह्रास के परम्परागत कारण रहे हैं और आज भी एक सीमा तक विद्यमान है।

### 5.3.3 नारी : आर्थिक स्वावलम्बन :–

मृणाल माता–पिता की मृत्यु के बाद सभी दृष्टियों से भाभी– भाई की आश्रित हो जाती है आर्थिक दृष्टियों से पढ़ी–लिखी होने पर भी पहली अवस्थाओं में स्वावलम्बी बनने का वह प्रयत्न नहीं करती–इसे युगीन विवशता एवं अबूझता, इस प्रकार की चेतना का अभाव ही कहा जायेगा। पर कोयले वाले का आश्रय भी छिन जाने के बाद, उससे मिले बच्चे को अस्पताल में सौंप कर मृणाल आर्थिक दृष्टियों से अपने पाँव पर खड़ी हाने का एक प्रयास अवश्य करती है। वह शिक्षिका बन जाती है। वह डॉक्टर के बच्चों को पढ़ाना और उनके गृह–कार्यों में सहायता पहुँचाना आरम्भ कर देती है कि जहाँ उसके भतीजे प्रमोद के रिश्ते की बात चल रही होती है। लगता है– जैसे अब उसके जीवन में स्थिरता और पथ में निर्बाधता आ गई है। पर जैसे ही सारा भेद खुलता है, उसके अन्तर्मन में बसे भद्र समाज के भय से भयभीत होकर मृणाल को एक बार फिर अनजाने पथ पर भटकने के लिए विलुप्त हो जाना पड़ता हैं वहाँ से जाकर उसने और कहीं भी टिकने का प्रयास किया होगा, पर तत्कालीन सामाजिक मूल्यों ने उसे कही भी टिकने नहीं दिया होगा। तभी तो अन्त में वह तन देकर जीवन जीने के धन्धें में ही आकण्ठ निमग्न होकर, विगलित एवं घुल–मिल कर रह जाती है अपनी और अपनी जैसी नारियों की आर्थिक विवशता का अहसास बुरी तरह उसे कोंचता रहता है। तभी तो मृत्यु–शय्या पर पड़ी मृणाल सहायता और मुक्ति दिलाने के लिए आए प्रमोद से आर्थिक सहायता की याचना करती है कि जिससे उस समेत उन सभी नारियों का उद्धार संभव हो सके जो समाज के दलित कोढ़ और वासना के वीभत्स को कुछ पैसे लेकर, ओढ़कर जीने के लिए विवश कर दी गई हैं। इस प्रकार उपन्यासकार ने वेश्या–समस्या का प्रत्यक्ष उल्लेख न करते हुए भी उपरोक्त अन्योन्य समस्याओं को उसके कारण रूप में मानते हुए नारी की आर्थिक विहीनता को भी इसका एक प्रमुख कारण माना है पर यह कारण और समस्या अन्त में जाकर ही प्रत्यक्ष हो पाती है। प्रत्यक्ष रुप से कहीं भी नहीं है। यह एक विषम समस्या है जो नारी के अनवरत शोषण और ह्रास के लिए बहुत सीमा तक उत्तरदायी है।

### 5.3.4 भारतीय परिवारों मे नारी की स्थिति :–

कुल मिलाकर 'त्यागपत्र' उपन्यास में लेखक समाज और परिवार में नारी की स्थिति या स्थान क्या है चित्रित करता है। नारी को घर–परिवार और समाज में सभी प्रकार के अधिकार कानूनी स्तर पर भी प्राप्त हो चुके हैं। जिस युग (सन् 1937) में यह उपन्यास रचा गया था, उस युग में भारतीय नारी को समाज और परिवार की ओर से किसी भी प्रकार की सुरक्षा प्राप्त नहीं थी। यद्यपि परिवार और समाज पर उसकी सुरक्षा का नैतिक दायित्व तो जाता था, पर कोई इस नैतिकता की परवाह नहीं करता था। कानून इस बारे में सर्वथा मौन था और यदि बोलता भी तो विपरीत, नारी को पंगु–मूक आदि बनाकर रख देने के अर्थ में ही। परम्पराएँ और मर्यादायें भी उसका शोषण ही करने में सहायक सिद्ध होती थीं।

मृणाल को लीजिए वह जिस माँ–बाप की बेटी है, उसके घर–सम्पत्ति आदि पर उसका कोई स्वत्व नहीं, अतः उसे बाहर से आई भाभी की दया पर ही जीना पड़ता है। फिर जब वह अपरिचित–अनिश्चित ही सही, पति–गृह में

जाती है, तो भरसक चेष्टा और समझौतावादी दृष्टिकोण अपनाने पर भी उसे भर्त्सना, प्रताड़ना और अवमानना ही सहनी पड़ती है वह पति द्वारा दूध की मक्खी के समान घर से निकाल कर फेंक दी जाती है। मायके और ससुराल कोई भी उसके निर्वाह का दायित्व नहीं लेता। इस बारे में शायद तत्कालीन कानून भी उसकी कोई सहायता नहीं कर सकता था। नारी का तनिक–सा भटकाव उसे मायके और ससुराल दोनों के संरक्षण से वंचित कर देता है। ऐसी स्थिति में प्रश्न उठता है कि वह (नारी) क्या करे ? आत्म–हत्या कर ले ? अधिकार पाने के लिए विद्रोह और संघर्ष करे ? या तन बेच दे। निश्चय ही विद्रोह का मार्ग उचित कहा जा सकता है। उसमें आर्थिक स्वावलम्बन भी आता है; मायके और पति की सम्पत्ति के बँटवारे का अधिकार भी आता है। पर तब तक न तो मृणाल (नारी) इस प्रकार की मानसिकता तक पहुँच सकी थी, न समाज और न उपन्यासकार ही। अतः भारतीय घर–परिवार और समाज में नारी की अनिश्चित–अनिर्धारित स्थिति भी उसके वेश्या बनकर रह जाने का एक प्रमुख कारण है, इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता।

### 5.3.5 नारी के प्रति परम्परावादी दृष्टिकोण :–

उपन्यास में लेखक ने ऐसे भाई–भावज का चित्रण किया है जो नारी के प्रति परम्परावादी दृष्टिकोण अपनाए हुए हैं अपितु सामाजिक मर्यादा के नाम पर मृणाल के प्रेम का विरोध कर उसका विवाह दीर्घायु व्यक्ति के साथ कर देते हैं और बहन के प्रति अपना कर्तव्य समाप्त हो गया समझते हैं। इतना ही नहीं जब विवाह के बाद मृणाल पति के साथ अनबन होने से वापस आती है और दुबारा पतिगृह जाना नहीं चाहती तब परिवार की बदनामी की चिंता करते हुए उनके भाई–"पति के घर के अलावा स्त्री का और क्या आसरा है। यह झूठ नहीं है मृणाल रूपी पत्नी का धर्म पति है। घर पति गृह है। उसका धर्म, कर्म और मोक्ष भी वही है।" कहकर मृणाल को वापस पतिगृह भेज देते हैं।

पति के घर से भी ठुकरा दी गई स्त्री को अपने मायके में भी जगह नहीं मिलती मृणाल भी इस बात को व्यक्त करते हुए बताती है "स्त्री जब तक ससुराल की है तभी तक मायके की है। ससुराल से टूटी तब मायके से तो अपने आप ही में टूट गयी थी।" परिणामस्वरूप मृणाल को कोयले वाले के साथ सम्बन्ध स्थापित करना पड़ा और सामाजिक एवं पारिवारिक दृष्टि से बहिष्कृत होकर एक पतित समाज की सदस्य बनना पड़ा।

### 5.3.6 नारी के प्रति अतृप्त भाव :–

त्यागपत्र के माध्यम से उपन्यासकार ने नारी में ही जीवन को बनाने या बिगाड़ने की क्षमता है यह मृणाल के अन्तः चेतना के धरातल पर उद्घाटित चरित्र के द्वारा सिद्ध किया है। सभ्रांत परिवार की होने के बावजूद भी मातृ–पितृ विहीन होने के कारण मृणाल की कोई इच्छा पूर्ण नहीं होती । न पढ़ने की, न प्रेम की, न मनपसंद विवाह की। परिणामतः उसकी अन्तः चेतना अतृप्ति के भाव से भर जाती है जो मृणाल को विशिष्ट चरित्र बना देता है डॉ॰ विजय कुलश्रेष्ठ ने भी लिखा है "मृणाल का चरित्र सामाजिक द्रोह के समानांतर अतृप्ति और आत्मपीड़न से अभिशप्त है। वह व्यक्तिवादी चेतना से युक्त मानसिक अधोगति के स्तर पर आत्मपीड़ा भोग की यथार्थता का प्रतीक है।" इसी अतः चेतना के फलस्वरूप आत्मपीड़ा और भोग की कामना के कारण मृणाल पति के द्वारा ठुकराये जाने पर कोयले वाले के साथ

सम्बन्ध बनाती है और अंत में वेश्याओं की बस्ती में अपना शेष जीवन बिताती है। क्योंकि जैनेन्द्र मानते थे, "चेतना की सड़क मीलो में नहीं नपती। एक आदमी उस चेतना में ऐसा अवगाहन करता है कि युगों को पार कर जाता है, वर्षों को लाँघ जाता है। वह बँधता नहीं।"

### 5.3.7 आत्मपीड़ा से जूझती नारी :–

उपन्यास नायिका मृणाल के विवाह– पूर्व, विवाह पश्चात् और विवाहेतर जीवन की धूरी पर घूमता है। मृणाल आत्मपीड़ा को झेलती रहने वाली नारी है जो बचपन में अपनी सहेली की शरारत का दायित्व अपने ऊपर लेकर अध्यापक से मार खाती है। उसका आत्मपीड़न पूरे जीवन भर चलता है। मृणाल वस्तुतः एक प्रतीक है नारी के सामाजिक उत्पीड़न और उसकी आंतरिक सहन शक्ति का। बचपन में माता पिता का प्रेम नहीं मिलता, शीला के भाई का प्रेम भी सामाजिकता के कारण प्राप्त नहीं कर पायी और शादी के बाद पति की शंका पति का प्रेम प्राप्त करने में बाधक बनी, परिणामतः जीवन में प्रेम का अभाव मृणाल के मन में एक ऐसी मनोग्रंथि का निर्माण करता है, जिसके अन्तर्गत आत्मपीड़न के द्वारा ही मानो वह अन्य को सुखी करने की कामना करती है। मृणाल का अहम् समाज की परिपाटियों को अस्वीकार कर उन्हे नयी परिभाषा देता है और इस क्रान्ति का मूल्य निज के बलिदान से चुकाता है। पूरे उपन्यास में मृणाल टूटी हुई है, उसका घर–संसार टूटा है, और अन्ततः आत्मपीड़ा से जूझती हुई मृत्यु को प्राप्त होती है।

### 5.3.8 दाम्पत्य प्रेम का अभाव :–

स्त्री–पुरुष के बीच विवाहोपरान्त जो प्रेम सम्बन्ध स्थापित होता है उसे दाम्पत्य प्रेम कहते हैं इस प्रेम का आरम्भ भी रोमांटिक अनुभूति के अन्तर्गत होता है, परन्तु इसमें मात्र दैहिक तृप्ति का भाव नहीं होता, बल्कि पति–पत्नी एक दूसरे पर समर्पित होकर उच्च आदर्श जीवन की स्थापना करते हैं। जैनेन्द्र पति–पत्नी के सम्बन्ध को एक विशिष्ट धरातल पर रखकर देखना चाहते हैं। उनके विचार में पति–पत्नी सम्बन्ध वह है जिसमें एक दूसरे की उत्कृष्टता ही परस्पर प्राप्ति नहीं होती बल्कि निकृष्टता भी निवेदित होती है। उस सम्बन्ध का महत्व ही इसी में है। औपचारिक सम्बन्धों में हम निकृष्ट को अपने पास रोक लेते हैं और उत्कृष्ट को ही समक्ष करते हैं। यानी वह समग्र और निर्बन्ध नहीं होता।" अतः स्पष्ट है कि दाम्पत्य प्रेम तभी बन सकता है जब पति–पत्नी परस्पर एक दूसरे की निजी विशेषताओं और मर्यादाओं को स्वीकार कर लें अन्यथा उनका दाम्पत्य जीवन दुःखद बन सकता है। त्यागपत्र की मृणाल दाम्पत्य जीवन मे सच्चाई की भावना को महत्व देकर पति के सामने अपने पूर्व प्रेम की बात व्यक्त कर देती है, परन्तु उसका पति इसे स्वीकार नहीं कर सकता और घृणा एवं नफरत के कारण मृणाल को घर से निकालकर एक कोठरी में ले जाकर छोड़ देता है। परिणामतः उनका दाम्पत्य प्रेम और सम्बन्ध टूट जाता है।

### 5.3.9 जैविकीय तत्व का अभाव :–

उपन्यास में स्त्री–पुरुष के सम्बन्धों के बीच जैविकीय तत्व का अभाव होने के कारण स्त्री–पुरुष के सम्बन्धों में पीड़ा और निराशा उत्पन्न होती दिखाई गई हैं। मृणाल शीला के भाई के प्रति आकर्षित थी परन्तु जब उसका

विवाह अन्य पुरुष के साथ हो जाता है तब पति–पत्नी सम्बन्ध में जैविकीय आकर्षण के अभाव में मृणाल को पति के प्यार के बदले पीड़ा ही प्राप्त होती है।

## 5.4 सारांश

इस प्रकार उपन्यास में जिन समस्याओं का अंकन किया गया है, वे नारी को वेश्या बनाकर रख देने वाले कारण हैं। मुख्य समस्या सीधी, सरल और सुशिक्षित नारी के वेश्या की सीमा–रेखा तक पहुँच जाने की है। शेष सभी उसके मूलभूत कारण हैं। कुल मिलाकर युगीन सन्दर्भों में नारी की मनोव्यथा, पीड़ा, प्रताड़ना, उपेक्षा, अवमानना को नये सन्दर्भ और परिपार्श्व देने का प्रयास ही त्यागपत्र उपन्यास में अभिन्न रुप से किया गया है। इन बातों के अतिरिक्त उपन्यासकार ने नैतिकता और उसके मूल्यों का प्रश्न भी उठाया है।

## 5.5 कठिन शब्द

1. जैविकीय
2. अतृप्त भाव
3. आत्म पीड़ा
4. आत्मपीड़न
5. मनोग्रंथि
6. निर्बन्ध
7. अतृप्ति
8. बहिष्कृत
9. धरातल
10. सभ्रांत

## 5.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. 'त्यागपत्र' में व्यक्त समस्याओं को विवेचत कीजिए।

_____

_____

_____

2. अनमेल विवाह के कारण मृणाल को किन परिस्थितियों से गुजरना पड़ा, स्पष्ट कीजिए।

3. 'नारी के आर्थिक स्वावलम्बन' के परिप्रेक्ष्य में उपन्यासकार की दृष्टि का विवेचन कीजिए।

4. 'त्यागपत्र' में जिन सामाजिक समस्याओं एवं परिस्थितियों का चरित्रांकन हुआ है ? प्रकाश डालिए।

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

## 5.7 पठनीय पुस्तकें


1. त्यागपत्र – जैनेन्द्र
2. हिन्दी उपन्यास का उद्‌भव और विकास – उमेश शास्त्री
3. नया साहित्य नये प्रश्न – डॉ० नंददुलारे वाजपेयी
4. जैनेन्द्र के उपन्यासों के नारी चरित्रों का मनोवैज्ञानिक धरातल – डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव
5. जैनेन्द्र और उनके उपन्यास – डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव
6. जैनेन्द्र : साहित्य और समीक्षा – डॉ० रामरन्न भटनागर
8. जैनेन्द्र : व्यक्तित्व और कृतित्व – सं० सत्यप्रकाश मिलिन्द
9. जैनेन्द्र के उपन्यास : मर्म की तलाश – डॉ० चन्द्रकान्त बांदिवडेकर
10. जैनेन्द्र और नैतिकता – ज्योतिष जोशी
11. जैनेन्द्र के उपन्यासों की विवेचना – डॉ० विजय कुलश्रेष्ठ
12. जैनेन्द्र के उपन्यासों में नारी की कल्पना – डॉ० अन्नपूर्ण सिंह
13. समकालीन हिन्दी उपन्यास की भूमिका – डॉ० रणवीर रांग्रा


******

# त्यागपत्र में नारी मनोविज्ञान

**6.0 रूपरेखा**

**6.1 उद्देश्य**

**6.2 प्रस्तावना**

**6.3 त्यागपत्र में नारी मनोविज्ञान**

**6.4 सारांश**

**6.5 कठिन शब्द**

**6.6 अभ्यासार्थ प्रश्न**

**6.7 पठनीय पुस्तकें**

## 6.1 उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरान्त आप जानेंगे –

- जैनेन्द्र कुमार हिन्दी के प्रथम उपन्यासकार हैं जिन्होंने व्यक्ति मन के द्वन्द्व को परिवार के सीमित मंच पर प्रस्तुत किया है।
- हिन्दी उपन्यास साहित्य में जैनेन्द्र ही ऐसे प्रथम उपन्यासकार रहे जिन्होंने अपने उपन्यासों में नारी मनोविज्ञान पर तीव्रता से बात की।

## 6.2 प्रस्तावना

जैनेन्द्र कुमार हिन्दी उपन्यास के नये पथ के प्रथम उपन्यासकार हैं उन्होंने व्यक्ति–मन के द्वन्द्व को परिवार के सीमित मंच पर प्रस्तुत किया है। जैनेन्द्र ने घर और बाहर की समस्या को नारी पात्रों के माध्यम से उठाया है।

नारी–पात्र ही उपन्यास के केन्द्र में हैं। वे सतीत्व के परम्परागत स्वरूप को अस्वीकार करके नारीत्व की नयी व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। जैनेंद्र की विवाह और परिवार सम्बन्धी दृष्टि का केन्द्र–बिन्दु है नारी के प्रति उनकी आदर्शवादी मान्यता। वे समाज और परिवार पर पुरूष के प्रभुत्व के अंकुश में गढ़ी गयी उन सामाजिक मान्यताओं को सर्वथा अस्वीकार करते हैं, जिनमें नारी को पुरूष से हीन और हेय प्राणी मानकर मात्र प्रताड़ना का अधिकारी कहा गया है। फ्रायड एडलर, युंग जैसे मनोवैज्ञानिक के द्वारा प्रस्तुत नये वैचारिक सिद्धान्तों के कारण भारत में सामाजिक रूढ़ियों की थोपी गई स्थगित–विकासवादी परम्परा में विकास की नई दिशा और नये चरण स्थापित होते गये जिसमें प्रतिक्षण नये प्राण और नई शक्ति स्पन्दित होने लगी। नारी अभी तक पत्नी, माँ, बहन, विधवा, वेश्या आदि विविध रूपों में मर्यादित लीक पर चलती रही।

## 6.3 'त्यागपत्र में नारी मनोविज्ञान

जैनेन्द्र नारी को समाज का निष्क्रिय और उपेक्षणीय अंग नहीं मानते वे उसे जीवन, परिवार समाज यहां तक कि संसार के निर्माण या विनाश में सक्रिय शक्ति मानते हैं। जैनेन्द्र के शब्दों में ''पुरूष कुछ नहीं बनाता, बिगाड़ता, जो कुछ बनाती बिगाड़ती है स्त्री। स्त्री ही व्यक्ति को बनाती है, घर को, कुटुंब को बनाती है, जाति और देश को भी। फिर इन्हें बिगाड़ती भी वही है।..... धर्म स्त्री पर टिका है, सभ्यता स्त्री पर निर्भर है और फैशन की जड़ भी वही हैं बात क्यों बढ़ाओं, एक शब्द में कहो–दुनिया स्त्री पर टिकी है।" उपन्यासकार परम्परागत भारतीय नारी चरित्रों के स्थान पर अपने विशिष्ट विचार और व्यक्तित्व का परिचय कराने वाले नारी चरित्रों को ग्रहण किये हैं। क्योंकि वे मानते हैं, व्यक्ति चेतना का पूर्ण योग हो, तो व्यक्तित्व उसकी सीमा नहीं, उल्टे उसका प्रकाश बनता है।" जैनेन्द्र के उपन्यासों में नारी के स्वरूप में उसके अस्तित्व, व्यक्तित्व शिक्षा, संस्कार आचरण, आर्थिक स्थिति आदि पर उसकी वैचारिक स्वतन्त्रता अत्यन्त सबल एवं सशक्त दिखाई देती है।

जैनेन्द्र की नारी पुरानी परम्परा की लीक से हटकर यथार्थ की पगडण्डी की ओर मुड़ने का प्रयत्न करती देखी जाने लगी। त्यागपत्र की मृणाल का आन्तरिक विद्रोह इतना तीव्रतम होता है कि पति का घर छोड़कर किसी निम्नव्यक्ति के साथ रहकर भी वह अपने को पापिनी नहीं समझती। जैनेन्द्र के उपन्यासों की नारी बाह्य जगत की सामाजिक समस्याओं में ध्यान न देकर अपनी आन्तरिक वैयक्तिक व्यथा एवं समस्याओं पर ध्यान देने लगी मृणाल पति का विश्वास न पाने के कारण कोयलेवाले के साथ रहती है। उसके प्रेम के संबन्ध में अलग विचार हैं, सतीत्व के सम्बन्ध ा में नयी व्याख्यायें हैं। स्वतन्त्र विचारों को लेकर यह नयी नारी पति से विद्रोह होते ही परपुरुष के साथ रहकर भी वेश्या रूप धारण नहीं करती।

एक निम्न स्तर के व्यक्ति के साथ रहकर प्रेम–धर्म की नई व्याख्या बताती है जिसे सुनकर पाठक हतप्रभ हो जाता है। नारी के यह विचार कुछ सोचने और चिन्तन करने को विवश करते हैं। मृणाल कहती है, "वेश्यावृत्ति नहीं करने लगूँगी .....जिसको तन दिया, उससे पैसा कैसे लिया जा सकता है यह मेरी समझ में नहीं आता। तन

देने की ज़रूरत मैं समझ सकती हूँ, तन दे सकूँगी, शायद वह अनिवार्य हो। पर लेना कैसे ? दान स्त्री का धर्म है। नहीं तो उसका और क्या धर्म है।"

त्यागपत्र में त्रिकोण स्थिति को बिलकुल एक नये प्रसंग और नई स्थितियों में दिखाया गया है। एक ओर मृणाल है दूसरी ओर उसकी सहेली शीला का भाई जो डॉक्टर है तथा तीसरी ओर कोयले वाला है। यह तीसरा कोण वस्तुतः प्रेम का कोण नहीं है बल्कि विषम् परिस्थिति का कोण है। प्रस्तुत उपन्यास में मृणाल को आदि से अन्त तक लेकर उपन्यासकार ने एक मुक्त चेतनामयी स्त्री के रूप में चित्रित किया है लेकिन आदि से अन्त तक उपन्यासकार ने यह भी दिखाया है कि अपनी मुक्ति और स्वतन्त्रता के लिए यह जितने तरह के कदम उठाती है उतनी तरह उसकी व्यक्तिगत परिस्थितियाँ विषम् होती मिलती हैं।

उन्मुक्त प्रिया के रूप में मृणाल का पहला प्यार उपन्यासकार ने बड़े ही सांकेतिक रूप में व्यक्त किया है। लेकिन इसके पहले मौन प्यार का फल बड़े ही कटु ढंग से उन्होंने चित्रित किया है, जहाँ घर के लोग मृणाल को अकारण ही बहुत शारीरिक दण्ड देते हैं और इस दण्ड की चरम सीमा यह होती है कि उसे आजीवन दण्ड देने के लिए मृणाल का ब्याह एक ऐसे व्यक्ति से कर दिया जाता है जो आयु में उससे बहुत बड़ा है। मृणाल इस स्थिति को एक यथार्थ स्थिति मानकर स्वीकार कर लेती है।

इस मुक्ति चरण के बाद ही दण्ड स्वरूप में मृणाल को अमुक्त स्वरूप में पति प्राप्त होता है किन्तु अपनी मुक्ति की आकांक्षा से वह दूर नहीं हटती। घर में उसकी यही आकांक्षा ऐसा वातावरण निर्मित करती है जहाँ पति विवश होकर उसे निकाल देता है। घर से निकल जाना उसकी मुक्ति का दूसरा चरण है क्योंकि उसके लिए न मायका है न पति का घर। दरअसल ये दोनों घर उसके लिये बन्दी जीवन के उदाहरण हैं जहाँ से टूट कर वह बाहर निकल आई है। मृणाल  का पति जब उसे अपने घर से निकालता है और वह कहता है कि तुम यहाँ से अपने मायके चली जाओ तब मृणाल उत्तर देती है, 'वहाँ से तो मैं कटकर आ गई हूँ। आपकी खुशी से तो मैं वहाँ जा सकती हूँ, आपकी नाराज़गी में वहां जाना मेरा धर्म नहीं है। उन्होंने कहा कि फिर जो चाहे कर, जहाँ चाहे जा। मैंने पूछा कहाँ जाऊं, क्या करूं? उन्होंने कहा कि जान न खा, चल दूर हो। उसके बाद फिर कुछ दिन बीत गए मैं उनकी राह की  बाधा थी। एक दिन उन्होंने एकदम आकर कहा–चल निकल यहाँ से। मैंने आज्ञा न मानने की जिद नहीं की। मुझे वहीं शहर में एक दूर कोठरी में लाकर वह खुद ही छोड़ गए। साथ ही जरूरी चीज–वस्तु भी उन्होंने लाकर दे दी थी।" मृणाल का करूणामय बन्दी जीवन मुक्त तो होता है पर बदले के रूप में स्वयं को तोड़ डालता है। जैनेन्द्रकुमार कहीं–कहीं आधुनिकता के बोध में मृणाल को दिखाते हैं तो कहीं मध्य युगीन नारी के रूप में। डॉ॰ मदान के मत से, "जैनेन्द्र की उपन्यास कला में जहाँ आधुनिकता की स्वीकृति है, वहाँ अस्वीकृति भी है, संवेदना के स्तर पर स्वीकृति और चिन्तन के स्तर पर अस्वीकृति।" मृणाल पति की आज्ञा न मानने की जिद नहीं करती, यह मध्य युगीन नारी की स्थिति है, मृणाल पति के बर्ताव का विरोध कर सकती थी पर यहाँ वह मौन है। आगे मुक्त जीवन में संवेदनशील अधिक बनी है। चिन्तन से दूर है इसलिये अव्यवहार्य भी लगती है। परन्तु परिस्थिति को आह्वान देती है, यह उसकी संवेदना को आह्वान है, स्वीकृति

है। परिस्थिति की विवशताओं को देखकर उनसे समझौता करने वाली मध्य युगीन नारियों की तरह तकदीर को दोष देकर चुप बैठने वाली वह नहीं है। इसीलिये आगे हमें मृणाल की करूण–कथा मिलती है। मृणाल का उस अपरिचित अत्यन्त साधारण व्यक्ति कोयले वाले के पास जाकर रहना उनकी उसी मुक्ति यात्रा का आखिरी पड़ाव है जहाँ उन्होंने अपनी सारी विषम परिस्थितियों को इसलिए स्वीकार कर लिया है कि उसमें स्त्री स्वतन्त्रता की (चाहे कितना करूण क्यों न हो) एक गन्ध तो है। उपन्यास 'त्यागपत्र' में "मैं" (प्रमोद) बुआ से पूछता है, "तुम घर क्यों नहीं आ गई, बुआ इस आदमी के साथ बसने के लिए यहां क्यों चली आई ?" इस प्रश्न के उत्तर में बुआ ने जो उत्तर दिया वह बुआ के चरित्र का जैसे एक वसीयतनामा है ..... "प्रमोद मैं तुझे कैसे बताऊँ, मैं घर नहीं आ सकती थी। एक बार घर आकर में समझ गई थी कि वैसे मायके जाना ठीक नहीं है। स्त्री जब तक ससुराल की है, तभी तक मायके की है। ससुराल से टूटी, तब मायके से तो आप ही मैं टूट गई थी।"..... आगे प्रमोद अनेक मानवीय प्रश्न करता है। उस कोयले वाले पुरुष के सम्बन्ध को लेकर तब मृणाल अपनी कैफियत को और भी ज्यादा स्पष्ट करती है– "जब वहाँ कोठरी में अकेली थी तब मरी क्यों नहीं, क्या यह जानते हो ? मैंने यह सोचा था और चाहा था कि मैं मर ही जाऊँगी। ऐसे जीने में क्या है ? लेकिन एकाएक मुझको पता लग आया कि जिसने जीवन दिया है, मौत भी उसी की दी हुई मैं ले सकती हूं। अन्यथा अपने अहंकार के वश मरने वाली मैं कौन होती हूँ ? भूख से मरना पड़े तो मर भी जाऊँ, पर सोच–विचार कर अपघात कैसे कर सकती हूँ ! ऐसे समय उसके तीसरे रोज इसी आदमी ने खतरा उठाकर मुझे पूछा था। उस आदमी के यों पूछने में क्या बुराई थी ! शायद मेरे रूप का लोभ तो उसे था, लेकिन उसके लिये मैं उसे दोष क्या देती ! वह विघ्नों की तरफ से अन्धा होकर मेरे पास आया।" अन्त तक मृणाल अपने जीवन से संघर्ष करती है। उसका संघर्ष स्वयं के लिए है, समाज को तोड़ने–फोड़ने के लिये नहीं। डॉ॰ इन्द्रनाथ मदान के कथन के अनुसार "असल में उपन्यास में आंकना तो यह होता है कि उपन्यासकार क्या देखता है और किस तरह देखता है, क्या कहता है और किस तरह कहता है।" हमें त्यागपत्र में यह आंकना होगा कि मृणाल ने अपने जीवन में अन्त तक संघर्ष क्यों किया ? वह क्यों जिद्दी बनी ? इस संघर्ष के पीछे क्या काम आमुक्ति थी ? शीला के भाई से विवाह न होने से उसके जीवन का मोड़ किस नाली में बहता गया, प्रमोद ने क्यों नहीं मदद की, पति ने इतना संशय मन में क्यों रखा, वह क्यों नही उसे विश्वास दिला सकता था। ऐसे अनेक प्रश्न मन को सताते हैं। उपन्यासकार ने जो देखा है और कहा है उसी में हमें मृणाल के जीवन को देखना है। हमें इस बहस में नहीं पड़ना होगा कि मृणाल कोयले वाले के साथ क्यों भागी ? उसने स्पष्ट अपने जीवन की कहानी कही है। व्यक्ति जब बिलकुल असहाय होता है, पेट खाली होता है, अन्याय होता है तब जो व्यक्ति उसे मदद के लिए आगे बढ़ता है वह व्यक्ति उसके लिए ईश्वर के समान होता है। मृणाल के जीवन में यही हुआ है। मृणाल के स्वभाव में बचपन से ही उत्सर्ग–भाव अधिक है। उसने शुरु से ही कभी आदर्श भंग नहीं किया, पति के साथ भी नहीं। आदर्श पत्नी बनने का प्रयत्न करती है तो उसे सजा मिल जाती है। कोयले वाले के साथ भी उत्सर्ग भाव है, वह जानती है कि उसकी सहायता कुछ समय के लिए ही लेनी होगी क्योंकि उसका अपना परिवार है, उसे परिवार में वापस लौटना होगा। वह जानती थी, कि इसी अवश अनुरक्ति में से एक दिन प्रबल विरक्ति का भाव फूटेगा। इसीलिए वह उसके साथ आई है। उसकी कोशिश है कि वह उससे उकता जाए। चाहे पेट में बालक

क्यों न हो। सिर्फ अपने प्रति सोचना स्वार्थ है, "मैं उसे उसके परिवार में लौटा कर ही मानूंगी।" इस प्रकार मृणाल चाहती है कि विवाहित व्यक्ति प्रेम करें या परिस्थितिवश अनुरक्त रहें पर वापस अपने परिवार में चले जाएं, अपनी गृहस्थी बनाये रखें, तोड़ न डालें। जैनेन्द्र ने एक बहुत बड़ा तर्क दिया है कि विवाह जिस क्षण से दबाव होने लग जायगा, उसी क्षण से विच्छेद के समर्थन का भी आरम्भ मान लेना चाहिये। मृणाल का विवाह दबाव से ही होने के कारण विच्छेद का प्रसंग आ जाता है। जैनेन्द्र का आग्रह है कि विच्छेद अगर हुआ हो तो उसमें आगे मिलने का प्रयत्न जारी रहे। अथवा वह विच्छेद ठीक है, जिसमें सद्भाव टूटता नहीं है, केवल व्यवस्था बदलती जाती है। ऐसे विवेकपूर्ण विच्छेद में कानून कहीं आता ही नहीं। मृणाल इसी भाव से कोयले वाले के साथ जानबूझकर व्यवहार करती है। वह चाहती है कि अब वह वापस परिवार में जाएं क्योंकि अपनी विवाहित औरत से कुछ समय के लिए मानसिक विच्छेद करके आया हो तो वह फिर अपने भरे–पूरे परिवारों में जाएं। इसलिए वह कोयले वाले के साथ से अब दूर होना चाहती है। प्रेम में ऐसी महत्वाकांक्षा, त्याग और सद्भावना रखना निराग्राही प्रेम की जीत है। कोयले वाले को वापस परिवार में भेज देना उसके उत्सर्ग भाव का नया आदर्श है। उसके हेतु में अशुभ नहीं है। "त्यागपत्र" के पाठक मृणाल में (चरित्रय में) अशुभ देखते हैं और उसे दोष देते हैं। परन्तु इतनी सारी चर्चा करने पर भी आलोचकों से मृणाल की मानसिक स्थिति अनुत्तरित एवं अनिर्णित ही रह जाती है। यह एक प्रकार से मृणाल को एवं उपन्यासकार को प्रमाणपत्र ही मिलता है।

## 6.4 सारांश

जैनेन्द्र के उपन्यासों में चित्रित नारी पहले स्त्री है, बाद में पत्नी या प्रेयसी। क्योंकि जहाँ उनके स्त्रीत्व या नारी धर्म का प्रश्न आता है तो वे अपने स्त्रीत्व को प्रधानता देती हुई दिखाई देती है। 'त्यागपत्र' की मृणाल भी स्त्रीत्व को प्रकट करती हुई पतिव्रत धर्म निभाने में ही अपना सर्वस्व मानती है। मृणाल अपने स्वाभिमान के कारण पतित बनना स्वीकार करती है, परन्तु पतिव्रता के नाम पर पति पर बोझ बनना नहीं चाहती। 'त्यागपत्र' की मृणाल नारी मनोविज्ञान की नई परतों को खोलती है।

## 6.5 कठिन शब्द

1. विच्छेद
2. कैफियत
3. अनिर्णित
4. प्रमाणपत्र
5. महत्वकांक्षा
6. अनुरक्त
7. आन्तरिकता
8. मनोविज्ञान

9. परम्परागत

10. सर्वथा

## 6.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. उपन्यास 'त्यागपत्र' में अभिव्यक्त नारी मनोविज्ञान पर प्रकाश डालिए।

2. नारी मनोविज्ञान के परिप्रेक्ष्य में मृणाल का चरित्र चित्रण करें।

3. उपन्यास में चित्रित नारी मनोविज्ञान पर टिप्पणी करें।

_____

_____

_____

_____

_____

_____

## 6.7 पठनीय पुस्तकें


1. त्यागपत्र – जैनेन्द्र
2. हिन्दी उपन्यास का उद्‌भव और विकास – उमेश शास्त्री
3. नया साहित्य नये प्रश्न – डॉ० नंददुलारे वाजपेयी
4. जैनेन्द्र के उपन्यासों के नारी चरित्रों का मनोवैज्ञानिक धरातल – डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव
5. जैनेन्द्र और उनके उपन्यास – डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव
6. जैनेन्द्र : साहित्य और समीक्षा – डॉ० रामरत्न भटनागर
7. जैनेन्द्र : व्यक्तित्व और कृतित्व – सं० सत्यप्रकाश मिलिन्द
8. जैनेन्द्र के उपन्यास : मर्म की तलाश – डॉ० चन्द्रकान्त बांदिवडेकर
9. जैनेन्द्र और नैतिकता – ज्योतिष जोशी
10. जैनेन्द्र के उपन्यासों की विवेचना – डॉ० विजय कुलश्रेष्ठ
11. जैनेन्द्र के उपन्यासों में नारी की कल्पना – डॉ० अन्नपूर्ण सिंह
12. समकालीन हिन्दी उपन्यास की भूमिका – डॉ० रणवीर रांग्रा


******

# मनोविश्लेषणवादी उपन्यास और त्यागपत्र

**7.0 रूपरेखा**

**7.1 उद्देश्य**

**7.2 प्रस्तावना**

**7.3 मनोविश्लेषणवादी उपन्यास और त्यागपत्र**

**7.3.1 हिन्दी में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का आरम्भ एवं विकास**

**7.3.2 हिन्दी के प्रमुख मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार**

**7.4 मनोवैज्ञानिक उपन्यास परम्परा में जैनेन्द्र का स्थान**

**7.5 मनोविश्लेषणवादी उपन्यास और त्यागपत्र**

**7.6 सारांश**

**7.7 कठिन शब्द**

**7.8 अभ्यासार्थ प्रश्न**

**7.9 पठनीय पुस्तकें**

## 7.1 उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरान्त आप जानेंगे –

- हिन्दी में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का उद्‌भव कैसे हुआ।
- जैनेन्द्र कुमार मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार हैं।

- इनके उपन्यासों में चेतन और अवचेतन मन का विश्लेषण मुख्य विषय है।
- जैनेन्द्र के उपन्यासें में कथ्य के अन्तर्गत मनोविश्लेषण की प्रवृति प्रमुख है।
- हिन्दी में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का उद्‌भव पाश्चात्य पृष्ठभूमि पर युद्धोत्तर कालीन परिस्थिति के फलस्वरूप हुआ।

## 7.2 प्रस्तावना

उपन्यास आधुनिक युग की एक ऐसी विधा है जिसमें जीवन की नानाविध घटनाएँ अपनी सम्पूर्णता में अभिव्यक्त होती हैं। साथ ही साथ यह मानव–जीनव के प्रत्येक अंग के साथ ही व्यक्ति के सम्पूर्ण कार्य–व्यापारों एवं घटनाओं को प्रतिबिम्बित करता है। इसलिए डॉ॰ भारद्वाज का भी मानना है कि "उपन्यास आधुनिक मानव–जीवन के जितना निकट है, उतनी सम्भवतः साहित्य की अन्य कोई विधा नहीं। आज उपन्यास की परिधि में डायरी, पत्र भ्रमण, जीवन, चरित्र, आत्मकथा तथा सामाजिक शास्त्र सभी आ जाते हैं। फलतः वह हिन्दी गद्य के विकास का पर्यायवाची बन गया है। गद्य की सभी विधाओं का समाहार उपन्यास में होता है।" उपन्यासकार जीवन की अनंत सम्भावनाओं को कथ्य में पिरोकर प्रस्तुत करता है इसलिए विद्वानों ने उपन्यास एवं अन्य कथारूपों में कथ्य को ही प्रधानता दी है और उसका महत्व भी स्वीकार किया है। उपन्यासकार जीवन एवं जगत के व्यापक अनुभव को अपने विशिष्ट चिंतन के धरातल पर अनुभूत कर अपनी विशिष्ट अनुभूति को कथ्य के माध्यम से पाठकों तक सम्प्रेषित करता है।

## 7.3 मनोविश्लेषणवादी उपन्यास और त्यागपत्र

उपन्यास आधुनिक युग की एक ऐसी विधा है जिसमें जीवन की नानाविध घटनाएँ अपनी सम्पूर्णता में अभिव्यक्त होती हैं। साथ ही साथ यह मानव–जीनव के प्रत्येक अंग के साथ ही व्यक्ति के सम्पूर्ण कार्य–व्यापारों एवं घटनाओं को प्रतिबिम्बित करता है। इसलिए डॉ॰ भारद्वाज का भी मानना है कि "उपन्यास आधुनिक मानव–जीवन के जितना निकट है, उतनी सम्भवतः साहित्य की अन्य कोई विधा नहीं। आज उपन्यास की परिधि में डायरी, पत्र भ्रमण, जीवन, चरित्र, आत्मकथा तथा सामाजिक शास्त्र सभी आ जाते हैं। फलतः वह हिन्दी गद्य के विकास का पर्यायवाची बन गया है। गद्य की सभी विधाओं का समाहार उपन्यास में होता है।" उपन्यासकार जीवन की अनंत सम्भावनाओं को कथ्य में पिरोकर प्रस्तुत करता है इसलिए विद्वानों ने उपन्यास एवं अन्य कथारूपों में कथ्य को ही प्रधानता दी है और उसका महत्व भी स्वकीार किया है। उपन्यासकार जीवन एवं जगत के व्यापक अनुभव को अपने विशिष्ट चिंतन के धरातल पर अनुभूत कर अपनी विशिष्ट अनुभूति को कथ्य के माध्यम से पाठकों तक सम्प्रेषित करता है।

जैनेन्द्र कुमार मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार हैं अतः मन के चेतन और अवचेतन मन का विश्लेषण उनके उपन्यासों का मुख्य विषय है। डा॰ नंद दुलारे वाजपेयी ने भी जैनेन्द्र के उपन्यासों का आकलन करते हुए लिखा है– "उन्होंने व्यक्तित्व को मूलतः व्यक्ति मानकर उसकी मान्यताओं को वाणी देने का प्रयास किया है। वे व्यक्तिगत जीवन का चित्रण करते हुए बाहर से भीतर की ओर आये हैं। सामाजिक समस्याओं के स्थान पर व्यक्तिगत विश्लेषण करने लगे हैं। इसलिए

उनके उपन्यासों को व्यक्तिवादी उपन्यासों की भी संज्ञा दी जाती है।" अतः कहा जा सकता है कि जैनेन्द्र के उपन्यासों में कथ्य के अन्तर्गत मनोविश्लेषण की प्रवृति प्रमुख है परंतु जैनेन्द्र की विशेषता यह भी है कि वे पात्रों के मनोविश्लेषण के माध्यम से मानव जीवन के अन्तर्गत जितनी भी अनुभूतियों का भण्डार है वे एक–एक कर हमारे सामने प्रकट करते चले जाते हैं। उनकी मान्यता थी कि "इस विश्व के छोटे–छोटे खण्ड को लेकर ही हम अपना चित्र बना सकते हैं और उसमें सत्य के वर्णन पा सकते हैं और उसके द्वारा इन सत्य के दर्शन करा भी सकते हैं। जो ब्रह्मांड में है वही पिण्ड में भी है। इसलिये अपने चित्र के लिए बड़े कैनवास की जरूरत मुझे नहीं लगी। थोड़े में समग्रता क्यो नहीं दिखलाई जा सके ?" इसलिए उन्होंने गिने चुने पात्रों को लेकर अपने उपन्यासों का कथ्य निर्मित किया है, फिर भी उसमें जीवन की विविध समस्याएँ विचार तथा जटिलताएँ दृष्टिगोचर हो जाती है।

### 7.3.1 हिन्दी में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का आरंभ एवं विकास

हिन्दी में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का उद्‌भव पाश्चात्य पृष्ठभूमि पर युद्धोत्तर कालीन परिस्थिति के फलस्वरूप हुआ। फ्रायड, युंग और एडलर की मनोवैज्ञानिक धारणाओं का प्रभाव हिन्दी उपन्यासकारों पर भी पड़ा। वैज्ञानिक प्रगति के फलस्वरूप दैविक मान्यताएँ नष्ट हुई, प्रत्येक सामाजिक सत्य वैयक्तिक सत्य से प्रभावित हुआ। मानव अपनी जटिल परिस्थितियों के कारण जटिल बन गया, विद्रोही बन गया। डॉ॰ अन्नपूर्णा सिंह भी उपन्यासों में मनोविज्ञान के आगमन का कारण बताते हुए लिखती हैं– "आधुनिक युग में डॉर्विन के उत्क्रान्ति के सिद्धान्त तथा नित नये वैज्ञानिक आविष्कारों के कारण मानव के विचारों में भी प्रगतिशीलता आयी। लोगों का ध्यान बाह्य परिस्थितियों से हटकर अन्तः जगत् की ओर गया। मन को अन्य पदार्थों की तरह एक पदार्थ मानकर प्रयोगशाला में उसके स्वरूप का निर्माण होने लगा। मनोविज्ञान ने व्यक्ति के चिंतन को प्रभावित करने के साथ–साथ राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों को भी प्रभावित किया। इन सब परिस्थितियों का हिन्दी उपन्यास पर प्रभाव दिखाई देने लगा था। डॉ॰ एम. वेंकटेश्वर भी लिखते हैं– "प्रेमचन्द ने हिन्दी साहित्य में पर्दापण करते ही उपन्यासों में जीवन उसकी जटिलताओं, वैषम्य तथा संघर्ष को समाविष्ट किया और चूँकि इन सारी क्रियाओं के साथ मानव मन और हृदय का समन्वय है अतः प्रकारान्तर से उसमें मनोवैज्ञानिकता का आना अनिवार्य हो गया है। अर्थात् प्रेमचन्द युगीन परिस्थितियों ने प्रेमचन्द को युगीन परिस्थितियों से संघर्षरत मनुष्य का चित्रण करने के लिए प्रेरित किया था।

परंतु डॉ॰ एम वेंकटेश्वर के शब्दों में कहें तो – "प्रेमचन्द ने मनोविज्ञान को साधन रूप में प्रयुक्त किया है। कतिपय आधुनिकतम उपन्यासकारों की भाँति वह उनका साध्य नहीं बन सका है।" अर्थात् प्रेमचन्द के उपन्यासों में पात्रों का मनोवैज्ञानिक विवेचन मिलता है, परंतु उस–अर्थ में नहीं जिस अर्थ में मनोविश्लेषणवादी उपन्यासों में लक्षित होता है। अतः प्रेमचन्द को मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार नहीं माना जा सकता परंतु यह कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द की विचारधारा में मनोविज्ञान का आंशिक प्रभाव मिलता है।

हिन्दी उपन्यास जगत में सर्वप्रथम मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार जैनेन्द्र जी ही माने जाते हैं। उन्होंने सर्वप्रथम अपने उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों के आधार पर पात्रों का अन्तर्द्वन्द्व प्रस्तुत किया। "मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों

का प्रमुख उद्देश्य मनस्तत्व के माध्यम से मानव चरित्र का चित्रण एवं विश्लेषण है। जिस प्रकार हम बाह्य जगत में जटिलताएँ और समस्याएँ देखते हैं उसी प्रकार अन्तर्जगत में भी हलचल मची रहती है। तत्कालीन त्रासद परिस्थितियों से व्यक्ति अन्तर्मुखी होता गया और उसका जीवन अन्तःवृत्तियों से ही संचालित होने लगा। जैनेन्द्र ने सर्वप्रथम हिन्दी में व्यक्ति को परखने की कसौटी प्रस्तुत की उसका आधार बाह्य सामाजिक स्थिति नहीं व्यक्ति की अन्तर्मुखी प्रवृत्ति है।" डॉ॰ हरदयाल ने भी जैनेन्द्र को हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के प्रवर्तक मानते हुए लिखा है– "पश्चिम में 1912–13 में फ्रायड के सिद्धान्तों से प्रभावित मार्सल प्रस्तुत, डोरोथी रिचर्ड्सन जेम्स जॉयस, वरजीनिया वुल्फ इत्यादि के उपन्यासों से मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का सूत्रपात हुआ। हमारे यहाँ मार्क्सवाद और मनोविश्लेषणवाद थोड़ी देर से पहुँचा। मनोवैज्ञानिक उपन्यासों का सूत्रपात जैनेन्द्र के 'परख' (1929) से हुआ। अतः हिन्दी में मनोवैज्ञानिक उपन्यासधारा का श्रीगणेश जैनेन्द्र के 'परख' से ही माना जाता है और जैनेन्द्र को हिन्दी का प्रथम मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार। जैनेन्द्र के पश्चात् हिन्दी की मनोवैज्ञानिक उपन्यास धारा को विकसित करने में इलाचन्द्र जोशी, अज्ञेय, भगवती प्रसाद वाजपेयी, डॉ॰ देवराज, प्रभाकर माचवे, धर्मवीर भारती, नरेश मेहता, रघुवंश, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, भारत भूषण अग्रवाल आदि ने अपना योगदान दिया है। परंतु मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार के रूप में इलाचन्द्र जोशी, अज्ञेय, जैनेन्द्र, भगवती प्रसाद वाजपेयी तथा डॉ॰ देवराज की औपन्यासिक प्रवृत्तियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं। हिन्दी के कुछ प्रमुख मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों का परिचय यहाँ प्रस्तुत है।

### 7.3.2 हिन्दी के प्रमुख मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार

#### जैनेन्द्र :

हिन्दी में मनोवैज्ञानिक उपन्यास धारा का सूत्रपात करने वाले जैनेन्द्र ने हिन्दी उपन्यास साहित्य को परख (1929), सुनीता (1935), त्यागपत्र (1937), कल्याणी (1939), सुखदा (1952), विवर्त (1953), व्यतीत (1953), जयवर्धान (1956), मुक्तिबोध (1965) अनन्तर (1968), अनामस्वामी (1974), दशार्क (1985) जैसे कुल बारह उपन्यास लिखें हैं। इन उपन्यासों के द्वारा कथा घटना या पात्रों के बाह्य व्यवहारों के चित्रण के स्थान पर व्यक्ति के मन को विश्लेषित करने में ही उन्होंने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। पात्रों के मनोविश्लेषण के चित्रण घटना या कथा न होकर जीवन्त मनुष्य के सजीव मन के चित्रण हैं। इसलिए मनोलोक के विभिन्न भावों, उद्वेलनों, तनावों, वृत्तियों, संवेदनाओं, कुण्ठाओं, क्रिया–प्रतिक्रियाओं के साथ मानव मन के सुख–दुख, आशा–आकांक्षा, पीड़ा अतृप्ति, अभुक्त वासना, तर्क, प्रेम, काम, अहम् आदि का मनोवैज्ञानिक अंकन जैनेन्द्र ने अपने उपन्यासों में किया है। जैनेन्द्र के उपन्यासों की इन्हीं विशेषताओं को लक्षित कर इलाचंद्र जोशी ने भी 'आधुनिक हिन्दी उपन्यास में मनोविज्ञान' नामक अपने लेख में लिखा है– "जैनेन्द्र वास्तविक अर्थ में हिन्दी में प्रमुख मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार हैं। उन्होंने हिन्दी साहित्य की निर्जीव औपन्यासिकता में सप्राण और अंतः संघर्षमय पात्रों की सजीवता भर दी है।" वास्तव में अन्तः संघर्षमय पात्रों का मनोविश्लेषण कर जैनेन्द्र ने मनुष्य को वर्जनाओं के दायरे में कसकर उसके वैयक्तिक विकास में विघ्नरूप सामाजिक नैतिकता का विरोध कर

समाज तथा समाज में निर्मित हाने वाले स्त्री–पुरूषों के सम्बन्धों की नई व्याख्या प्रस्तुत की। परिणामतः उनके उपन्यासों में प्रेम त्रिकोण काम–कुण्ठा एवं पर पुरुष के प्रति समर्पित नारियों के चित्रण भी पाये जाते हैं।

जैनेन्द्र ने अपने आरंभिक उपन्यास 'परख' में कट्टो, सत्यधन की विफल प्रेम कहानी द्वारा बुद्धि और हृदय के द्वन्द्व को उद्घाटित करते हुए व्यक्ति स्वांतत्र्य तथा सामाजिक नैतिकता की क्रिया–प्रतिक्रिया का सजीव अंकन किया है साथ ही साथ कट्टो के सेवायज्ञ के द्वारा दमित काम–वासना का उदात्तीकृत रूप प्रस्तुत किया है।

'सुनीता' के द्वारा घर–बाहर की समस्या को दिखा कर पति परायणता तथा पर पुरूष के प्रति देह समर्पण की दो अन्तर्विरोधी भावधारा का मनोवैज्ञानिक अंकन किया गया है।

'त्यागपत्र' में माता–पिता विहीन समाज की देन के रूप में मिली दुर्दशा को झेलती हुई मृणाल की आत्म व्यथा प्रस्तुत की गई है इस उपन्यास में भी अतृप्ति एवं आत्मपीड़ा में फँसी मृणाल के द्वारा लेखक ने पतिपरायणता की समस्या प्रस्तुत की है।

'कल्याणी' में भी आधुनिक शिक्षा सम्पन्न नारी की निराशा, कुंठा वितृष्णा, अपमान और अतृप्ति को दिखाया गया है जो पति की धन लिप्सा से कुंठित होकर भीतर से रिक्त होकर टूट जाती है।

'सुखदा' की रचना के द्वारा जैनेन्द्र ने नारी के अहम के कारण गृहस्थी के टूटने की व्यथा–कथा प्रस्तुत की है। कम आय वाले पति के प्रेम से अतृप्त सुखदा पर–पुरूष के प्रेम में पड़कर घर त्याग देती है परंतु वहाँ भी अतृप्ति का अनुभव करती है। जिससे उसका घर भी टूट जाता है और स्वयं भी।

इस प्रकार जैनेन्द्र के प्रारंभिक उपन्यास नायिका प्रधान हैं। 'अनामस्वामी' के द्वारा जैनेन्द्र ने ब्रह्मचर्य तथा भारतीय अध्यात्म का परिचय देकर स्त्री–पुरूष के सम्बन्धों का मनोविश्लेषण प्रस्तुत किया है। 'दशार्क' में भी रंजना के द्वारा स्त्री–पुरुष सम्बन्धी चिन्तन को साकार करने की कोशिश की है। अतः डॉ॰ रघुनाथ सरन झालानी ने भी लिखा है कि "जैनेन्द्र ने सबसे पहले रूढ़िवादी श्रृंखलाओं और बँधी हुई परिस्थितियों से मुक्त होकर मन की 'परख' की। मन के रहस्यात्मक गह्वरों में बैठने की जैनेन्द्र की अन्तर्दृष्टि सर्वथा तात्विक है। मनःस्थितियों तथा अन्तर्द्वन्द्वों के चित्रण में वे सिद्धहस्त हैं।"

जैनेन्द्र ने अपने उपन्यासों में अचेतन की गहन गुफाओं में छिपी हुई मनोग्रंथियों को खोलने की कोशिश की है। जो हिन्दी उपन्यास विधा को एक नई दिशा की ओर ले जाती है। अपने जैनेन्द्रिय चिंतन के माध्यम से उन्होंने मनुष्य के सार्वभौमिक प्रश्नों–प्रेम–विवाह तथा स्त्री–पुरूष सम्बन्ध को स्पष्ट करने का भी प्रयास किया है। डॉ॰ नंददुलारे वाजपेयी ने भी जैनेन्द्र के योगदान को स्वीकारते हुए लिखा है – "हिन्दी के पाठकों के समक्ष इस प्रकार का मौलिक लेखन जैनेन्द्र के पहले नहीं था। अतएव आविष्कर्ता या नये मार्ग के प्रणेता के रूप में जैनेन्द्र का हिन्दी साहित्य में स्वागत हुआ है।" अर्थात जैनेन्द्र वास्तविक अर्थ में हिन्दी में प्रमुख मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार हैं।

## इलाचंद्र जोशी :

इलाचंद्र जोशी हिन्दी के दूसरे महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार हैं। इन्होनें जैनेन्द्र के साथ ही उपन्यास लिखना प्रारंभ किया था। सन् 1929 में जोशी जी का प्रथम उपन्यास घृणामयी प्रकाशित हुआ जो 1946 में संशोधित कर 'लज्जा' नाम से प्रकाशित किया गया। अतः 'लज्जा' को ही उनका प्रथम उपन्यास माना जाता है। इसके अतिरिक्त सन्यासी (1941), पर्दे की रानी (1941), प्रेत और छाया (1945), निर्वासित (1946), जिप्सी (1952), जहाज़ का पंछी (1956) मुक्तिपथ (1950) सुबह के भूले (1951) ऋतु चक्र (1968), भूत का भविष्य (1973), तथा कवि की प्रेयसी (1976), जैसे कुल बारह उपन्यास हिन्दी साहित्य को प्रदान किये हैं।

जोशी जी ने अपने उपन्यासों में मनोविश्लेषण के द्वारा मानसिक जटिलता एवं विकृतियों से अवगत कराकर स्वस्थ मस्तिष्क के निर्माण से रचनात्मक कार्यो की ओर मनुष्य को उन्मुख करने का प्रयास किया है। इसके लिए उन्होंने प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक युंग के 'सामूहिक अचेतन मन' सिद्धान्त का आश्रय भी ग्रहण किया है।

'इस प्रकार जोशीजी ने अपने व्यापक जीवन अनुभवों के आधार पर अपने उपन्यासों की कथावस्तु निर्मित करने की कोशिश की है। साथ ही साथ कथावस्तु के माध्यम से मनस्तत्व का पल्ला पकड़कर मानव के अन्तर्मन को व्यक्त करने का प्रयास किया है। अतः त्रिभुवनसिंह ने भी उन्हें प्रकृतवादी बताते हुए लिखा है– "इलाचन्द्र जोशी के उपन्यास यद्यपि मूलतः मनोविश्लेषणात्मक हैं, परंतु कथा के लिए उन्होंने जो ढंग अपनाया है, और उसके कारण जिन चरित्रों का उन्होंने निर्माण किया है, उनके चरित्रों का यदि मूल्यांकन किया जाये तो वे प्रकृतवादी ही ठहरते हैं।"

जोशी जी के उपन्यासों पर दृष्टि डालने से यह देखा जा सकता है कि उनके प्रारंभिक उपन्यास अपरिपक्व काम भावना से तथा व्यक्ति के विकृत अहम् से परिपूर्ण हैं। परंतु उनके उपन्यास विशुद्ध मनोवैज्ञानिक तत्वों से आरंभ होकर व्यापक दृष्टिकोण की ओर क्रमशः विकसित भी हुए हैं अतः मनोवैज्ञानिक उपन्यासधारा में इलाचन्द्र जोशी एवं उनके उपन्यासों का विशिष्ट महत्व रहा है।

## अज्ञेय :

मनोवैज्ञानिक उपन्यासधारा के सशक्त हस्ताक्षर के रूप में अज्ञेय का स्थान है। डॉ॰ रामदरश मिश्र ने भी लिखा है– "हिन्दी में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों को प्रौढ़ रूप देने का श्रेय अज्ञेय को ही है। इनके उपन्यास सर्वत्र और सभी रूपों में सर्जनात्मकता की चेतना से सम्पन्न है।" अज्ञेय ने अपनी सर्जनात्मक चेतना से परिपूर्ण चार उपन्यास हिन्दी साहित्य को दिये हैं– 1. शेखर एक जीवनी प्रथम भाग (1941), 2. दूसरा भाग (1944), 3. नदी के द्वीप (1951), 4. अपने अपने अजनबी (1961)

अज्ञेय ने व्यक्तिवाद, अस्तित्ववाद और मनोवैज्ञानिक नियतिवाद के प्रभाव को स्वीकार करके अपने पात्रों के अन्तर्सत्यों का यथार्थ विश्लेषण प्रस्तुत किया है। अतः उपन्यासों में व्यक्त अनुभूतियों में सच्चाई, तीव्रता और सूक्ष्मता पायी

जाती है। इसलिए डॉ॰ रणवीर रांग्रा भी लिखते हैं– "आज के अनिश्चित, अव्यवस्था और जटिलता के युग में एक व्यक्ति के भीतर जो अनेक बहिर्मुखी व्यक्तित्व उभर आए हैं और उसके परिणामस्वरूप उसके भीतर जो अनेक संघर्ष छिड़ गये हैं, मानव के संचित अनुभव के प्रकाश में उसे ईमानदारी से पहचानने की कोशिश कराना ही अज्ञेय के उपन्यासों की प्रतिज्ञा है।" वास्तव में अज्ञेय ने इसी प्रतिज्ञा का पालन करते हुए हिन्दी उपन्यास साहित्य को एक नया मोड़ दे दिया है।

वास्तव में अज्ञेय ने अपने उपन्यास साहित्य के माध्यम से न सिर्फ हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यास धारा को एक नूतन दिशा प्रदान की है बल्कि विश्व के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की तुलना में खड़े रहे, उनको चुनौती दे सके ऐसे उपन्यासों की रचना कर अपने नाम को सही अर्थ में सार्थक कर दिया है।

हिन्दी में मनोवैज्ञानिक उपन्यास धारा के अन्तर्गत जैनेन्द्र, इलाचन्द्र जोशी और अज्ञेय के अतिरिक्त डॉ॰ देवराज ने 'बाहर–भीतर' (1954), 'अजय की डायरी' (1960) 'पथ की खोज' (1951), दो भाग, दूसरा सूत्र' (1918) आदि उपन्यास लिखकर मनोवैज्ञानिक उपन्यासधारा को विकसित करने में अपना योगदान दिया है।

भगवती प्रसाद वाजपेयी ने 'प्रेमपथ' (1926), 'चलते–चलते' (1951) जैसे उपन्यास लिखकर मनोवैज्ञानिक उपन्यासधारा को प्रशस्त किया है।

इनके अतिरिक्त 'गुनाहों का देवता'' (1949), 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' (1952), धर्मवीर भारती। 'शहर में घूमता आईना' (1963), उपेन्द्रनाथ अश्क। 'सांचा' (1955) 'परन्तु (1964) 'द्वाभा' (1955) प्रभाकर माचवे। 'कुलटा' (1958), 'अनदेखे अनजान पुल' (1963) राजेन्द्र यादव। 'अन्धेरे बंद कमरे' (1961) मोहन राकेश आदि के उपन्यासों में भी मनोविज्ञान का प्रयोग हुआ है। अतः कहा जा सकता है कि आधुनिक जीवन की जटिलता के कारण उत्पन्न स्थिति और स्थितियों के अनुरूप मानव मन की क्रिया–प्रतिक्रियाओं को इन मनोवैज्ञानिक उपन्यासों में वाणी मिली है। अतः जीवन के नये आयामों से उत्पन्न नये मूल्यों और आस्थाओं के साथ इन उपन्यासों का स्वीकार भी हुआ है।

## 7.4 मनोवैज्ञानिक उपन्यास परंपरा में जैनेन्द्र का स्थान

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि फ्रायड, युंग एडलर आदि मनोविश्लेषकों के द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों के आधार पर हिन्दी में भी मनोवैज्ञानिक उपन्यास धारा का सूत्रपात हुआ। फलतः हिन्दी उपन्यास समाज से व्यक्ति की ओर उन्मुख हुआ, नैतिक मूल्यों की समीक्षा नये ढंग से होने लगी, पाप और पुण्य की परिभाषा बदलने लगी, अच्छाई और बुराई के दृष्टिकोण परिवर्तित हो गये और जीवन के नये मापदंड आस्तित्व में आये, जिसमें व्यक्ति को महत्व दिया जाने लगा।

हिन्दी में मनोवैज्ञानिक उपन्यासधारा की शुरूआत जैनेन्द्र से हुई है। जैनेन्द्र के बाद इलाचन्द्र जोशी, अज्ञेय आदि का भी योगदान रहा है।

किसी भी उपन्यास धारा में किसी विशेष उपन्यासकार का स्थान निर्धारण दो दृष्टिकोण से किया जा सकता है – 1. किसी विशेष उपन्यासकार का उस विशेष धारा में पर्दापण के समय की स्थिति तथा 2. उस रचनाकार का विशेषधारा को प्रवाहमान करने में उसका योगदान गुणोत्तर तथा (गुणात्मकता के सन्दर्भ में)। जैनेन्द्र का मनोवैज्ञानिक उपन्यास परंपरा में स्थान निर्धारण उपरोक्त दोनों दृष्टिकोण से किया जा सकता है।

जैनेन्द्र के हिन्दी उपन्यास संसार में आगमन से पूर्व प्रेमचन्द ने कल्पना की दुनिया में भटकने वाले उपन्यास साहित्य को यथार्थ की भावभूमि पर लाकर खड़ा किया था तथा व्यक्ति के व्यक्तिगत हितों की बजाय समाज को श्रेष्ठ मानने वाले प्रेमचन्द ने समाज के सामाजिक प्रश्नों को उनके पूरे यथार्थ के साथ वाणी प्रदान की थी। परिणामतः सामाजिक उपन्यासों का प्रचलन अधिक था। प्रेमचन्द तथा उनके समकालीन उपन्यासकार सामाजिक विषमताओं की धज्जियाँ उड़ाने में ही व्यस्त थे। अतः समाज की व्यथा कथा को निरूपित करने वालों को व्यक्ति की व्यक्तिगत व्यथा को समग्रता के साथ चित्रित करने का समय ही नहीं मिला। व्यक्ति की आंतिरक व्यथा के इस अछूते पक्ष को पहली बार जैनेन्द्र ने ही पकड़ा और हिन्दी उपन्यास साहित्य में व्यक्तिवादी एवं मनोवैज्ञानिक उपन्यास की नवधारा का सूत्रपात किया। डॉ॰ त्रिभुवनसिंह ने भी इसी सत्य को उजागर करते हुए लिखा है – "प्रेमचन्द जी तत्कालीन परिस्थितियों, आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक एवं राजनैतिक विषमताओं का यथार्थ एवं विश्वसनीय चित्र तो उतार चुके थे, पर व्यक्ति के अन्तर्मन में चलने वाले संघर्षों एवं अनुकूल तथा प्रतिकूल परिस्थितियों के बीच उसके बदलने वाले संकल्पों का चित्र उतारना अभी शेष था, जिसकी ओर दृष्टि डालने का उन्हें अवकाश ही नहीं मिला। युग की इस आवश्यकता की ओर भी उपन्यासकारों की दृष्टि गई और हम देखते हैं कि प्रेमचन्द की रचनाओं के ही गर्भ से जैनेन्द्र साहित्य का एक स्त्रोत फूट निकला जिसका आगे चलकर स्वतंत्र विकास हुआ है।" डॉ॰ त्रिभुवनसिंह के इन शब्दों से यह स्पष्ट हो जाता है कि युग की आवश्यकता के अनुरूप जैनेन्द्र ने हिन्दी उपन्यास साहित्य को मनोविज्ञान से जोड़कर हिन्दी उपन्यास को मनोवैज्ञानिक उपन्यासधारा की ओर मोड़ने का प्रशस्त कार्य किया है। अर्थात् एक युग प्रवर्तक के रूप में हिन्दी की मनोवैज्ञानिक उपन्यास धारा में जैनेन्द्र का स्थान सिद्ध होता है।

हिन्दी उपन्यास साहित्य को मनोवैज्ञानिक उपन्यासधारा की ओर मोड़ने वाले जैनेन्द्र ने 'परख', 'सुनीता', 'त्यागपत्र', 'सुखदा', 'कल्याणी', 'विवर्त', 'व्यतीत', 'जयवर्धन', 'मुक्तिबोध', 'अनन्तर', 'अनामस्वामी', तथा 'दशार्क' जैसे कुल बारह मौलिक उपन्यासों की बहुमूल्य पूँजी हिन्दी साहित्य को प्रदान की है जो गुणात्मकता की दृष्टि से भी अन्य उपन्यासकारों की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण एवं सार्थक दिखाई देते हैं।

मनुष्य मन के सफल चित्रकार जैनेन्द्र केवल उपन्यासकार ही नहीं बल्कि भारतीय अध्यात्म के प्रखर चिंतक, दार्शनिक एवं विचारक तथा सफल वक्ता भी थे। अतः अपने उपन्यासों में कथा, घटना या पात्रों के बाह्य व्यवहारों के चित्रण के स्थान पर व्यक्ति के मन को विश्लेषित करने में अपने दार्शनिक विचारों को भी बखूबी व्यक्त किया है।

जैनेन्द्र ने जीवन्त मनुष्य की अपरिमित संभावनाओं से युक्त मन को विश्लेषित करने का बृहत्तर कार्य किया है। इसलिए मनोलोक के विभिन्न भावों उद्वेलनों, तनावों, वृत्तियों, संवेदनाओं, कुण्ठाओं, क्रिया–प्रतिक्रियाओं के साथ–साथ

मनुष्य की निजी सुख दुःखात्मक भावनाएँ, आशा–आकांक्षायें तथा अभुक्त वासना, प्रेम, अहम् आदि को भी उपन्यासों की कथा और पात्रों के माध्यम से खोलकर रख दिये हैं।

मनोवैज्ञानिक उपन्यासधारा की त्रयी के रूप में जैनेन्द्र, अज्ञेय और इलाचन्द्र जोशी माने जाते हैं। इलाचन्द्र जोशी और जैनेन्द्र दोनों ने एक ही समय (1919) में उपन्यास लिखना प्रारंभ किया था और दोनों ने हिन्दी साहित्य को बारह–बारह मौलिक उपन्यास प्रदान किये हैं। परंतु इलाचन्द्र जोशी के उपन्यासों में सामूहिक अचेतन मन की प्रवृत्तियों का विश्लेषण प्रधान रूप से पाया जाता है, परंतु वे मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों की व्याख्या स्वयं उपन्यास में कर डालते हैं। परिणामतः उनके पात्र अस्वाभाविक लगते हैं। उनका मनोविश्लेषण बाहरी दिखाई देता है। जब कि जैनेन्द्र ने व्यक्ति की सत्ता को सर्वोपरि मानते हुए अपना जीवन दर्शन प्रस्तुत कर श्लीलता–अश्लीलता, प्रेम, स्त्री पुरुष सम्बन्ध आदि की नयी व्याख्या की। अतः जैनेन्द्र के उपन्यासों में बाह्य घटनाओं की अपेक्षा मानसिक संघर्ष का उहापोह अधिक दिख पड़ता है। उनके पात्र मानसिक धरातल पर अधिक विचरण करते हैं अतः स्वाभाविक लगते हैं। इतना ही नहीं चरित्रों के मनोविश्लेषण के आलोक में लेखक का जीवन दर्शन भी स्वाभाविक दिखाई देता है। 'जो ब्रह्माण्ड में है वही पिण्ड में हैं।" लेखक की मान्यता भी अधिक सार्थक दिखाई देती है। इस दृष्टि से इलाचन्द्र जोशी की तुलना में जैनेन्द्र कुछ विशिष्ट महत्व के अधिकारी दिखाई देते हैं। .

मनोवैज्ञानिक उपन्यासधारा में जैनेन्द्र और अज्ञेय दो दिग्गज कथाकार माने जाते हैं। जैनेन्द्र ने हिन्दी उपन्यास साहित्य को प्रेमचन्द की सामाजिकता से निकाल कर मनोविश्लेषण के पथ पर अग्रसित किया अर्थात हिन्दी उपन्यास साहित्य को मनोवैज्ञानिक धारा की ओर मोड़ने का कार्य जैनेन्द्र ने किया है, तो अज्ञेय ने हिन्दी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों को प्रौढ़ता प्रदान की है। अज्ञेय के उपन्यास सर्जनात्मक चेतना से सम्पन्न हैं। उनके पात्र भी मनोवैज्ञानिक सत्यों की प्रतीति कराने के लिए गढ़े गए नहीं दिखते बल्कि सहज रूप में मनोविश्लेषण की राह पर चल पड़े राहगीर की भाँति दिखते हैं। अज्ञेय के विचार दर्शन पर फ्रायड़ द्वारा प्रतिपादित काम, भय और अहम् की प्रधानता है। परिणामः अज्ञेय व्यक्तिवाद, अस्तित्ववाद को लेकर चले। जबकि जैनेन्द्र का विचार दर्शन फ्रायड़ की काम पीड़ा, गाँधीवाद आत्मपीडन तथा भारतीय रहस्यवाद के समीकरण से निर्मित हुआ है। अतः उनके उपन्यासों में आत्मपीड़न के सिद्धान्त के सहारे सामाजिक अनाचारों पर विजय प्राप्त करने की कामना दिखाई देती है।

इस प्रकार जैनेन्द्र और अज्ञेय मनोवैज्ञानिक उपन्यास धारा के 'दो मील के पत्थर' माने जा सकते हैं जिनके बीच समग्र मनोवैज्ञानिक धारा के उपन्यास गतिमान हैं। जिस प्रकार दौड़ की स्पर्धा में प्रस्थान रेखा का जो महत्व होता है वही महत्व मनोवैज्ञानिक उपन्यासधारा में जैनेन्द्र का है। प्रस्थान रेखा से दौड़ आरंभ हो चुकी है जिसका एक मोड़ इलाचन्द्र जोशी सूचित कर रहे हैं तो दूसरा मोड़ अज्ञेय। परंतु दौड़ अभी जारी है अतः मनोवैज्ञानिक उपन्यासधारा से यह अपेक्षा है कि वह लगातार आगे बढ़ते हुए मूल्यों एवं परिस्थितियों से त्रस्त व्यक्ति के मानस को कलापूर्ण अभिव्यक्ति प्रदान करे और उससे मनुष्य सुख रूपी उस मानसिक मंजिल को प्राप्त करे जो उसकी जन्मजात मनोवृत्ति रही है। मनोवैज्ञानिक उपन्यास परम्परा में जैनेन्द्र का अद्वितीय स्थान है और रहेगा भी।

## 7.5 मनोविश्लेषणवादी उपन्यास और त्यागपत्र

'त्यागपत्र' में भी लेखक ने स्त्री–पुरुष की शारीरिक इच्छापूर्ति के फलस्वरुप बने हुए शारीरिक सम्बन्धों को दिखाया है। हालांकि भारतीय समाज ऐसे सम्बन्धों को केवल पति–पत्नी के बीच स्थापित होना ही स्वीकार करता है, परंतु जैनेन्द्र के उपन्यासों में पति को छोड़कर किसी अन्य पुरुष के साथ होने वाले शारीरिक सम्बन्धों को भी स्वीकार किया गया है।

'त्यागपत्र' में नायिका मृगाल के शारीरिक सम्बन्ध पति के साथ होने की चर्चा कहीं नहीं है लेकिन कोयले वाले के साथ इसी सम्बन्ध को स्वीकार स्वयं मृणाल करती है। पति के द्वारा ठुकराई गयी मृणाल कोयले वाले के प्रति आकर्षित होती है। कोयले वाले के अपने प्रति आकर्षण को मृणाल समझती है और वह यह भी जानती है कि अपने प्रति कोयले वाले की भोगाकांक्षा, शारीरिक भूख इतनी जाग गयी है कि वह यदि उसकी शारीरिक भूख को तृप्त न करेगी तो वह कुछ भी कर बैठेगा। इसी बात को प्रमोद के सामने व्यक्त करती हुई मृणाल कहती है – "उस समय उसका सर्वस्व मैं ही थी। मैं उसके हाथ से निकलती तो वह अनर्थ ही कर बैठता। अपने को मार लेता, या शक्ति होती तो मुझे मार देता। सच कहती हूँ प्रमोद, कि उस समय उस आदमी पर मुझे इतनी करूणा आयी कि मैं ही जानती हूँ। मैं उसके इस भ्रम को किसी भाँति न तोड़ सकी हूँ, उस पर मुग्ध हूँ, ऐसा करना क्रूरता होती। मेरे पास जो कुछ बचा–खुचा था, मैंने उसे सौंप दिया।" इस प्रकार कोयले वाले के साथ अपने शारीरिक सम्बन्धों को स्वीकार करती है। मृणाल यह भी जानती है कि ऐसे सम्बन्धों को समाज मान्य नहीं करता, इतना ही नहीं इन सम्बन्धों का भविष्य लम्बा भी नहीं होता। इसलिए कोयले वाले की हवस को पूर्ण करने के बाद वह कहती है– 'अब उसका मोह टूट गया है। वह जान गया है कि मैं उसकी सर्वस्व नहीं हूँ। मैं बस एक बदजात, बदकार बाजारू औरत हूँ।" इसलिए वह प्रमोद के साथ फिर से अपने परिवार में लौट नहीं सकती।

वास्तव में मृणाल के माध्यम से लेखक ने स्त्री–पुरुष के शारीरिक सम्बन्धों के मध्य उच्च भावानुभूति का चित्रण कर दिया है। क्योंकि मृणाल स्त्री धर्म और पति धर्म को निभाने की कोशिश करती हुई दिखाई देती है। वह कोयले वाले के साथ तभी शारीरिक सम्बन्ध बनाने के लिए बाध्य हुई थी, जब उसके पति ने स्वयं उसे छोड़ दिया था। वह कहती है "पति को मैंने नहीं छोड़ा ! उन्होंने मुझे छोड़ा हैं मैं स्त्री–धर्म ही मानती हूँ। उसका स्वतंत्र धर्म मैं नहीं मानती हूँ। क्योंकि पतिव्रता को यह चाहिए कि पति उसे नहीं चाहता, तब भी वह अपना भार उस पर डाले रहे ? मुझे देखना भी नहीं चाहते, यह जानकर मैंने उसकी आँखों से हट जाना स्वीकार कर लिया।" इतना ही नहीं वह यह भी मानती है "जिसको तन दिया, उससे पैसा कैसे लिया जा सकता है, यह मेरी समझ में नही आता। तन देने की जरूरत मैं समझ सकती हूँ। तन दे सकूँगी, शायद वह अनिवार्य हो। पर लेना कैसे ? दान स्त्री का धर्म है।" अतः त्यागपत्र में पति के अतिरिक्त अन्य पुरुष के साथ सम्बन्ध रखने वाली मृणाल के प्रति घृणा का भाव पाठक के हृदय में उत्पन्न नहीं होता, बल्कि प्राकृतिक स्त्री–पुरुष के शारीरिक सम्बन्धों की महत्ता जानते हुए, समाज एवं सामाजिक मर्यादा को अनुभूत करते हुए एवं पति की क्रूरता को प्राप्त करने वाली मृणाल के प्रति करूणा का भाव ही उत्पन्न होगा। प्रमोद भी, इसी भावना के कारण अपने जज पद से त्यागपत्र देने के लिए विवश होता है।

त्यागपत्र कथ्य, शिल्प एवं शैली की दृष्टि से आधुनिक उपन्यास है। इसमें जैनेन्द्र जी ने मृणाल के चरित्र के माध्यम से नारी की संवेदनाओं को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया है। डॉ॰ अतुलवीर अरोड़ा ने भी अपने विचार व्यक्त करते हुए बताया है– "यह उपन्यास अपनी प्रभावान्विति में एक नारी की पीड़ा–गाथा बन सका है। जैनेन्द्र ने मृणाल के चरित्र को जिस ढंग से प्रस्तुंत किया है उसे देखकर ऐसा लगता है कि मृणाल किसी पहेली से कम नहीं है। मृणाल का लालन–पालन अपने भाई–भाभी के यहाँ हुआ है। जीवन में कभी किसी से उसे स्नेह नहीं मिला। अतः आरंभ से ही वह अतृप्त रही। अतः आत्मपीड़ा ही उसके जीवन का अंग बन गई और वह चुपचाप अनेक विपत्तियों को सहन करती है। प्रेम की गरिमा तथा आत्मगौरव बनाये रखने के लिए घर से अकेली निकल पड़ती है। उसे अपने निजत्व को पति की दासी बने रहने से मिटा देना स्वीकार नहीं था और मौन रहकर अनेक संकटों को झेलकर अंत में मृत्यु प्राप्त कर लेती है। अपनी बुआ की मृत्यु के समाचार सुनकर प्रमोद विरक्त हो जाता है और त्यागपत्र दे देता है मृणाल का आत्मपीड़न में अपने आपको समाप्त कर देना तथा प्रमोद का त्यागपत्र देना–इन घटनाओं से उपन्यास को आधुनिक सन्दर्भ प्राप्त हो जाते हैं। प्रमोद का त्यागपत्र वर्तमान न्याय व्यवस्था और आचार व्यवस्था के लिए एक बहुत बड़ा प्रश्न चिन्ह है। प्रमोद ने अपने जज पद के त्यागपत्र से एक बहुत बड़ी नकारात्मक स्थिति को प्रस्तुत किया है और प्रश्न उपस्थित कर दिया है कि क्या प्रमोद के त्यागपत्र से या मृणाल के आत्मपीड़न से सामाजिक व्यवस्था में कोई परिवर्तन आ जायेगा ? या समाज को कोई नई दिशा मिलेगी ?

वास्तव में जैनेन्द्र ने सामाजिक विषमता को वैयक्तिक प्रेम–बिन्दुओं पर विसर्जित कर दिया है फिर भी यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि नकारात्मक स्थितियों को दिखाने के बावजूद यह उपन्यास आधुनिक सन्दर्भों के साथ जुड़ा हुआ है। क्योंकि आधुनिकता के दौर में वैयक्तिक स्वंतत्रता के समय में भी एक संवेदनशील नारी को अपनी सच्चरित्रता की कीमत आत्मपीड़ा के रूप में चुकानी पड़ती है– यह आधुनिक जीवन की जटिलता है। अर्थात् यह उपन्यास जीवन के ब्रह्मजाल से जुड़ा हुआ है।

त्यागपत्र में जैनेन्द्रजी ने आधुनिक जीवन की जटिलता को जिस कुशलता से संघटित किया है, वे भी उपन्यास को आधुनिक रूप देने के लिए जिम्मेदार हैं। डा॰ लक्ष्मीशंकर वार्ष्णेय का मानना है– "इन परिस्थितियों के प्रस्तुतीकरण में एक ऐसी करूण उदास भावना का समावेश हो गया है, जो पूरे कथ्य में प्रवाह तो उत्पन्न करती है, साथ ही साथ बिखरे हुए सारे सन्दर्भों को गुंजित भी करती है।"

परंपरागत नारी जीवन की करूण गाथा को एक नये दृष्टिकोण से प्रस्तुत करना, वैयक्तिक प्रेम बिन्दुओं पर सामाजिक समस्याओं को विसर्जित करना, बिखरे कथानक के द्वारा एक करूण भावना का मार्मिक प्रकटीकरण तथा आत्मपीड़ा के चिंतन के माध्यम से आधुनिक जीवन की समस्याओं को झेलने का संकेत देना ये सब प्रवृत्तियाँ 'त्यागपत्र' को एक सशक्त आधुनिक उपन्यास के रूप में स्थापित करती हैं।

'त्यागपत्र' की संक्षिप्त वस्तु–योजना के जो प्रारंभिक आयाम हैं, उनसे पता चलता है कि मृणाल एक मातृ–पितृहीन बालिका है। अतः स्वभावतः वह स्नेह–वंचिता है। मनोवैज्ञानिक और मनोविश्लेषक स्वीकार करते हैं कि

इस प्रकार के बालक स्वभावतः अनेक प्रकार की ग्रंथियों या कुंठाओं के शिकार हो जाया करते हैं। स्नेह–वंचिता मृणाल को अपने भाई–भाभी से भी वह प्यार–स्नेह नहीं मिल पाता कि जिसकी वह भूखी एवं एकांत आकांक्षिणी हैं। बदले में उसे अपनी भाभी से तो पूर्णतया उपेक्षा, प्रताड़ना, प्रवंचना और बेंतों से पिटाई ही मिलती है। सामाजिक एवं आयुगत बंधनों के कारण भतीजा प्रमोद भी वह सब नहीं दे पाता, जो वह चाहती है। उसे अपनी चाहों की पूर्ति का आलोक शीला के भाई और मृणाल के समवयस्क युवक में दिखाई देता है, पर भाभी की मध्यवर्गीय मर्यादावादिता के कारण वह वहाँ तक पहुँच नहीं पाती। बुरी तरह झिड़क और उस संबंध से तोड़ दी जाती है। टूटने के उन क्षणों में जो अपरिचित सहारा पति के रूप में उसे प्राप्त होता है, चाहे वह समझौते की दृष्टि से उसे सब पूर्व–घटित बताकर सच्ची बनी रहना चाहती है, पर वस्तुतः मनोविज्ञान के स्तर पर यह उसका वर्तमान के विद्रोह और अस्वीकृति का ही सूचक है। शैशव काल के सुकुमार क्षणों से ही प्रेम–वंचिता होने के कारण उसके मन में जो ग्रंथि बैठ चुकी है, उसका एक प्रकार का विस्फोट है, जो उसे तब तक तो क्या आगे भी चैन नहीं लेने देता। अपनी उसी बेचैनी से ही उसके जीवन की समस्त आगामी आक्रोशमयी और विद्रोहमयी गतिविधियाँ परिचालित होती हैं। नितांत मनोविज्ञान स्तर पर कहा जा सकता है कि शैशव काल के क्षणों में ही स्नेह–वंचित बालक या व्यक्ति हठी भी हो जाया करता है, सो मृणाल में भी हठ का विस्फोट इस सीमा तक होता है कि वह प्रमोद के उसे लौटा लाने के समस्त प्रयासों पर अपनी हठवादिता के तर्कजाल से पानी फेरती जाती है। वस्तुतः वह अपने–आप को नितांत अकेली और शेष सारे संसार को अपना प्रतिद्वंद्वी मान बैठती है। परिणामतः, अपनी हठी अस्मिता में प्रतिद्वंद्वियों को तोड़ने के स्थान पर स्वयं ही टूटती जाती है।

दमित–वासना या कार्य, स्वत्व–बोध और उसकी स्वीकृति का प्रश्न, मनोविज्ञान के स्तर पर व्यक्ति को अधिकाशः संघर्ष की राह पर भी डाल दिया करता है। मृणाल भी संघर्ष की राह चलती है। पर यह बात किसी भी स्तर पर, किसी भी दोष से समझ नहीं आ पाती कि पढ़ी–लिखी एवं समझदार होने पर भी मृणाल अनवरत आत्मघात के रास्ते पर ही क्यों बढ़ती जाती है। उपन्यासकार ने उसे संघर्ष के किसी स्वीकृत और प्रशस्त राह पर ही चलाया है ? वह अपने कारण से एक के बाद एक आत्मघात का पथ क्या अपनाती जाती है ? इन प्रश्नों का एक ही उत्तर हमारी समझ में आता है और वह है, मनोवैज्ञानिक स्तर पर, अभावजन्य हठवादिता, जिसका मृणाल के व्यक्तित्व में इस सीमा तक हो जाता है कि वह प्रमाण को समस्त वापसी के प्रयासों को सघन कुहासों वाले व्यर्थ के दार्शनिक तर्कों से निरस्त करती जाती है। परिणामतः मनोविज्ञान और मनोविश्लेषण के स्तर पर 'त्यागपत्र' स्वस्थ जीवन और समाज के प्रति अपनी (मृणाल की) हठवादिता के कारण समूचे नकार की कहानी बनकर रह गया है।

## 7.6 सारांश

अतः निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि हिन्दी उपन्यास साहित्य को मनोवैज्ञानिक उपन्यासधारा की ओर मोड़ने वाले जैनेन्द्र का स्थान केवल मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के आरंभ कर्ता के रूप में ही नहीं बल्कि उस धारा को विकसित करने वाले एक चिंतक दार्शनिक उपन्यासकार के रूप में भी अति महत्वपूर्ण है। अक्सर मानव अपने चर्म चक्षुओं के द्वारा दुनिया की गतिविधियों को देखने में अपनी अंतरात्मा को देखना भूल जाता है उसे अन्यों के बारे में बहुत कुछ

जानकारी होती है। अपने आप में वह बहुत कुछ अनभिज्ञ होता है। जैनेन्द्र के उपन्यास मानव को अपने मन से, अपने आप से जोड़ते हैं और जब मनुष्य अपने आप को जानता है, समझता है तो उसे दुनिया को जानना, समझना बहुत आसान हो जाता है। अतः अपने अन्तर्मन के परिचय के द्वारा दुनिया और समाज को समझने में जैनेन्द्र के उपन्यास अत्यंत उपयोगी सिद्ध होते हैं। इस दृष्टि से भी जैनेन्द्र का हिन्दी उपन्यास जगत में विशिष्ट स्थान है श्रीकांत वर्मा ने भी जैनेन्द्र और उनके गद्य के सन्दर्भ में सही लिखा है– "जैनेन्द्र ने एक ऐसे गद्य की शुरूआत की जिसकी सम्भावनाएँ ही बहुत सीमित हैं। वे एक या दो जैनेन्द्र ही पैदा कर सकता है। प्रेमचन्द और भी कई हो सकते हैं– छोटे–छोटे प्रेमचन्द, लेकिन जैनेन्द्र कुमार एक ही बड़ा जैनेन्द्र कुमार होगा। अतः कहा जा सकता है कि मनोवैज्ञानिक उपन्यासधारा में जैनेन्द्र का अद्वितीय स्थान है। उनकी कलागत क्षमताओं की तुलना में अन्य कोई उपन्यासकार उनकी समता नहीं कर सकता।

## 7.7 कठिन शब्द

1. चिंतक
2. दार्शनिकता
3. विश्ष्टि
4. अद्वितीय
5. कलागत क्षमता
6. गतिविधि
7. संघर्षशील
8. नकारात्मक
9. निजत्व
10. आधुनिकता

## 7.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. हिन्दी में मनोवैज्ञानिक उपन्यासों के आरम्भ एवं विकास पर प्रकाश डालिए।

_____

_____

_____

2. हिन्दी में मनोवैज्ञानिक उपन्यासं परम्परा में 'त्यागपत्र' का स्थान निर्धारित करें।

3. हिन्दी के मनोविश्लेषणवादी उपन्यासों में जैनेन्द्र किस स्थान पर ठहरते हैं ? स्पष्ट कीजिए।

4. हिन्दी के मनोविश्लेषणवादी उपन्यासकारों में किसी एक उपन्यासकार पर टिप्पणी लिखें।

_____

_____

_____

_____

_____

## 7.9 पठनीय पुस्तकें


1. त्यागपत्र – जैनेन्द्र
2. हिन्दी उपन्यास का उद्‌भव और विकास – उमेश शास्त्री
3. नया साहित्य नये प्रश्न – डॉ० नंददुलारे वाजपेयी
4. जैनेन्द्र के उपन्यासों के नारी चरित्रों का मनोवैज्ञानिक धरातल – डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव
5. जैनेन्द्र और उनके उपन्यास – डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव
6. जैनेन्द्र : साहित्य और समीक्षा – डॉ० रामरन्न भटनागर
7. जैनेन्द्र : व्यक्तित्व और कृतित्व – सं० सत्यप्रकाश मिलिन्द
8. जैनेन्द्र के उपन्यास : मर्म की तलाश – डॉ० चन्द्रकान्त बांदिवडेकर
9. जैनेन्द्र और नैतिकता – ज्योतिष जोशी
10. जैनेन्द्र के उपन्यासों की विवेचना – डॉ० विजय कुलश्रेष्ठ
11. जैनेन्द्र के उपन्यासों में नारी की कल्पना – डॉ० अन्नपूर्ण सिंह
12. समकालीन हिन्दी उपन्यास की भूमिका – डॉ० रणवीर रांग्रा


******

# त्यागपत्र के पात्र

**8.0 रूपरेखा**

**8.1 उद्देश्य**

**8.2 प्रस्तावना**

**8.3 त्यागपत्र के पात्र**

**8.3.1 मृणाल**

**8.3.2 मृणाल की भाभी**

**8.3.3 प्रमोद**

**8.4 कठिन शब्द**

**8.5 अभ्यासार्थ प्रश्न**

**8.6 पठनीय पुस्तकें**

## 8.1 उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरान्त आप जानेंगे –

- जैनेन्द्र का 'त्यागपत्र' एक चरित्र प्रधान उपन्यास है।
- 'त्यागपत्र' उपन्यास एक नायिका प्रधान उपन्यास है।
- मृणाल के व्यक्तित्व ने पाठकों के हृदय को ही नहीं द्रवित किया अपितु पुरातन विचारों एवं पुराने मूल्यों को भी झकझोरा है।

## 8.2 प्रस्तावना

कहानीकार और उपन्यासकार के रुप में जैनेन्द्र का उदय वास्तव में प्रेमचन्द युग में ही हो गया था, जबकि उनकी औपन्यासिक चेतना का सम्यक् विकास उनके बाद ही हो पाया है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में जैनेन्द्र को मनोवैज्ञानिक एवं मनोविश्लेष्णात्मक औपन्यासिक–विद्या का जनक् उत्प्रेरक और प्रवर्त्तक भी स्वीकारा जाता है।

## 8.3 त्यागपत्र के पात्र

जैनेन्द्र का 'त्यागपत्र' एक चरित्र प्रधान उपन्यास है। उपन्यास की रचना मृणाल के चरित्र के माध्यम से नारी की सामाजिक स्थितियों भिन्न प्रश्नों और समस्याओं के अध्ययन को लक्ष्य बनाकर है। अतः इसमें मृणाल ही मुख्य पात्र है, जबकि उसे सामाजिक वैषम्यों की विरोधीपात्र की भूमिका निभानेवाली कहा जा सकता है। दूसरा पात्र है प्रमोद, जो वास्तव में सब कुछ का दृष्टा और प्रवक्ता ही अधिक है। तीसरा पात्र मृणाल की भाभी है जिसके माध्यम से लेखक ने परम्परावादी नारी का चित्रण किया है।

### 8.3.1 मृणाल

उपन्यासकार ने परित्यक्त वर्ग की नायिका मृणाल को अपनी करुणा का सहारा देकर उसे एक सुकुमार व्यक्तित्व प्रदान किया है। मृणाल के व्यक्तित्व ने पाठकों के हृदय को ही नहीं द्रवित किया अपितु विचारों एवं पुराने मूल्यों को भी झकझोरा है।

**सरल, भोली, नटखट बालिका के रूप में :**

आत्मपीड़ा के सिद्धान्त की निदर्शक मृणाल का चरित्र गतिशील पात्र के व्यक्तित्व में होने वाले परिवर्तन का ज्वलंत चित्र है। परी जैसे रूपवाली मृणाल बचपन में हँसमुख स्वभाव वाली निर्द्वंद्व बालिका है, जिसकी पढ़ने में विशेष रुचि नहीं, पर जिसे स्कूल जाने का चाव है और जो अपनी किताब–कापियाँ सहेज कर रखती है। इस सरल बालिका के मन में कोई दुराव–छिपाव नहीं, वह अपने से पाँच–छह वर्ष छोटे भतीजे प्रमोद पर अपना लाड़ बिखेरती है–उसे कपड़े पहनाती है, खाना खिलाती है, प्यारभरी बातें सुनाती है और कभी–कभी मीठे उपदेश देती है। शरारतें करने में कुछ कम नहीं, अपनी सहपाठिनों के साथ मिलकर स्कूल में नई–नई शरारत करती है और स्कूल से लौटने पर बड़े चाव से प्रमोद को अनेक विषयों के बारे बताती है। उसे भय है तो केवल अपनी भाभी का जो अनुशासनप्रिय है और उसे प्राचीन आदर्शों के अनुरूप ढालना चाहती है।

**दृढ़ संकल्प एवं सच्चाई की मूर्ति :**

मृणाल प्रारम्भ से ही दृढ़ संकल्प वाली नारी है। जो कुछ निर्णय कर लेती है वही करके छोड़ती है, "मृणाल का कौल झूठ नहीं होता।" झूठ वह बोल ही नहीं सकती। चाहती तो अपने पूर्व–प्रेम को छिपा सकती थी, पर ऐसा न कर पाई और जीवन–भर प्रताड़ना सहती है– "मैं छल नहीं कर सकती। छल पाप है। .....ब्याहता को पतिव्रता होना

चाहिए ..... पति के प्रति सच्चा होना चाहिए।" वह नहीं जानती है कि पाप क्या है, लेकिन स्वाभाविकता को पाप मान–कर पीड़ित होती रहती है। अन्तर में व्यथा जगाने वाले इस पाप–बोध से छुटकारा पाने के लिए वह शीला के भाई के पत्र की चर्चा अपने पति से करती है। किन्तु सहानुभूति की अपेक्षा शारीरिक और मानसिक यातना ही पाती है। उसका पति उसके द्वारा कही गई सच्चाई को स्वीकार नहीं करता अपितु घृणा एवं नफरत के कारण मृणाल को घर से निकाल कर एक कोठरी में ले जाकर छोड़ देता है। परिणामतः उनका दाम्पत्य प्रेम टूट जाता है। इस पीड़ा से उसका छिपा पाप बोध नया दृष्टिकोण लेकर उभरता है। वह धर्म की ओर नारी जीवन का अनोखा आदर्श प्रस्तुत करती है।

**समाज सेविका के रूप में :**

उपन्यास में प्रेम के उदात्त रुप को मृणाल की मानव सेवा के द्वारा दिखाया है। मृणाल जिस मानव समाज के द्वारा प्रताड़ित होती है उसी मानव समाज के प्रति सद्‌भाव रखकर मानव सेवा करना चाहती है। वह कहती है– "जिन लोगों के बीच बसी हूँ, वे समाज की जूठन हैं और कौन जानता है कि वे जूठन होने योग्य भी हैं नहीं हैं। लेकिन आखिर तो इन्सान हैं और बात जबकि उनके बीच आ पड़ी हूँ, मैं साफ देखती हूँ। मैं किसी भी और बात पर अब जिन्दा नहीं रहना चाहती हूँ। उनकी बुझती और जगती इन्सानियत के भरोसे ही रहना चाहती हूँ।" त्याग और निःस्वार्थता से भरा मृणाल का प्रेम, प्रेम की उदात्तता का ही अनुभव कराता है।

**सनकी व्यक्तित्व :**

मृणाल उपन्यास की सनकी व्यक्तित्व वाली स्त्री है जिसके जीवन में प्रेम का अभाव है। बचपन से ही माता–पिता के प्रेम से वंचित मृणाल भाभी के कठोर अनुशासन में पलती है परिणामतः परिस्थितियों की प्रतिक्रिया स्वरुप उसके व्यक्तित्व में चंचलता पैदा हो जाती है इसी चंचलता के कारण वह शीला के भाई से प्रेम करने की बात सुनते ही चिड़िया की तरह उड़ने की कल्पनाएँ करने लगती है परन्तु भाभी द्वारा बेंत से पीटे जाने पर और दुजवर से विवाह कर दिये जाने पर मृणाल परिस्थितियों के प्रति विशिष्ट मनोभावों को लेकर प्रतिक्रिया आरंभ कर देती है। इसी प्रतिक्रिया स्वरुप वह सोचती है, "ब्याहता को पतिव्रता होना चाहिए। उसके लिए पहले उसे पति के प्रति सच्ची होना चाहिए। सच्ची बनकर ही समर्पिता हुआ जा सकता है।" परन्तु उसका अत्याचारी पति मृणाल की सच्चाई जानकार उसका परित्याग करता है परिणामतः पति से ठुकराई, भाई–भाभी से ठुकराई गई मृणाल समाज की नज़रों में दुश्चरित्र बन गई। मृणाल भी परिस्थितियों के प्रति प्रतिक्रिया के रुप में आत्मदमन और स्वपीड़न के भावों को स्वीकार कर लेती है और उस समाज में पहुँच जाती है जहाँ नैतिकता सच्चरित्रता अथवा झूठ का दावा नहीं करना पड़ता। मृणाल व्यक्तित्व दमन से परिपूर्ण है इसलिए एक कमज़ोर, सनकी व्यक्तित्व का रुप लेकर हमारे सामने दिखाई देती है। वास्तव में मृणाल का जीवन सामाजिक पीड़ा की गाथा है, जिसमें दबकर मृणाल चुपचाप मर जाती है। परन्तु मृणाल की वैयक्तिक चेतना, उसके मन में जलने वाली प्रेम की ज्योत के कारण वह पाठकों की सहानुभूति प्राप्त करने में भी सफल रहती है।

**स्त्रीत्व के भाव से परिपूर्ण :**

जैनेन्द्र के उपन्यासों में चित्रित नारी पहले स्त्री है, बाद में पत्नी या प्रेयसी क्योंकि जहाँ उनके स्त्रीत्व का या नारी धर्म का प्रश्न आता है तो वे अपने स्त्रीत्व को प्रधानता देती हुई दिखाई गयी है। जैनेन्द्र की विचाराधारा थी "स्त्रीत्व को खोकर स्त्री अपनी सही सार्थकता कभी प्राप्त नहीं कर सकेगी।" मृणाल भी स्त्रीत्व को प्रकट करती हुई पतिव्रत धर्म निभाने में ही अपना सर्वस्व मानती है इसके लिए वह पति से किसी भी प्रकार की अपेक्षा भी नहीं रखती क्योंकि उसका मानना है– "दान स्त्री का धर्म है। नही तो उसका और क्या धर्म है? उससे मन माँगा जाएगा, तन भी माँगा जाएगा। सती का आदर्श और क्या है।" तन देने के कारण मृणाल समाज की दृष्टि से पापिष्ठा और पतित कहलाती है, फिर भी स्त्रीत्व की विशेष गरिमा के कारण पाठकों की नज़रों में गिर नहीं जाती क्योंकि वह हमेशा मानती थी कि, "ब्याहता को पतिव्रता होना चाहिए। उसके लिए पहले उसे पति के प्रति सच्ची होना चाहिए। सच्ची बनकर ही समर्पित हुआ जा सकता है।

**स्वाभिमानी एवं स्वच्छंद नारी :**

स्वाभिमान और स्वच्छंदता मानव व्यक्तित्व के ऐसे गुण हैं, जो सही दिशा में हों तो व्यक्ति का विकास करते हैं अन्यथा उसे पतन की ओर ले जाते हैं। लेखक ने इन दोनों गुणों से युक्त नारी चरित्र मृणाल में इस बात को सिद्ध कर दिया है। मृणाल अपने स्वाभिमान के कारण पतित बनना स्वीकार करती है, परन्तु पतिव्रता के नाम पर पति पर बोझ बनना नहीं चाहती। अपनी इसी स्थिति को व्यक्त करती हुई वह कहती है, "पति को मैंने नहीं छोड़ा। उन्होंने मुझे छोड़ा है। मैं स्त्री धर्म ही मानती हूँ। उसका स्वतन्त्र धर्म मैं नहीं मानती हूँ। क्यों पतिव्रता को यह चाहिए कि पति उसे नही चाहता, तब भी यह अपना भार उस पर डाले रहे? मुझे देखना भी नहीं चाहते, यह जानकर मैंने उसकी आखों के आगे से हट जाना स्वीकार कर लिया।"

**असफल विवाह से उत्पन्न पीड़ा को झेलती नारी :**

अनमेल विवाह, पति की कठोरता और शंकालु प्रवृति के कारण मृणाल का जीवन नारकीय बन गया। उसने आत्महत्या का प्रयत्न भी किया पर सफल न हो पाई। असफल विवाह के कारण उसकी मति भ्रष्ट हो गई। वह स्वयं नहीं जानती थी कि क्या कर रही है और उसका परिणाम क्या होगा? मृणाल में निरंतर दुखों के कारण एक क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित होता है। यह परिवर्तन सहज और सामान्य प्रतीत नहीं होता। इसके पीछे लेखक का आत्मपीड़ा का दर्शन अधिक है। यह सच है कि वह प्रारम्भ से ही भावुक और सहिष्णु थी, दूसरों के लिए पीड़ा सहना उसकी मूल प्रवृत्ति थी। शीला के अपराध को स्वयं ओढ़कर बेंत खाना इसका प्रमाण है। बाद में गुप्त प्रेम का भंडा फोड़ होने पर भाभी से मार खाते समय उफ न करना और गुमसुम पड़े रहना भी उसकी सहनशीलता का परिचायक है। ये दोनों प्रसंग सहज विश्वसनीय हैं। पर आगे चलकर जिस भावुकता और सहनशीलता का परिचय मृणाल देती है, वह आरोपित लगता है, उस पर सहज ही विश्वास नहीं होता। अपने पति का घर छोड़ बनिये के घर में रहना अपनी इच्छा के विरुद्ध तन

को सौंप देना, उसके बच्चे की माँ बनना और बेटी की मृत्यु का सदमा सहकर वेश्या बस्ती में रहना उसकी मौन पीड़ा को दर्शाता है। कोयले वाले के साथ अपवित्र सम्बन्ध को अपना पतिव्रत धर्म मानती है जो सामाजिकता की दृष्टि से अनैतिक कर्म माना जाता है। लेकिन मृणाल मानवीय करुणा के कारण अपने आपको समर्पित करती है। जिसे अनैतिक आचरण नहीं माना जा सकता।

**आस्थावान नारी :**

ईश्वर में मृणाल की अपार आस्था है। वह भगवान को अपना एकमात्र आसरा मानती है। "भगवान सर्वान्तर्यामी है, सर्वशक्तिमान हैं। मुझे कोई और आसरा क्यों चाहिए....."ईश्वर में अगाध विश्वास होने के कारण ही वह ईसाईयों के लाख फुसलाने पर भी धर्म परिवर्तन के लिए सहमत नहीं होती।

**स्वावलंबी :**

स्वाभिमान और स्वावलम्बन का भाव उसमें आरम्भ से ही होता है। प्रमोद के बार–बार आग्रह करने पर भी उसका स्वाभिमानी स्वभाव उसे पिता के घर नहीं लौटने देता, पति द्वारा त्यागे जाने पर वह अपना भार स्वयं उठाती है, कोयले वाले से कुछ पाती नहीं, अपितु हजार–बारह सौ रुपये उसे देती ही है। उसके भाग जाने पर वह नए नगर में अध्यापिका बन तथा बच्चों की ट्यूशन कर अपने लिए पर्याप्त कमा लेती है। संतोषी स्वभाव की मृणाल अपने कार्य, स्वभाव, आचरण, मधुर भाषण और परोपकार–भाव से सबको प्रसन्न रखती है।

**मानवतावाद की स्थापना :**

'त्यागपत्र' में उपन्यासकार मृणाल के माध्यम से मानवतावाद का दर्शन कराता है। जिसमें मनुष्य के लिए मनुष्य का प्यार, हमदर्दी बाकी है, बची हुई है। त्यागपत्र की नायिका मृणाल समाज के कारण, उसकी मान्यता एवं तथा–कथित रुढ़िवादिता के कारण अपना जीवन तबाह कर देती है, फिर भी उसके हृदय में मानव के लिए घृणा नहीं बल्कि प्रेम और सहानुभूति ही रहती है। इसलिए पतित लोगों के बीच रहकर वह अनुभव करती है– "मुझको ऐसा अनुभव हो रहा है इन लोगों में, जिन्हें दुर्जन कहा जाता है, कई तह पार कर वह तह भी रहती है कि उसको छू सको तो दूध–सी श्वेत सद्भावना का स्त्रोत फूट निकलता है। इससे यह प्रतीति मेरे लिए उतनी कठिन नहीं रह गयी कि सबके अभ्यन्तर में परमात्मा है और वह सर्वान्तर्यामी है।" "त्यागपत्र" की मृणाल के जीवन संघर्ष को दिखाकर वे शायद मानवतावाद की स्थापना करना चाहते थे क्योंकि उनका मानना था– "माना जीवन युद्ध है और संघर्ष है। पर वह प्रक्रिया ही है, सार और अभिप्राय नहीं है। सार और अर्थ जीवन का है प्रेम अर्थात् प्रेम को मन के गहरे में रखकर जो युद्ध और संघर्ष करता है, वही टिका रह जाता है। वह ऐसा योद्धा है जो कभी थकता नहीं, हारता नही। जिसे मुंह मोड़ने की कभी जरूरत नहीं होती। जिसकी पराजय नहीं, क्योंकि सामने वाले की पराजय वह चाहता नहीं।" जैनेन्द्र जी ने अपनी इसी विचारधारा के आधार पर पात्रों के जीवन–संघर्ष को दिखाया है, जिसका मूलाधार प्रेम तथा अन्य मनुष्य को सुखी बनाने की कामना ही है ।

मृणाल में स्वाभिमान है, जीवन के प्रति गहरी आस्था है समाज के आदर्शों के प्रति आत्मत्याग की भावना है और है सहारा देने वाले पुरुष के प्रति नारी सुलभ सुकुमार तथा निःशब्द समर्पण। वह समाज के काम–धुंध भग्न मन्दिर में नारीत्व की मूर्ति सजाकर स्नेहदीप के प्रकाश में पत्नीत्व का नया अर्थ दिखाती है।

### 8.3.2 मृणाल की भाभी

मृणाल की भाभी तथा प्रमोद की माँ का नाम नहीं बताया गया है। न लेखक और न उपन्यास का कोई पात्र उसका नाम लेता है। मृणाल भी प्रमोद के साथ बात करते समय यदि आवश्यकता होती है तो उसे 'तेरी माँ' कहकर उसकी चर्चा करती है।

**कुशल गृहिणी :**

मृणाल की भाभी अत्यंत कुशल गृहिणी थीं; वह बहुत अनुशासनप्रिय भी थीं और उन्हें इस बात की बड़ी चिंता रहती थी कि उनके संरक्षण में पल रही लड़की उनके आदर्शों पर चले, सुघड़ गृहिणी बने। प्रमोद स्वयं कहता है, "माँ जितनी कुशल थीं, उतनी कोमल नहीं थीं।" उन्हें सदा भय रहता था कि भाई का स्नेह मृणाल को बिगाड़ न दे। यही कारण है कि वह मृणाल की प्रत्येक गतिविधि को बड़ी बारीकी से देखती थी। इसी सावधानी एवं सतर्कता का परिणाम था कि मृणाल का प्रेम–संबंध शीघ्र ही प्रकट हो गया।

प्रमोद के पिता की मृत्यु के बाद जिस प्रकार उन्होंने घर– गृहस्थी सँभाली, लड़के को शिक्षा दी, उसके विवाह आदि का प्रबंध किया, उससे भी उनके कुशल गृह–प्रबंधक होने का परिचय मिलता है। वह झूठी शान से बचती थीं, सोच–विचार कर तथा फूँक–फूँक कर कदम रखती थीं और अपने पुत्र के विषय में बड़ी–बड़ी आशाएँ रखती थीं। सामान्य माँ की तरह बेटे का विवाह शीघ्र करना चाहती थीं, पर ऐसी दुराग्रही भी नहीं थीं कि पुत्र की इच्छा के विरुद्ध उसका विवाह तय कर दें या उस पर बेहद दबाव डालकर विवाह कर दें।

**परंपराप्रिय :**

सामान्य हिन्दू परिवार की महिलाओं के समान उनके विचार, मान्यताएँ, धारणाएँ पुरानी एवं परंपरागत थी। वह स्वच्छंद प्रेम को बुरा मानती थी। उसी विवाह को आदर्श मानती थीं जो माता–पिता द्वारा निश्चित किया जाए। लड़की का समय पर स्कूल से घर लौटना और घर का कामकाज करना उनकी दृष्टि में लड़की की सुशीलता का मापक था। उन्होंने तनिक–सा संदेह होते ही मृणाल का स्कूल जाना बंद कर दिया और उस घटना के बाद पाँच–छह महीने के भीतर ही मृणाल का विवाह कर दिया। इस तत्परता में उन्होंने वर की पात्रता भी नहीं देखी और एक बड़ी उम्र के दूहाजु से विवाह कर दिया।

**अनुशासनप्रिय :**

मृणाल की भाभी का अनुशासन कठोरता की सीमा को स्पर्श करता है। यह ठीक है कि मृणाल से अपराध

हो गया था; उसे शीला के भाई से प्रेम नहीं करना चाहिए था, पर वह ऐसा बड़ा अपराध भी नहीं था कि फूल–सी सुकुमार लड़की को बेंत से तड़ातड़ पीटा जाए, यह ठीक है कि मृणाल को मारते समय उन्हें मानसिक कष्ट हुआ था, "उनका चेहरा राख से पुत गया था, ऐसा लगता था कि माँ अगले क्षण अपने को ही बेंत से न उधेड़ने लगे। मानो अपने को ही मार रही है, उन पर बहुत जोर पड़ रहा है।" पर कुल मिलाकर वह कठोर अधिक प्रतीत होती है।

**भीतर से कोमल :**

अनुशासनप्रिय और अपने परंपरागत विचारों के कारण मृणाल की भाभी कठोर प्रतीत होती हैं , पर उपन्यास में ऐसे संकेत भी हैं जिनके द्वारा लेखक ने उनके मन की कोमलता की झाँकी भी प्रस्तुत की है। मृणाल को पीटने के तुरंत बाद उनकी शारीरिक और मानसिक स्थिति, उस घटना के चार–पांच दिन बाद उनका बेटे को काम–बेकाम डाँटना–फटकारना, नौकरों को झिड़कियाँ सुनाना, बीच–बीच में बड़बड़ाना और अस्फुट भाव से कुछ कहना तथा यकायक फट पड़ना– सब उनके मन के संताप को व्यक्त करते हैं

मृणाल के ससुराल से लौट आने पर और पति के व्यवहार की शिकायत करने पर उनका मन मृणाल के प्रति पसीज उठता है। वह मृणाल के पति को काफी सर्द–गर्म कहती हैं। उन्हें अपराध–बोध है कि उन्होंने मृणाल के लिए उपयुक्त वर नहीं खोजा। अगली बार जब मृणाल ससुराल जाती है और उनके पैर छूती है तो उनका मन द्रवित हो उठता है, वह उसे कंठ से लगाती हुई कहती हैं, "मिनी, मैं जल्दी बुलाऊँगी!" मृणाल को गद्‌गद कंठ से आशीर्वाद देना भी उनके हृदय की कोमलता का परिचायक है।

सारांश यह है कि मृणाल की भाभी एक कुशल गृहिणी, अनुशासनप्रिय, परंपरागत विचारों वाली सामान्य हिन्दू स्त्री है, जो बाहर से कठोर होते हुए भी हृदय से कोमल है।

### 8.3.3 प्रमोद

जैनेन्द्र कुमार व्यक्ति के मन का संघर्ष दिखाने वाले कलाकार हैं। अतः उनके उपन्यासों के पात्र मानसिक संघर्षों में व्यक्त होते हैं। कभी सरल, स्वच्छ, परिचित लगने वाले पात्र व्यक्तित्व की जटिल संवेदनाओं के कारण कभी कमजोर और सनकी दिखाई देते हैं। जैनेन्द्र कुमार ने ऐसे पात्रों का निर्माण कर आधुनिक जीवन की जटिलता को व्यक्त किया है। साथ ही साथ चेतना की महत्ता को भी स्थापित किया है।

प्रतिष्ठावान पिता तथा परंपराप्रिय कुशल गृहिणी का बेटा प्रमोद एक सुंदर, सुशील, भावुक मन एवं सुशिक्षित व्यक्ति है। लेखक ने उसके माध्यम से बाल एवं किशोर मन का जो विश्लेषण किया है, वह हिन्दी–उपन्यास के इतिहास में उल्लेखनीय है।

उपन्यास का प्रमोद एक साधारण व्यक्तित्व वाले पुरुष पात्र के रुप में चित्रित किया गया है। नायिका मृणाल का भतीजा है, जो अपनी बुआ से बहुत प्रेम करता है। मृणाल के जीवन की दुर्दशा को देख पछताने हेतु अपनी जजी से त्यागपत्र देता है।

प्रमोद के चरित्र का विश्लेषण निम्नाकिंत बिन्दुओं के अर्न्तगत किया जाएगा।

**स्नेही व उत्साही बालक :**

प्रमोद को अपनी बुआ मृणाल से, जो उम्र में उससे केवल 5 वर्ष बड़ी है– आगाध स्नेह है। मृणाल उसकी बड़ी बहन भी है और साथिन भी। वह संरक्षिका की तरह सम्मान देता है और मित्र की तरह अपने नटखटपन से तंग भी करता है। मृणाल के लिए सब–कुछ करने को तैयार रहता है। बच्चे में जो कुछ कर दिखाने की उत्सुक्ता होती है, वह प्रमोद में आरंभ से ही विद्यमान है। वह मृणाल का संदेश शीला के भाई के पास तत्परता से पहुँचाता है, बाजार से दवा ला देता है, उसकी तबीयत खराब होने पर उसकी सेवा के लिए उत्सुक रहता है वह मृणाल से अभिमानपूर्वक कहता है कि "वह बच्चा नहीं, वह दुख देने वाले की खबर ले सकता है और उसके रहते फूफा उसे जबरदस्ती नहीं ले जा सकते।" बुआ के पिटने का संकेत पाते ही वह सुन्न रह जाता है। पिता और पति, दोनों घरों में मृणाल को कष्ट में देख उसका मन रो उठता है। मृणाल के पति के घर जाते समय फूट–फूट कर रोता है मचल कर कहता है। "मैं बिना बुआ के अन्न–जल ग्रहण नहीं करूँगा" पर मृणाल का आँसू–भीगा मुखदेख उसका हठ गल जाता है। बुआ के मुख से मौत की बात सुन वह क्षुब्ध हो उठता है, साथ ही स्पर्धा– भाव से कहता है कि वह आसानी से मर सकता है । वह मृणाल को आश्वासन देता है कि बड़ा होने पर वह खूब धन कमाएगा, उसकी खूब सेवा करेगा और उसे कोई कष्ट न होने देगा।

मृणाल का आंतरिक कष्ट समझने और अपनी विवशता के कारण ही वह फूफा के साथ अशोभनीय व्यवहार करता है। उसके मन की कुंठा और व्यथा ही उससे ऐसा आचरण कराती है, वह उनके सामने छाती निकालकर चलता है, उन्हें चिढ़ाने के लिए झूठ बोलता है कि वह फेल हो गया है, दुअन्नी देने पर कहता कि वह स्वयं उन्हें दुअन्नी दे सकता और जब इस उत्तर पर फूफा झेंपते हैं, तो उसे आंतरिक संतोष एवं प्रसन्नता होती है।

मृणाल के प्रति उसका यह स्नेह आजीवन बना रहता है। वह बार–बार उसे उस नर्क–कुंड से निकालने का प्रयास करता है, जिसमें वह जा गिरती है। यह सत्य है कि वह सफल नहीं हो पाता, पर इसके लिए मृणाल और उसका हठ उत्तरदायी है।

**महत्वाकांक्षी नवयुवक :**

प्रमोद अपनी माँ के सपनों को साकार करने के लिए आरंभ से उद्योग करता है। पढ़ने–लिखने में अच्छा है, अपनी कक्षा में प्रथम आता है, बड़ी लगन से पढ़ता है और वकील बनता है। बड़ा बनने का चाव शुरू से था, "मैं बी.ए. में पढ़नेवाला युवक उच्च विचारों में रहता था, उच्चता की तरफ देखता था अपने महत्व से भरा था। ..... मुझको बड़ा जो बनना था।" वकील से जज बनने का मार्ग आसान नहीं था, पर प्रमोद ने अपने परिश्रम एवं लगन से अपना लक्ष्य प्राप्त कर ही लिया। चारों, तरफ प्रतिष्ठा की बाड़ खड़ी कर स्वयं को सुरक्षित बनाया।

**सदाचारी, सत्यनिष्ठ, निष्ठावान :**

प्रमोद का हृदय तो निश्छल, प्रेम एवं स्नेहपूर्ण था। वह वचन और आचरण से भी सत्य निष्ठ था। डॉक्टर साहब की लड़की राजनन्दिनी से विवाह न हो सकने का कारण उसकी सत्यवादिता ही थी। उसने अपनी बुआ के विषय में सब कुछ बता दिया, जिसके कारण राजनन्दिनी की माँ रुष्ट हो गई और रिश्ता टूट गया। यदि चाहता तो छिपा सकता था, पर उससे ऐसा न हो पाया। "मैं छल नहीं कर सकता। विवाह के लिए तो मैं छल कर ही नहीं सकता। यह जीवन–भर का संबंध है। क्या उसे झूठ पर खड़ा करना है।

**चिन्तक और आत्मविश्लेषक :–**

जैनेन्द्र की उपन्यास–कला की एक विशेषता यह है कि वह प्रायः अपने उपन्यास में एक ऐसे पात्र की सृष्टि करते हैं, जो उनके विचारों–आदर्शों का वाहक हो। 'त्यागपत्र' में प्रमोद ऐसा ही पात्र है। उपन्यास के आरंभ में ही हम उसे चिंतक की मुद्रा में पाते हैं, "नहीं भाई, पाप–पुण्य की समीक्षा मुझ से न होगी।" उपन्यास में जहाँ तहाँ संसार, उसकी गतिविधि, सत्य, अहिंसा, आत्मपीड़ा, नियति, सामाजिक प्रतिष्ठा आदि के संबंध में प्रमोद सोचता है और कुछ मन्तव्य भी प्रस्तुत करता है। वह अंतर्मुखी पात्र है, जो प्रायः आत्म–विश्लेषक होते हैं। अतः जगह–जगह पर उसे अपने दायित्व, कर्तव्य और किए गए कार्यों पर सोचते–विचारते, आपना मानसिक विश्लेषण करते पाते हैं। कभी–कभी वह आत्मालोचना करता हुआ दिखता है, "मैं अपनी व्यर्थ प्रतिष्ठा के ढूह पर बैठा हूँ। वह कृत्रिम है, क्षणिक है। हृदय वहाँ कहाँ है? यश वहाँ कहाँ है? लेकिन वही सब–कुछ मुझे ऊँचा उठाए हुए है।.... मैं अपने को खो सका हूँ, तभी सफल वकील और बड़ा जज बन सका हूँ।" इसी आत्म–चिंतन में वह अपनी त्रुटियों से अवगत हो, ग्लानि से भर उठता है, पश्चाताप करता है "क्यों बुआ की माँग मुझसे पूरी नहीं हुई ? ..... उत्तर है कि – मैं क्षुद्र था।" उपन्यास का यह अंतिम अंश प्रमोद का अंतदर्शन है, जिससे उसका आंतरिक जीवन स्पष्ट हो गया है।

इस प्रकार बुआ के प्रेम के प्रतिदान स्वरुप अंत में प्रमोद त्यागपत्र देकर आत्मग्लानि से मुक्त होने की कोशिश करता है। प्रमोद के माध्यम से ही मृणाल के जीवन की समस्त करुणा को उभारा गया है। परन्तु मृणाल के जीवन की करुणा को अपने विशिष्ट जैनेन्द्रीय चिन्तन से उभारने के प्रयास में प्रमोद का चरित्र एक साधारण पुरुष पात्र के रुप में ही चित्रित हुआ है, जो सब कुछ अनुभूत अवश्य करता है, सच्चाई को, कर्तव्य को जानता भी है लेकिन अपने चरित्र की सीमा के कारण स्थितियों को बदलने का साहस नहीं दिखा पाता।

## 8.4 कठिन शब्द

1. अनुशासनप्रिय
2. जैनेन्द्रीय
3. अनुभूत

4. वाहक

5. विश्लेषक

6. कृत्रिम

7. गृह प्रबंधक

## 8.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. 'त्यागपत्र' में चित्रित मुख्य पात्रों का चरित्र चित्रण कीजिए।

2. मृणाल का चरित्र चित्रण कीजिए।

3. प्रमोद का चरित्र चित्रण करें।

4. 'मृणाल की भाभी पुरातन एवं परम्परावादी विचारों का सुमेल है' इस कथन को स्पष्ट करते हुए मृणाल की भाभी का चरित्र चित्रण करें।

5. ''स्त्रीत्व को खोकर स्त्री अपनी सही सार्थकता कभी प्राप्त नहीं कर सकेगी' इस पंक्ति का आशय स्पष्ट करते हुए मृणाल के चरित्र को स्पष्ट करें।

6. 'त्यागपत्र' स्त्री विमर्श की बात करता है' स्पष्ट करते हुए मृणाल के चरित्र की विशेषताओं को उद्घाटित करें।

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

## 8.6 पठनीय पुस्तकें


1. त्यागपत्र – जैनेन्द्र
2. हिन्दी उपन्यास का उद्भव और विकास – उमेश शास्त्री
3. नया साहित्य नये प्रश्न – डॉ० नंददुलारे वाजपेयी
4. जैनेन्द्र के उपन्यासों के नारी चरित्रों का मनोवैज्ञानिक धरातल – डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव
5. जैनेन्द्र और उनके उपन्यास – डॉ० परमानन्द श्रीवास्तव
6. जैनेन्द्र : साहित्य और समीक्षा – डॉ० रामरत्न भटनागर
7. जैनेन्द्र : व्यक्तित्व और कृतित्व – सं० सत्यप्रकाश मिलिन्द
8. जैनेन्द्र के उपन्यास : मर्म की तलाश – डॉ० चन्द्रकान्त बांदिवडेकर
9. जैनेन्द्र और नैतिकता – ज्योतिष जोशी
10. जैनेन्द्र के उपन्यासों की विवेचना – डॉ० विजय कुलश्रेष्ठ
11. जैनेन्द्र के उपन्यासों में नारी की कल्पना – डॉ० अन्नपूर्ण सिंह
12. समकालीन हिन्दी उपन्यास की भूमिका – डॉ० रणवीर रांग्रा


******

# 'ग्लोबल गाँव के देवता' की समस्याएँ

**9.1 भूमिका**

**9.2 उद्देश्य**

**9.3 'ग्लोबल गाँव के देवता' में आदिवासियों की समस्याएँ –**

**9.3.1 आर्थिक समस्याएँ**

**9.3.2 शिक्षा की समस्याएँ**

**9.3.3 धार्मिक समस्याएँ**

**9.3.4 शोषण की समस्या**

**9.3.5 आदिवासी नारी के शोषण की समस्या**

**9.4 उपसंहार**

**9.5 अभ्यासार्थ प्रश्न**

**9.6 सहायक ग्रन्थ**

## 9.1 भूमिका

रणेन्द्र का 'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास 2009 में प्रकाशित हुआ। उपन्यास की कथा का ताना–बाना आदिवासी जीवन को केन्द्र में रखकर बुना गया है। आदिवासियों के जीवन की विभिन्न समस्याओं का चित्रण उपन्यासकार ने किया है। मात्र 100 पृष्ठों का यह उपन्यास आदिवासी जीवन की समस्याओं को पूर्ण रूप से खंगालने में प्रयासरत है।

## 9.2 उद्देश्य

- इस पाठ में आप समझ सकेंगे कि आदिवासी जीवन की क्या–क्या समस्याएँ हैं।
- इन समस्याओं का चित्रण उपन्यास में किस रूप में हुआ है ? यह जान सकेंगे।

- 'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास इस चित्रण में कहाँ तक सफल हुआ है समझ सकेंगे।

## 9.3 'ग्लोबल गाँव के देवता' में आदिवासियों की समस्याएँ

विद्यार्थियो 'आदिवासी' समुदाय युगों–युगों से जंगलों में रहता आ रहा है। यह समुदाय पूर्ण रूप से प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर रहकर अपना जीवन निर्वाह करता रहा है। यह भी सत्य है कि पौराणिक काल से ही इन्हें असुर, राक्षस, दानव आदि कहकर घृणा की दृष्टि से देखा गया और समाज से उपेक्षित रखा गया। आरम्भ से ही इनके जीवन में बाहरी हस्तक्षेप भी किया जाता रहा जिससे समय–समय पर विभिन्न तरीकों से इनका शोषण किया जाता रहा। प्रस्तुत पाठ में हम जानेंगे कि इन्हें किन–किन समस्याओं का सामना करना पड़ता है। 'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास में लेखक रणेन्द्र ने आदिवासियों की समस्याओं का चित्रण किया है। आइए इन चित्रित समस्याओं को समझने का प्रयास करते हैं। उपन्यासकार रणेन्द्र ने उपन्यास में इनके सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक पक्षों को उभारा है जिससे आदिवासियों के जीवन की विभिन्न समस्याएँ हमारे सामने उभर कर आती हैं। यह समस्याएँ हैं – अस्तित्व का संकट, आर्थिक समस्या, धर्मान्तरण की समस्या, शोषण की समस्या, शिक्षा की समस्या, संस्कृति की समस्या, चेतना और संघर्ष की समस्या, अंध विश्वास की समस्या इत्यादि।

### 9.3.1 आर्थिक समस्याएँ

मानव जीवन निर्भर है आर्थिक व्यवस्था पर लेकिन समस्या यह है कि इसके अभाव में व्यक्ति अभिशप्त जीवन जीने को विवश हो जाता है। 'ग्लोबल गाँव के देवता' में उपन्यासकार ने आदिवासियों के अभावग्रस्त जीवन का चित्रण किया है। आर्थिक तंगहाली में किस तरह ये मूलभूत आवश्यकताओं से भी वंचित रह जाते हैं। उपन्यासकार लिखता है – "देखिएगा कि मक्का की एक बरसाती फसल के भरोसे ज़िन्दगी कितनी कठिन हो जाती है।" (पृ.–13)

उपन्यासकार ने चित्रण किया है कि इलाके के सभी गाँवों में केवल दो–चार परिवार ऐसे थे जो साल भर अनाज उगा पाते अन्य तो जंगल के महुआ, कटहल और कई तरह के कन्द और साग इत्यादि खाकर ही पेट पालते – " सभी गाँवों में ऐसे साल भर अनाज उगा पाने वाले दो–चार परिवार होते। अधिकांश परिवारों के पास इतनी ज़मीन होती ही नहीं कि साल भर खाने के लिए मक्का भी मिल सके।" (पृ.–24) इनकी आर्थिक स्थिति में कहीं न कहीं सरकार भी दोषी दिखाई पड़ती है जो करोड़ों–अरबों का लाभ तो इन इलाकों से कमाती है परन्तु इनके आर्थिक विकास में किसी तरह का कोई योगदान नहीं देती। उपन्यास में इसका चित्रण हुआ है – "चाहे मुनाफ़ा करोड़ों से अरबों की ओर उछलता जा रहा हो, ये लोग पाट क्षेत्र में एक पैसा ख़र्च करने के लिए तैयार नहीं हैं।" (पृ.–62)

उपन्यास की पात्र बुधनी का चाय की दुकान करना भी आदिवासियों की आर्थिक स्थिति को दर्शाता है। खेती–बाड़ी न होने के कारण वह पति और बाल बच्चों सहित असम–भूटान निकल गयी और कई तरह के काम धन्धे किए और अब सखुआपाट में चाय की गोमटी चलाकर घर का खर्च चलाती थी। बेरोज़गारी भी इस समुदाय की समस्या है जिसके कारण इनकी आर्थिक स्थिति मजबूत नहीं हो पाती। उपन्यास का पात्र रुमझुम संस्कृत ऑनर्स होकर भी

योग्यतानुरूप नौकरी को तरसता है – "मैंने खुद कितनी कोशिश की थी। पिछले दो–तीन वर्षों से कैजुअल शिक्षक के रूप में काम करने की इच्छा है। लेकिन वहाँ भी दाल नहीं गलती।" (पृ.19) विडम्बना यह है कि गरीबी और भुखमरी इन्हें नष्ट होने से रोक नहीं सकती – "भूख और गरीबी ने अन्दर से इतना खोखला कर दिया है कि सामाजिक व्यवस्था भरभरा गयी है।" (पृ.–39) उस पर भी स्थिति यह है कि ये अपना घर द्वार छोड़ने को भी मजबूर हो गए हैं और इनकी बेटियाँ रखनी बनने को विवश हैं – "ठीक ही बात है कि घर में तीन–चार माह से ज़्यादा का अनाज नहीं हो तो कौन बेटों को गाँव छोड़ने और बेटियों को डेरा में काम के बहाने रखनी बनने से रोक सकता है ?" (पृ.–39)

### 9.3.2 शिक्षा की समस्याएँ

आदिवासी क्षेत्रों में शिक्षा की समस्या भी इनके जीवन को अभिशप्त करती है। शिक्षा के प्रति ये स्वयं सजग नहीं थे लेकिन सरकारी योजनाओं के तहत इनके लिए शिक्षा–व्यवस्था की योजनाएँ लागू की गईं परन्तु विडंबना यह है कि व्यावहारिक रूप में यह पूर्ण रूप से लागू नहीं हो पाई।

'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास शिक्षा के नाम पर आदिवासियों के साथ होने वाले अन्याय का पूर्ण विश्लेषण करता है। रणेन्द्र ने अपने इस उपन्यास में शिक्षा व्यवस्था पर कड़ा प्रहार किया है जो आदिवासी क्षेत्रों के यथार्थ को स्पष्ट करती है। उपन्यास का पात्र रुमझुम आदिवासी क्षेत्रों पाथरपाट, भौरांपाट के स्कूलों की वास्तविकता को स्पष्ट करता है। शिक्षा के नाम पर इनके साथ होने वाले धोखे का चित्रण उपन्यासकार ने लालचन दा के शब्दों में करवाया है – "अरे मास्टर साहब! क्या तो आदिवासियों का आवासीय स्कूल! पहले जाकर पाथरपाट का जगप्रसिद्ध स्कूल देख आइए। तब समझ में आ जाएगा कि असल स्कूल क्या होता है और फुसलाने वाला स्कूल क्या होता है।" (पृ.–14)

भौंरापाट गाँव में असुर जनजाति के बच्चों के लिए बनाए गए आवासीय स्कूल की स्थिति सरकार की नीति को खोखला साबित करती है क्योंकि विद्यालय की टूटी फूटी इमारत, छात्रावास की साफ–सफाई और बच्चों के भोजन की व्यवस्था पूर्ण रूप से नहीं की जाती। यहाँ तक कि कर्मचारी भी राशन लाने में धोखाधड़ी करते हैं। अध्यापकों का भ्रष्ट आचरण भी विवेच्य उपन्यास में हुआ है – "ज़्यादातर बच्चियाँ हेडमिस्ट्रेस और टीचर्स के गाँव की और उनकी ही जाति, उराँव–खड़िया, खेरवार परिवार की थीं।" (पृ.–20)

विद्यालय की सच्चाई तो यह है कि केवल कम्पनी वालों को सस्ते मज़दूर मिल जाएंगे इस सत्य को समझता हुआ रुमझुम कथावाचक से कहता है – "अधपढ़ – अनपढ़ शिक्षकों के भरोसे, फुसलावन स्कूल के हमारे बच्चे, ज़्यादा से ज़्यादा स्किल्ड लेबर, पिऊन, क्लर्क बनेंगे और क्या?" (पृ.–19)

पाथरपाट का आदिवासी स्कूल जो कि उन्हीं के सौ से ज़्यादा घरों को उजाड़कर बना था। विडंबना यह कि पिछले तीस वर्षों से एक भी आदिम जाति परिवार के बच्चे ने वहाँ पढ़ाई नहीं की। भौंरापाट स्कूल की सच्चाई भी लेखक ने उपन्यास में स्पष्ट की है जो कि असुर–बिरजिया बच्चियों के लिए खोला गया लेकिन दस प्रतिशत बच्चों से ज़्यादा संख्या इन स्कूलों में नहीं है।

इतना ही नहीं लेखक शिक्षा के प्रति चेतन उन आदिवासियों का चित्रण भी करता है जो शिक्षा प्राप्त कर कुछ करना चाहते हैं चाहे वह उपन्यास का पात्र रुमझुम हो तो चाहे उसका छोटा भाई सुनील या फिर ललिता। ये मेलन हेड साहब तो असुर–आदिम जाति पहले एम.ए. थे। शिक्षा ग्रहण करने के बाद भी इन्हें वह सम्मान और उपयुक्त रोज़गार मुहैया नहीं होता जिसके ये अधिकारी हैं। रुमझुम के शब्दों में – "मैंने खुद कितनी कोशिश की थी। पिछले दो तीन वर्षों से कैजुअल शिक्षक के रूप में काम करने की इच्छा है। लेकिन वहाँ भी दाल नहीं गलती। आखिर हमारी छाया से भी क्यों चिढ़ते हैं ये लोग? (पृ.–19) स्पष्ट है कि शिक्षा की स्थिति भी इस समुदाय की बहुत अच्छी नहीं है। शिक्षा व्यवस्था की पोल खोलता विवेच्य उपन्यास यथार्थांकन करता है कि यह केवल छलावा मात्र है।

### 9.3.3 धार्मिक समस्याएँ

आदिवासी समाज जंगल में विचरण करता है और प्रकृति का पुजारी है। धर्म को ये प्रकृति में ही ढूंढते है और पूजा करते हैं। पहाड़, नदी, तालाब, गुफा इत्यादि इनके ईश्वर हैं और ये उन्हीं की पूजा करते हैं। उपन्यास में लेखक ने इनके धार्मिक विश्वासों, अन्धविश्वासों इत्यादि को स्पष्ट किया है।

धार्मिक विश्वासों से संबंधित चित्रण उपन्यास में दर्ज है कि ये लोग पूजा–पाठ, देवी–देवता मनाना, पूर्वजों को याद करना, बलि देना अपना धर्म मानते हैं – "बैगा–पुजार–पाहन, पर्व–त्योहार, नक्षत्र काल देख सरना–स्थल पर पूजा–पाठ करते। पाट देवता, सरना माई, महादनिया–महादेव, सिंगबोंगा गाँव घर पर प्रसन्न रहते।" (पश.–28)

धार्मिक अन्धविश्वास इन लोगों के जीवन की समस्या है। धान का बिचड़ा डालने की घटना हो, शिवदास बाबा का क्षेत्र में कंठीधारी अभियान हो, ये कथाएँ स्पष्ट करती हैं कि इनके मध्य ये अंधविश्वास प्रचलित हैं। डॉ. रामकुमार जब मुड़ीकटवा लोगों के प्रहार से घायल लालचन का इलाज करता है तो स्पष्ट करता है कि इलाके में खरीफ की फसल के समय अंधविश्वास के कारण 'मुड़ीकटवा' लोग घूमते हैं। वह बताते हैं – "दरअसल अब भी कुछ लोगों के मन में यह बात बैठी हुई है कि धन को आदमी के खून में सानकर बिचड़ा डालने से फसल बहुत अच्छी होती है। इसलिए इस सीजन में मुड़ीकटवा लोग घूमते रहते हैं।" (पृ.–12)

बलि–प्रथा जैसे अन्धविश्वास का खुलासा भी उपन्यासकार ने किया है। बुधराम सिंह खेरवार का यह मानना कि देवी–थान बलि मांगता है – "देवी को जब बलि की ज़रूरत महसूस होती है तो गुफा से नगाड़े की आवाज़ आने लगती है। हम समझ जाते हैं। फिर मजबूरी में दूर थाना–इलाका के बाहर जाकर 'पूजा' लाना पड़ता है। इस भक्त की बलि के बाद नगाड़े की आवाज़ खुद बन्द हो जाती है।" (पृ.–13) दूसरी तरफ उपन्यासकार ने यह भी चित्रण किया है कि अब लोग पढ़ने लिखने लगे तो थोड़ा बदलाव आया है।

शिवदास बाबा जैसे ढोंगी धर्माचार्यों का चित्रण भी रणेन्द्र ने किया है जो आदिवासियों को बहला–फुसलाकर अपना स्वार्थ साधते हैं। बाबा पाट पर आकर आदिवासियों को कंठी धारण कर अपना अनुयायी बना लेता है। जो आदिवासी कंठी धारण नहीं करते उनसे कंठी धारी घृणा करने लगते हैं इसलिए कंठी धारी और गैर कंठी धारी में

आदिवासियों को बाँटकर अशांति फैलाता है – "लेकिन अब पाट पर भी न पहले जैसी एका थी, न शान्ति। कंठीधारी भगत और कंठी न पहनने वालों के बीच अनावश्यक झगड़ा होता रहता।" (पृ.–64) परिणाम यह होता है कंठी धारी और गैर–कंठी धारी आपस में छुआछूत करने लगते हैं भोले–भाले असुर जनजाति के लोग शिवदास बाबा के रसूख के जोर पर किए कार्यों को चमत्कार समझने की भूल करते हैं यहाँ तक कि लालचन भी उनका परम भक्त बन जाता है। शिवदास बाबा द्वारा प्रकृति के पुजारी आदिवासियों पर अपने नियम लादना धर्मान्तरण नहीं तो और क्या है – "बाबा के तेज, प्रताप, चमत्कार और बीमारियाँ दूर करने की शक्ति का इतनी तेज़ी से प्रसार हुआ कि गुरूवार के दिन कोयलेश्वर आश्रम में तो मेला–सा लगने लगा।" (पृ.–58) आदिवासियों को धार्मिक आधार पर इस तरह पथभ्रष्ट कर अपना स्वार्थ साधना इन समुदायों की वास्तविक पहचान को खत्म कर रहा है।

### 9.3.4 शोषण की समस्या

आदिवासी जीवन के लिए सबसे बड़ा अभिशाप है शोषण जो कि उनके अस्तित्व के लिए ही खतरा बनकर खड़ा है। 'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास में लेखक ने जहाँ प्रतीकात्मक रूप में ग्लोबल गाँव के देवता शब्द का प्रयोग किया है उसका अर्थ है वह कंपनियाँ जो भूमण्डलीकरण के इस दौर में विकास के नाम पर इन जंगली क्षेत्रों की देवता बन बैठी हैं और इन प्राकृतिक संसाधनों पर अपना अधिकार मानती हैं और देशी ताकतें भी इनके ही साथ हैं। ये भ्रष्ट सत्ताधारी शक्तियाँ इनका शोषण करती हैं। उपन्यास में आदिवासियों का शोषण विकास के नाम पर बनाई गई नीतियों के आधार पर हो रहा है जिनमें एग्रीमेंट के उल्लंघन की तरफ भी सरकार का ध्यान नहीं जाता। डॉ. रामकुमार स्पष्ट करता है – "कितना बार लिखा–पढ़ी हुआ। दर्जनों दरख्वास्त तो हमने खुद लिखा होगा। अब एग्रीमेंट की पहली शर्त है कि बॉक्साइट निकालकर गड्ढा भरना है, तो बीसों साल से क्यों नहीं हो रहा यह काम?" (पृ.–14) इसी के चलते इलाके में सेरेब्रेल मलेरिया जैसी बीमारियाँ फैलती हैं जो इन समुदायों के लिए घातक सिद्ध होती हैं।

अवैध खनन और अवैध अधिकार कर आदिवासियों का जीवन नरक बना रहे हैं भ्रष्ट तन्त्र के ये ताकतवर देवता। वेदांग कंपनी उनके क्षेत्र में खनन करके उनके जीवन को नरक बना रही है – "लीज़ की भूमि पर कम, वन विभाग, गैरमजरुआ ज़मीन, असुर रैयत की ज़मीन से ज़्यादा खनन किया करते। अवैध खनन खुलेआम और वर्षों से जारी था।" (पृ.–27) विडंबना तो यह है कि यदि इनके द्वारा विरोध किया जाता है तो उसका दमन कर दिया जाता है। उपन्यास का मध्य से अंतिम भाग इन कृत्यों का चित्रण करता है जहाँ डॉ. रामकुमार, ललिता, बुधनी, रुमझुम, किनारी नवयुवक संघ सब मिलकर 'संघर्ष समिति' बनाते हैं और न केवल सरकार तथा जाल बिछा चुकी कंपनियों के विरुद्ध अपना प्रतिरोध हड़ताल करके अभिव्यक्त करते हैं अपितु माँग पत्र तैयार करते हैं और प्रतिरोध स्वरूप वे काम ठप्प कर देते हैं। उपन्यास में वाचक इस एकता को व्यक्त करता है – "पाट के तीस–चालीस खदानों में स्पष्ट है कि इनका अस्तित्व ही खतरे में है। काम रुकवाकर उन्होंने सीधे नये देवताओं को चुनौती दे दी थी।" (पृ.–52)

विस्थापन भी शोषण का एक पहलू है जो इनके जीवन को समाप्त कर रहा है। जानवरों की खत्म होती नस्लों को बचाने के लिए आदिवासियों के घरों को उजाड़ा जाता है। उपन्यासकार ने इस स्थिति को भी स्पष्ट किया है। रुमझुम

का प्रधानमंत्री को लिखा पत्र स्पष्ट करता है – "महोदय, शायद आपको पता हो कि हम असुर सिर्फ आठ–नौ हज़ार ही बचे हैं। हम खत्म नहीं होना चाहतं।" (पृ.–89) भौंरापाट गाँव में 'वन विभाग' द्वारा भेड़ियों की खास नस्ल को बचाने के लिए आदिवासियों के सैंतीस गाँवों का उजाड़ना तय था। "भेड़िया मन के बचावे ला आदमीमन के जान लेबैं।" (पृ. –78) वन–विभाग उलटा आदिवासियों को ही घुसपैठिया मानता है। वह यह मानने को तैयार नहीं हैं कि वन गाँवों में लोग सैंकड़ों वर्षों से रहते आये हैं।

"वनस्पतियों और जीवों की तरह आदिवासी–आदिम जाति भी जंगल के स्वाभाविक बाशिन्दे हैं।" (पृ. 79–80) उपन्यास का पात्र रुमझुम आदिवासी शोषण की इस गाथा को एक चिट्ठी में लिखकर प्रधानमन्त्री को भेजता है जो इनके शोषण और चेतना के स्वर को मुखर करता है। शोषण को सहन न कर अब ये समुदाय इसके विरुद्ध आवाज़ उठाने लगे हैं। इस चेतना की आवाज़ को इस चिट्ठी में इन शब्दों में लिखा है – "लेकिन बीसवीं सदी की हार हमारी असुर जाति की अपने पूरे इतिहास में सबसे बड़ी हार थी। इस बार कथा–कहानी वाले सिंगबोंगा ने नहीं, टाटा जैसी कम्पनियों ने हमारा नाश किया।" (पृ.–83)

संघर्ष को आगे बढ़ाने का अंजाम यह हुआ कि पुलिस प्रशासन ने उनके शांत विद्रोह को अपनी भ्रष्ट चाल से भड़काया और बातचीत करने आते उन लोगों के राह में लैंड माइंस बिछा दीं जिससे उन सब की धज्जियाँ उड़ गईं।

### 9.3.5 आदिवासी नारी के शोषण की समस्या

आदिवासी नारी का शोषण भी इन कबीलों में आम बात है। पूंजीपतियों के शक्तिशाली हाथों से इनकी नारियों को बचाना नामुमकिन सा है। उपन्यासकार ने आदिवासी नारी के शोषण का चित्रण 'ग्लोबल गाँव के देवता' में किया है। उपन्यास में लेखक स्पष्ट करता है कि खदानों के मेठ मुंशी असुर लड़कियों को ही रखते और उनका दैहिक शोषण करते । उपन्यास के पात्र गोनू उर्फ़ गणेश्वर सिंह राजपूत, रामचन, सिंहवा, शिवदास बाबा नारी शोषण में लिप्त दिखाई देते हैं। लालचन दा सिंहवा की इस नीच वृत्ति का खुलासा करते हैं – "कच्ची उम्र की लड़कीमन को फुसलाना। दिल्ली–कलकत्ता का सब्ज़बाग दिखाना। जिस घर में मर्द औरत में नहीं पट रही हो, उस घर की औरत को फुसलाना। खरीफ कटनी के बाद हाट बाज़ार ऐसने दलालों से भरा रहता।" (पृ.–30) शिवदास बाबा के काले कारनामों का चिट्ठा खुलता है जब लालचन की बेटियाँ कविता और नमिता के बीमार होने पर डॉक्टर रामकुमार इलाज के लिए पहुँचते हैं। असुर जनजाति की बच्चियों के लिए आवासीय स्कूल का निर्माण करवाकर उसकी आड़ में वह उनका यौन शोषण करता है।

उपन्यास का पात्र गणेशवर सिंह भी आदिवासी औरतों का शोषण करता है। वह सरकारी दलाल बनकर औरतों को अफ्सरों के हाथों बेचने का काम करता है। अपनी इच्छापूर्ति के लिए भी वह औरतों को रखता है और उनकी जवान होती बेटियों को भी अफ्सरों के पास भेजता है। समाज के गैर–आदिवासी ठेकेदार कैसे आदिवासी औरतों का शोषण करते हैं यह स्पष्ट है। इतना ही नहीं बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के शक्तिशाली संचालक भी औरतों का शोषण करते हैं।

शिंडाल्को कम्पनी का मैनेजर किशन कन्हैया पांडे भी अपनी वासनापूर्ति के लिए औरतों का शोषण करता है – "जहाँ कोई अक्षत पौवना मिलती, वे बड़े मनोयोग से तन्त्र साधना में डूब जाते। कभी–कभी तो सारी रात यह घनघोर साधना चलती रहती।" (पृ.–54)

पुलिस व्यवस्था भी इस कुकर्म से अछूती नहीं थी। पुलिसवाले भी इन आदिवासी औरतों का शोषण करते हैं। धरने पर बैठे आदिवासियों को सिपाही कहता है – "ई छौंड़िन सबको जानते नहीं हैं हम? इनमें से कौनो ऐसन नहीं है जो हमारी जाँघ के नीचे से नहीं निकली हो।" (पृ.–87)

शिवदास बाबा धर्म का सहारा लेकर पाट में प्रसिद्ध हो जाता है परन्तु वास्तविकता कुछ और ही है। यह बाबा धार्मिक ढोंग और आदिवासियों का हितरक्षक होने का दिखावा करके उनका हितभक्षक है वह शिक्षा के नाम पर विद्यालय खोलता है और लड़कियों का शोषण करता है। लालचन की बेटियों कविता और नमिता को भी वह अपनी हवस का शिकार बनाता है। इसलिए शिवदास बाबा के स्कूल से उनका नाम कटवा दिया जाता है। उनकी इस स्थिति का चित्रण उपन्यास में हुआ है। जब डॉ0 रामकुमार उन बीमार बच्चियों के इलाज के लिए पहुँचते हैं तो पता चलते ही कि बाबा के विद्यालय से बीमार आई हैं तो वे समझ जाते हैं – "जरूर ई बच्ची लोग को रात में पैर दबाने के लिए बुलाया होगा। उसके बाद ही छोटी बच्चियाँ पथरा जाती है। दर्जनों ऐसे केस आश्रम में मैं देख चुका हूँ। लाज, शरम, भय सब घोलकर पी गया है हरामी।" (पृ. 69)

इस तरह इन जनजातियों में नारी शोषण की समस्या भी अधिक है।

## 9.4 उपसंहार

विद्यार्थियों उपन्यास 'ग्लोबल गाँव के देवता' में समस्याओं के विवेचन के आधार पर स्पष्ट है कि आदिवासियों की समस्याओं का यथार्थांकन उपन्यास में हुआ है। आर्थिक, धार्मिक, शैक्षिक और शोषण इत्यादि समस्याओं से जूझता यह वर्ग अपने अस्तित्व और अस्मिता की रक्षा के लिए तत्पर है।

## 9.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. 'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास में चित्रित आदिवासी समस्याओं का वर्णन कीजिए?

_____

_____

_____

_____

_____

2. आदिवासी समस्याओं के सन्दर्भ में 'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास की समीक्षा कीजिए ?

3. 'ग्लोबल गाँव के देवता' में चित्रित आदिवासियों की शैक्षिक स्थिति को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए ?

5. 'ग्लोबल गाँव के देवता' में आदिवासियों की धार्मिक स्थिति पर प्रकाश डालिए?

_____

_____

_____

_____

## 9.6 सहायक ग्रन्थ


1. आदिवासी और उनका इतिहास – हरिश्चन्द्र शाक्य – अनुराग प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011
2. आदिवासी विकास से विस्थापन – सं. रमणिका गुप्ता – राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 2008
3. आदिवासी विकास, उपलब्धियाँ एवं चुनौतियाँ – एस.एन.चौधरी, मनीषा मिश्रा – कॉसेप्ट पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली, 2012


******

# 'ग्लोबल गाँव के देवता' में स्त्री विमर्श

**10.1 भूमिका**

**10.2 उद्देश्य**

**10.3 विमर्श शब्द का अर्थ**

**10.4 स्त्री–विमर्श से अभिप्राय**

**10.5 ग्लोबल गाँव के देवता में स्त्री–विमर्श**

**10.6 उपसंहार**

**10.7 अभ्यासार्थ प्रश्न**

**10.8 सहायक ग्रन्थ**

## 10.1 भूमिका

'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास में उपन्यासकार रणेन्द्र ने जहाँ आदिवासी समुदाय के जीवन का चित्रण किया है वहीं इस समुदाय की स्त्री को भी कथा के केन्द्र में रखते हुए उसके जीवन का चित्रण किया है। स्त्री–विमर्श के संदर्भ में विवेच्य उपन्यास आदिवासी स्त्री के जीवन के विभिन्न पहलुओं को उजागर करता है यथा – उसकी अपने समाज में स्थिति, गैर–आदिवासियों द्वारा उसका शोषण, उसकी पथभ्रष्टता, शिक्षा ग्रहण कर सजग होना, अपने समुदाय के अधिकारों के लिए संघर्ष इत्यादि।

## 10.2 उद्देश्य

- इस पाठ में आप विमर्श के अर्थ को समझ सकेंगे।
- स्त्री–विमर्श की अवधारणा को जान पाएंगे।
- 'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास में चित्रित आदिवासी स्त्री की स्थिति को समझ सकेंगे।

## 10.3 विमर्श शब्द का अर्थ

'मानक हिंदी कोश' में विमर्श का अर्थ विचारण, आलोचना, व्याकुलता, क्षोभ और उद्वेग है।"

अंग्रेजी हिन्दी शब्दकोश में 'विमर्श' का अर्थ भाषण, प्रवचन, प्रबंध दिया गया है।

ऑक्सफोर्ड अंग्रेजी कोश में भी 'डिस्कोर्स' (Discourse) शब्द का अर्थ – भाषण या बातचीत ही है।

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर हम कह सकते हैं कि भाषण, परीक्षा, आलोचना, विचारण, विवेचन, गुणदोष की मीमांसा आदि सभी शब्द विमर्श के ही समानार्थी हैं। सभी कोशों में 'विमर्श' शब्द का अर्थ किसी न किसी प्रकार बातचीत या विचार–विवेचन से ही जुड़ा है। 'विमर्श' शब्द से जहाँ बातचीत वार्तालाप इत्यादि अर्थ सामने आते हैं वहीं साहित्यिक रूप में इसका अर्थ है किसी विषय का गहन विवेचन–विश्लेषण करते हुए अन्ततः तर्क–संगत निर्णय पर पहुँचने का प्रयत्न। विमर्श शब्द जहाँ जागरुकता का परिचायक है वहीं सामाजिक स्तर पर समस्या से निजात भी दिलवाता है।

## 10.4 स्त्री–विमर्श से अभिप्राय

विद्यार्थियों 'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास में स्त्री–विमर्श को समझने से पूर्व स्त्री–विमर्श क्या है और स्त्री की सामाजिक स्थिति क्या रही है उसे समझना आवश्यक है। 'स्त्री–विमर्श' शब्द दो शब्दों से बना है – स्त्री और विमर्श। स्त्री–विमर्श का अर्थ स्त्री जीवन का प्रत्येक कोण से सोच–विचार, बातचीत और संवाद इत्यादि करना है। संवाद या सोच–विचार की आवश्यकता स्त्री के संदर्भ में वह प्रश्न हैं कि आखिर स्त्री को शोषण का शिकार क्यों होना पड़ा और समाज में आज तक भी पूर्ण रूप से उसकी स्थिति में सुधार क्यों नहीं आया। अर्चना वर्मा स्पष्ट करती हैं – "स्त्री–विमर्श का एक बड़ा और महत्त्वपूर्ण हिस्सा साहित्य के माध्यम से स्त्री–समुदाय की जीवन–पद्धति, अनुभव–जगत और प्रतिरोध के आवेग की अभिव्यक्ति से ताल्लुक रखता है। सदियों से पीड़ित और शोषित नारी आज शोषण के प्रति सजग होकर संघर्ष करने को तत्पर है।"

प्राचीन युग में नारी की वैधानिक स्थिति सिद्धान्त रूप में उच्चतम परन्तु व्यवहार रूप में निकृष्टतम बनी रही। अधिकार तो उसको पुरुषों के समान प्राप्त थे परन्तु विदेशी आक्रमणों के चलते उसे प्रतिकूल परिस्थितियाँ भोगनी पड़ती थीं। उसे हमेशा पुरुष के अधीन रहने का आदेश दिया गया। परिवार के भरण–पोषण का कार्य कर्त्तव्य बनाकर उसे सौंप दिया गया ताकि वह घर की चार दीवारी में रहकर संतुष्ट रहे।

औपनिवेशिक भारत में महिलाओं की स्थिति चिन्ताजनक थी क्योंकि सामाजिक कुरीतियों की निरन्तरता बनी हुई थी। भारत को अंग्रेजों ने दासता के शिकंजे में जकड़ लिया था। अंग्रेजों के साथ पश्चिमी चिन्तन और दर्शन भी भारत पहुँचा। भारतीय भी पश्चिमी रहन–सहन से प्रभावित होने लगे। अंग्रेजों की शिक्षा नीति ने सबसे अधिक प्रभाव डाला। शिक्षा ग्रहण करने के बाद भारतीयों ने अपने देश की तुलना पश्चिम से की। उन्हें भारत की गुलामी का अहसास हुआ। देश को

आजाद करवाने के लिए आन्दोलन भी शुरू हो गये। दूसरी तरफ अंग्रेजों ने शिक्षा का जो प्रसार भारत में किया था उससे देश को लाभ हुआ। स्त्रियों ने भी स्वतंत्रता संघर्ष में भाग लेना शुरू किया। 1819 ई. में ईसाई मिशन ने लड़कियों को शिक्षा देने के लिए अलग स्कूल खोले क्योंकि भारतीय, लड़कों के स्कूल में लड़कियों को नहीं भेजते थे। "1824 में लेडीज़ सोसाइटी फॉर नेटिव फीमेल एजुकेशन स्थापित की गई।"1 1854 में वुड्स डिस्पैच ने पूरे भारत में शिक्षा और विशेष रूप से महिलाओं को उच्च शिक्षा देने के विषय में महत्त्वपूर्ण निर्देश दिए। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् नारी की स्थिति में विस्मयकारी परिवर्तन आया। 1950 में भारतीय लोकतंत्र के संविधान बनने के समय लिंग, जाति और भाषा आदि के आधार पर कोई भेदभाव नहीं किया गया। दुःखद स्थिति यह रही कि संवैधानिक समानता केवल संवैधानिक ही रही जबकि व्यावहारिक रूप में स्त्री की स्थिति स्वर्णिम नहीं हो पाई। दुर्व्यवहार का शिकार वह होती रही। पुरुष सत्ता की सोच वह नहीं बदल पाई। महादेवी वर्मा ने स्त्री की इस स्थिति पर अपने विचार 'शृंखला की कड़ियाँ' में व्यक्त किए हैं, "युगों के अनवरत प्रवाह में बड़े–बड़े साम्राज्य बह गये, संस्कृतियाँ लुप्त हो गईं, जातियां मिट गई, संसार में अनेक असम्भव परिवर्तन सम्भव हो गये, परन्तु भारतीय स्त्रियों के ललाट में विधि की वज्रलेखनी से अंकित अदृष्ट लिपि नहीं धुल सकी। आज भी जब सारा गतिशील संसार निरन्तर परिवर्तन की अनिवार्यता प्रमाणित कर रहा है, स्त्रियों के जीवन को काटछाँट कर उसी साँचे के बराबर बनाने का प्रयत्न हो रहा है जो प्राचीनतम युग में ढाला गया था।" पश्चिम के उदारवादी चिन्तन ने भारत की महिलाओं पर भी प्रभाव डाला। भारतीय महिलाओं ने शिक्षा प्राप्त करनी शुरू कर दी थी और दूसरी तरफ समाज–सुधार आन्दोलनों ने भी उनकी शिक्षा और समानता का समर्थन किया। समाज–सुधारकों में राजा राममोहनराय को इन आन्दोलनों का जनक माना जाता है। स्त्री से संबंधित बहु–विवाह, दहेज प्रथा, सतीप्रथा इत्यादि का इन्होंने विरोध किया। दयानन्द सरस्वती ने शिक्षा के प्रचार–प्रसार को आवश्यक माना। पंडिता रमाबाई ने बाल–विवाह, विधवा–विवाह पर व्याख्यान दिये और 1881 में शारदा सदन की स्थापना बम्बई में की। सामाजिक संस्थाओं के रूप में ब्रह्म समाज, आर्य समाज, इण्डियन नेशनल सोशल कान्फ्रेंस इत्यादि के संगठित प्रयासों से समाज में फैली स्त्री विषयक कुरीतियों को दूर करने और स्त्रियों को समाज की महत्वपूर्ण इकाई बनाने में योगदान मिला। शिक्षित होकर महिलाओं ने मंत्रियों का पद संभाला और नारी आन्दोलनों की शुरूआत की। नारी शिक्षा और पश्चिमी प्रभाव ने नारी के प्रति नवीन दृष्टिकोण उत्पन्न किया। सदियों से चले आ रहे अंधविश्वासों, रूढ़ियों तथा धार्मिक कुरीतियों पर पश्चिमी विचारों ने प्रभाव डाला और लोगों के दृष्टिकोण में भी परिवर्तन किया। स्त्री शिक्षा के संबंध में विशेष प्रयत्न किये गये। समाज में फैली विविध कुप्रथाओं के कारण स्त्री की जो हीन दशा थी उसे दूर करने का प्रयास समाज सुधारकों ने किया। प्रो. सुगम आनन्द ने नारी की इस चेतना का वर्णन इन शब्दों में किया है, "सृजनात्मक प्रतिभा की धनी ऐसी ही महिलाओं ने सिद्ध किया कि नारी मात्र दासी और सेविका नहीं वरन् हृदय और मस्तिष्क के साथ वे अपने अन्दर निहित आत्म तत्व को भी पहचानती है।"इस समय विभिन्न नारी संगठनों का निर्माण हुआ। सन् 1917 में 'भारतीय महिला मंडल' ने इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किया। महिलाओं को सामाजिक, राजनीतिक अधिकार और शिक्षा प्राप्त करवाने में इस मंडल ने प्रमुख भूमिका निभाई। सन् 1925 में 'भारतीय महिला राष्ट्रीय परिषद' की स्थापना ने नारी की सामाजिक स्थिति सुधारने और नारी जागरण की दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम उठाये। 1925 में ही 'अखिल भारतीय महिला सम्मेलन' की

स्थापना हुई। नारी शिक्षा और समाज सुधार का कार्य इनका मुख्य उद्देश्य रहा। 1944 ई. में 'कस्तूरबा ट्रस्ट' की स्थापना से ग्रामीण नारी के विकास और उनके स्वास्थ्य एवं चिकित्सा के क्षेत्र में प्रयास किये। "आधुनिक युग में सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य हुआ नारी–शिक्षा के प्रचार–प्रसाार का जिससे नारी वर्ग को अवसर मिला कि वे डाक्टर, वकील, शिक्षिका, नर्स और अन्य व्यवसाओं में भागीदारी कर सकें।"1 नारी ने जो योगदान राष्ट्रीय आन्दोलनों में दिया वह समाज के नेताओं और आम जन को स्तब्ध करने में सफल रही और स्वयं को जागृत कर प्रगति के मार्ग पर उन्मुख हुई। महादेवी वर्मा के शब्द इस संदर्भ में उल्लेखनीय हैं, "राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने वाली महिलाओं ने आधुनिकता को राष्ट्रीय जागृति के रूप में देखा और उसी जागृति की ओर अग्रसर होने में अपने सारे प्रयत्न लगा दिये। उस उथल–पुथल के युग में स्त्री ने जो किया वह अभूतपूर्व होने के साथ–साथ उसकी शक्ति का प्रमाण भी था।"1950 में भारतीय संविधान में समानता का दर्जा प्राप्त करने के बाद स्त्री ने हर क्षेत्र में उन्नति की। समय के साथ–साथ नारी ने स्वावलम्बी बनना सीखा। आज़ादी के 60 वर्ष पश्चात् भी नारी की स्थिति में आए सुधार उसे पूर्ण स्वतंत्रता न दिला सके। नारी को देवी कहकर पुरुष ने उसे उसके अधिकारों से हमेशा वंचित रखा और अपना वर्चस्व स्त्री पर बनाये रखा। पुरुष ने उसके जीवन को स्वतंत्र मानने से सदैव इंकार किया। स्त्री जीवन केवल समर्पण बन कर रह गया। "भारतीय स्त्री की सामाजिक स्थिति का इतिहास भी उसके विकृत से विकृततर होने की कहानी मात्र है। बीती हुई शताब्दियाँ उसके सामाजिक प्रसाद के लिए नींव के पत्थर नहीं बनी, वरन् उसे ढहाने के लिए वज्रपात बनती रही हैं। फलतः उसकी स्थिति उत्तरोत्तर दृढ़ तथा सुन्दर होने के बदले दुर्बल और कुत्सित होती गई।" नारी आज शिक्षित हुई है और इसी जागृति के कारण उसमें अपने अस्तित्व को पाने की लालसा जागी है। अपने भविष्य को उज्ज्वल और सुखपूर्ण बनाने के लिए आज वह घर में बंद न रहकर बाहर निकल रही है। बाहर आने वाली समस्याओं का समाना वह खुद कर रही है। वह अपने स्व की लड़ाई खुद लड़ना चाहती है। भारतीय समाज में साठ के दशक से नारी मुक्ति की अवधारणा चारों दिशाओं में फैल गई। वह अपने ढंग से अपना जीवन व्यतीत करना चाहती है। नारी जीवन में जो परिवर्तन आया है उससे यह स्पष्ट है कि अब वह गुलामी की जंजीरों में बंधना नहीं चाहती अपितु इन जंजीरों को तोड़कर स्वतन्त्र होना चाहती है। संपूर्ण संस्कृति में नारी को एक स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में कहीं भी नहीं देखा गया है। जहाँ वह पुरुष द्वारा बनाये गये नियमों में बंधकर रही है वहीं पूज्य है और जहाँ उसने अपने स्वतंत्र अस्तित्व को बनाने का प्रयत्न किया है वहाँ वह निंदा का पात्र बनी है। नासिरा शर्मा स्त्री–पुरुष संबंधों के विषय में लिखती हैं, "संबंधों में सबसे खूबसूरत रिश्ता है स्त्री–पुरुष के संबंध का, फिर क्यों नहीं स्त्री या पुरुष एक–दूसरे के साथ शाश्वत, सरल और समझदार संबंध ा विकसित कर पाते हैं? आज ज़रूरत इस बात की है कि हम एक ऐसा नैतिक मूल्य विकसित करें जो स्त्री और पुरुष के संबंध को गरिमामय रूप दे सके।"आज नारी जीवन के समस्त मूल्य बदल गये हैं। इस युग की नारी बहुत जागृत है। अपने शोषण के विरुद्ध उसकी वाणी में भी विद्रोह के स्वर गूंजने लगे हैं। वह अपने अस्तित्व के प्रति सजग है। सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक आदि जीवन के सभी क्षेत्रों के प्रति उसका दृष्टिकोण बदल गया है। आधुनिक शिक्षा के प्रचार एवं प्रसार के फलस्वरूप इस युग में नारी के व्यक्तित्व का विकास हुआ है। उसे एक नवीन दृष्टि मिली है और उसका मन प्राचीन रूढ़ियों के बन्धन से मुक्त होकर अपने विकास के सपने देखने लगा है। "नारी में जन्मी यह नव–विकसित

मानसिकता ही उसकी मुक्ति–चेतना है। आज की नारी माँ, बहन, बेटी, पत्नी से पहले एक स्वतंत्र मनुष्य के रूप में अपनी पहचान के प्रति सचेत हो रही है।" नारी मुक्ति पुरुष या समाज से संभव नहीं अपितु उसे पूर्ण व्यवस्था से मुक्ति मिलनी चाहिए क्योंकि इसी व्यवस्था ने उसे दोयम दर्जे की बनने पर विवश किया है। नारी को नारी से पहले एक मनुष्य के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहिए। परिवार और समाज दोनों स्तरों पर उसका वर्चस्व पुरुष के समान होना चाहिए। इस जागृति की आवश्यकता सबसे अधिक ग्रामीण नारी को है क्योंकि अशिक्षित होने के कारण वह आज भी पीड़ित है। शरद सिंह स्त्री मुक्ति की पक्षधर हैं और कहती हैं, "स्त्री–विमर्श, स्त्री मुक्ति, नारीवादी आंदोलन आदि किसी भी दिशा से विचार किया जाए इन सभी के मूल में एक ही चिंतन दृिष्टगत होता है, स्त्री के अस्तित्व को उसके मौलिक रूप में स्थापित करना।" आज की स्त्री अस्तित्वहीन और पहचान रहित नहीं रही। मुख्य रूप से शहरी स्त्री के विषय में यह कहा जा सकता है कि वह स्वतन्त्र अस्तित्व के रूप में उभर कर सामने आ रही है और निरंतर अपनी अलग पहचान बनाने की दिशा में बढ़ रही है। महिलाओं ने अपनी आवाज़ को बुलन्द किया है। आज हम नई स्त्री को देख रहे हैं जो आज अपनी अस्मिता की रक्षा कर रही है। वह भेदभाव सहने को तैयार नहीं। स्त्री की आत्मनिर्भरता ने पुरुष के साथ उसके संबंधों को बदला है। वह पतिव्रता धर्म जैसे कोरे ढोंग को स्वीकार नहीं करती अपितु पति के साथ पत्नी रूप में समानता चाहती है। नासिरा शर्मा का यह कथन स्त्री–अस्मिता के विषय में महत्त्वपूर्ण है, "मेरा यह मानना है कि एक औरत इन्सान की तरह इनसानियत और अस्मिता के साथ जी सके तो वही उसकी स्वतंत्रता होगी।"1 स्त्री ने सम्पूर्ण समाज को अपनी अस्मिता को स्वीकारने के लिए मजबूर किया है। उसके अन्दर का इंसान इस लिंग आधारित वजूद से बाहर आना चाहता है। "यह खेदजनक है कि धर्म, दर्शन, पांडित्य पर एकाधिकार रखने वाली पुरुषसत्ता दुनिया को एक भी ऐसा धर्म, संप्रदाय नहीं दे सकी, जिसमें किसी न किसी रूप में स्त्रियों का शोषण न होता हो।" नासिरा शर्मा औरत के इस प्रगतिशील विकास की ओर संकेत करते हुए कहती है, "औरत वह भी इस नई सदी की, कई तरह की आशाएं जगाती है, जिसमें उसका सबसे बड़ा कर्त्तव्य समाज के प्रति नज़र आता है, क्योंकि अब वह घर में बैठी जाहिल, अनपढ़, फूहड़, औरत नहीं रह गई है, बल्कि वह सुशिक्षित, सुंदर, सुगढ़ एक ऐसी औरत है जो देश की योजनाएं बनाने में अपना सहयोग दे रही है। "आधुनिक युग में नारी को अपना एक विशिष्ट व्यक्तित्व अवश्य प्राप्त हुआ है। इस व्यक्तित्व की सुरक्षा के लिए उसे बहुत संघर्ष करना पड़ रहा है। आज भी समाज में उसके महत्व को कहीं–कहीं नकारा जा रहा है। हमारे समाज के परम्परावादी वर्ग को यह गवारा नहीं कि नारी अपने व्यक्तित्व का स्वतंत्र रूप से विकास करे। शिक्षित लड़की की यह बहुत बड़ी उलझन है कि आज भी उसे समाज परम्परागत आदर्शवादी लड़की के रूप में ही देखना चाहता है और लड़कों से हीन ही समझता है। ऐसी अनेकों उलझनें हैं जिनका सामना आज की शिक्षित, जागृत और स्वाभिमानी स्त्री को करना पड़ रहा है। उसकी आर्थिक क्षमताओं का लाभ तो उसके परिवार वाले प्रसन्नतापूर्वक उठाते हैं पर उसके बाहर के व्यस्त जीवन के होते हुए भी उसे परम्परागत बेटी, बहू, पत्नी, माँ और भाभी इत्यादि के रूप में कर्त्तव्य निभाते हुए देखना चाहते हैं। उसे घर से बाहर निकलने की इजाज़त ही इसी शर्त पर मिली लगती है कि वह घर और बाहर दोनों क्षेत्रों के दायित्व का निर्वाह करने में ज़रा भी चूक न करे। इसी स्थिति के कारण वह मानसिक तनाव से ग्रस्त हो जाती है। अपने बँटे हुए व्यक्तित्व को लेकर आधुनिकता और परम्परा के दो छोरों के

बीच लटकती है। सुभाष सेतिया इक्कीसवीं सदी में आगे बढ़ रही नारी का समर्थन तो करते हैं परन्तु समाज की उपेक्षा की शिकार नारी के विषय में कहते हैं, "परंतु मंजिल अभी बहुत दूर दिखाई दे रही है। यह इसलिए कि नारी चिंतन और दृष्टि में तो परिवर्तन परिलक्षित हो रहा है किंतु भारतीय समाज की सामूहिक सोच में वह रूपांतरण दिखाई नहीं दे रहा, जो इतने बड़े परिवर्तन के लिए आवश्यक है। पुरुष दृष्टि आज भी औरत को अपने से दुर्बल, हेय, कमतर और अधीनस्थ मानती है। पुरुष के लिए महिला एक व्यक्ति नहीं है, बस वह 'महिला' है। "औरत को मनुष्य का दर्जा प्राप्त करने में अभी भी संघर्ष करना पड़ रहा है और संघर्ष के बाद भी स्थिति यह है कि वह पूर्णत्व को प्राप्त नहीं कर पाई। हमारी संस्कृति की यह विडंबना रही है कि औरत सिर्फ देह के रूप में मानी जाती रही इससे इतर उसके मनुष्य रूप को स्वीकार नहीं किया गया। कभी धर्म, कभी संस्कृति, कभी परिवार को बचाने के नाम पर उसको पीड़ित किया जाता रहा परन्तु समाज उसकी पीड़ा को पीड़ा न मानकर उसे कर्त्तव्य का नाम देता रहा। प्रभा खेतान नारी को आत्मविश्वास से इस स्थिति से उभरने के लिए कहती हैं, "आत्मसंदेह और अविश्वासों से घिरी स्त्री को अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए नए विश्वास, नयी आस्था और नये विचारों की जरूरत है।" समय बदला और परिस्थितियाँ भी बदल गईं परन्तु नारी के प्रति समाज की मानसिकता नहीं बदली। समाज नारी को आज भी पचास वर्ष पहले वाली नारी के रूप में देखना चाहता है। अगर वह आत्मनिर्भर और स्वतंत्र होकर निकली तो यह पुरुष समाज वहाँ भी उसका शोषण करता है। उसकी इसी स्थिति का वर्णन रेखा कस्तवार इन शब्दों में करती हैं, "घर से बाहर निकली है, तो शोषण के लिये तैयार होकर निकले, वर्ना घर की सुरक्षा के साथ मिलने वाले निकट सम्बन्धियों के अतिचारों पर चुप्पी साधे।" बलात्कार को पुरुष समाज ने स्त्री के प्रति प्रमुख हथकंडे के रूप में प्रयोग किया है। यह स्त्री के प्रति सबसे जघन्य अपराध है और दिन प्रतिदिन यह विकराल रूप लेता जा रहा है। बलात्कार की बढ़ती घटनाओं ने सारे समाज को चिंता में डाला है। औरत के कार्यक्षेत्र के दायरे बढ़े परंतु साथ ही शोषण के दायरे भी बढ़ते गये जिस कारण आज आधुनिक युग के समय में स्वतंत्र रूप से समाज में उन्नति की ओर अग्रसर स्त्री असुरक्षा की भावना से ग्रस्त है। कब, कहाँ और कैसे यह असुरक्षा की भावना सत्य साबित हो जाये कहा नहीं जा सकता। बलात्कार के साथ–साथ वेश्यावृत्ति भी हमारे समाज पर बहुत बड़ा कलंक है। वेश्यावृत्ति जैसे घृणित कार्य में भी भोगना स्त्री को ही पड़ता है। पुरूष समाज द्वारा इस कार्य में धकेली गई स्त्री वेश्यावृत्ति के कलंक को जीवन भर झेलती है परन्तु इस कलंक को धोने का कोई उपाय नहीं। वेश्यावृत्ति करने वाली स्त्रियों को समाज में कोई स्थान प्राप्त नहीं जबकि वेश्याओं के पास जाने वाले पुरुष से कोई भी सवाल क्यों नहीं किया जाता। इसी विषय पर सवाल उठाते हुए सूर्यकांत नागर भी स्त्री पक्ष में खड़े नज़र आते हैं, "शीलवान और कोरा होना तथा शुचिता केवल स्त्री से ही क्यों अपेक्षित है।" समाज में नैतिकता का बीड़ा सिर्फ स्त्री के कंधों पर क्यों डाल दिया जाता है जबकि स्वयं पुरुष इन कार्यों के लिए ज़्यादा उत्तरदायी है। जिस कार्य में दोनों बराबर के भागीदार हैं वहां केवल स्त्री ही दोषी और कुल्टा क्यों मान ली जाती है। आसानी से उपलब्ध स्त्री को पुरुष समाज कैसे छोड़ सकता है क्योंकि औरत को औरत से ज़्यादा समाज में कुछ समझा नहीं गया। मैत्रेयी पुष्पा "औरत चाहे फसल की तरह हो या खेती की तरह, वह घर में रहे या कोठे पर, पुरुष के लिए 'सुविधा साधन' का रूप है।" आधुनिक युग में शिक्षा के

व्यापक प्रचार–प्रसार के बावजूद स्त्रियों के स्वतंत्र विकास में अनेक बाधाएं हैं। प्रमुख रूप से इसका कारण वह रूढ़िवादी संस्थाएं और उनका नई विचारधारा के पूर्णतः खिलाफ होना है। उनका मानना यही है कि औरत घर की दहलीज़ के अंदर संतान का पालन–पोषण करती और गृहस्थ को संभालती ही शोभा देती है। इन परिस्थितियों को सुधारे बिना स्त्री अस्मिता की प्राप्ति असंभव है। उमा शुक्ल कहती हैं, "नारी को पुरुष की सहयोगी बनना है प्रतियोगी नहीं। अधिकारों का अर्जन ही वह लक्ष्य है जिसके लिए हमें अपने आपसे और अपने से बाहर दो मोर्चों पर दोहरा संघर्ष करना होगा।" समाज के उन्नतशील भविष्य के लिए इसकी महत्त्वपूर्ण इकाई 'व्यक्ति' के अस्तित्व का उन्नत होना अति आवश्यक है परन्तु समस्या तब पैदा हो जाती है जब यह समाज स्त्री को व्यक्ति मानने से इंकार कर देता है जिससे उसकी अस्मिता खतरे में पड़ जाती है। उसे हमेशा दायरों में बांधा जाता है। स्त्री हो तो ऐसे करो, स्त्री हो इसलिए ऐसे मत करो, ऐसे चलो, ऐसे उठो, ऐसे बोलो इत्यादि ऐसे बंधन हैं जो उसकी अस्मिता को ही खत्म कर देते हैं। स्त्री की अस्मिता को बचाये रखने के लिए यह अनिवार्य है कि उसके साथ किसी भी प्रकार का सामाजिक भेदभाव न हो। अनिता भारती, "स्त्री मुक्ति का सवाल स्त्रियों को उनके अपने खुद के लिए स्वतंत्र निर्णय लेने से लेकर एक मनुष्य के रूप में आज़ादी से जुड़ा प्रश्न है। स्त्री–मुक्ति, सड़े–गले स्त्री–विरोधी पितृसत्तात्मक ब्राह्मणवादी व सामंतवादी मूल्यों के प्रति विद्रोह भी है।" पुरुष और स्त्री को समाज के पूरक और एक सिक्के के दो पहलू सदैव रहना चाहिए क्योंकि एक की भी उपेक्षा समाज के संतुलन को समाप्त कर देगी। दरअसल स्वतंत्रता का अर्थ बराबरी, आज़ादी, आदर और सम्मान होना चाहिए। ज़रूरत पुरुष की सामंती सोच और शोषण से मुक्त होने की है। बात बादशाहत की नहीं, बराबरी की होनी चाहिए। नासिरा शर्मा पुरुष समाज से नारी–अस्मिता के लिए यही आह्वान करती हैं, "इस दौर में जब औरत मर्द के बराबर हर कार्यक्षेत्र में काम कर रही है, तो उसको अपने व्यक्तिगत जीवन में ऐसे साथी की तलाश होती है, जो उसकी प्रोफेशनल परेशानियों को समझे, उस पर संदेह करने की जगह उसके सहकर्मियों से ठीक तरह से व्यवहार करे और ज़रूरत पड़ने पर घर और बच्चों की जिम्मेदारी भी बराबर से निभाए।" स्त्री–अस्मिता विमर्श विषयक समस्त विवेचन के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि स्त्री–अस्मिता से तात्पर्य स्त्री की अपनी मूलभूत पहचान को प्राप्त करने का दावा है जिसके लिए नारी निरन्तर प्रयास रत है। प्रभा खेतान "यदि स्त्री और पुरुष एक दूसरे को बराबर का साथी समझें, थोड़ा विनय और औदार्य रखें और यदि वे अहंमन्यताजन्य हार–जीत की प्रवृत्ति का उन्मूलन कर सकें, तो परपीड़न या आत्म–पीड़न की प्रवृत्तियों से छुटकारा पा सकते हैं।" स्त्रियाँ जिस तरह से राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर एकजुट होकर, अपनी समस्याओं पर खुलकर विचार–विमर्श करते हुए और उसके समाधान के लिए जिस प्रकार आपसी सहयोग को अग्रसर हैं, उसे देखकर यह लगता है कि वह दिन दूर नहीं जब वह पुरुष को भी अपने सहयोग के लिए तैयार कर लेगी और बाकी रहते आयामों को भी हासिल कर लेगी।

## 10.5 ग्लोबल गाँव के देवता में स्त्री–विमर्श

उपन्यास 'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास में स्त्री की स्थिति के विवेचन से पहले आदिवासी समाज में स्त्री की स्थिति कैसी है उसका वर्णन करेंगे। आदिवासी समाज में स्त्री–पुरुष समानता का प्रचलन है। स्त्री को भी पुरुषों

के बराबर अधिकार दिए गए हैं। अपने समाज में स्वतंत्र और निडर जीवन जीने वाली आदिवासी स्त्री की विडंबना यह है कि मुख्यधारा के लोगों के शोषण की वह शिकार होती रही है।

रणेन्द्र के उपन्यास 'ग्लोबल गाँव के देवता' में आदिवासी स्त्री के जीवन का यथार्थ चित्रण हुआ है जहाँ उसके समाज में उसकी स्थिति से उपन्यासकार अवगत करवाता है वहीं मुख्यधारा के समाज में भी उसकी स्थिति का यथार्थ चित्रण करता है। आदिवासी स्त्री को समाज के भ्रष्ट शासक और लोग निरीह और हर समय उपलब्ध जानकर इसका शोषण करते हैं। यह भी सत्य है कि अपने समाज में स्वतंत्र और शक्तिशाली होते हुए भी मुख्यधारा के लोगों द्वारा शोषित और प्रताड़ित है।

विवेच्य उपन्यास रणेन्द्र ने आदिवासी समाज में स्त्री के मान–सम्मान का चित्रण किया है जहाँ असुर समुदाय में स्त्रियों को पूर्ण सम्मान प्राप्त है वहाँ इन्हें 'जनानी' न कहकर 'सयानी' कहा जाता है – "महिलाएँ इस समाज में सियानी कहलाती थीं, जनानी नहीं। जनानी शब्द कहीं न कहीं केवल जनन, जन्म देने की प्रक्रिया तक उन्हें संकुचित करता, जबकि सियानी शब्द उनकी विशेष समझदारी–सयानेपन को इंगित करता मालूम होता।" (पृ.–23) स्पष्ट है कि अपने समाज में इनका सम्मान उस सशक्त नारी के रूप में है जो जीवन का संचालन करती है। आदिवासी असुर समुदाय स्त्री को भोग की वस्तु न मानकर सियानी के रूप में स्वीकार करता है।

अपने समाज में स्वतंत्र आदिवासी स्त्री को किसी प्रकार के बंधनों में न रखकर आदिवासी समाज सम्मान देता है। ललिता के मुंह से 'लिविंग टुगेदर' की बात सुन अचम्भित हुए कथावाचक को वह स्पष्ट करती है – "लेकिन ललिता का कहना था कि आपकी ही दुनिया के लिए नयी बात थी और अभी–अभी फैशन में आई थी। आदिवासी समाज में तो यह बहुत पुराने दिनों से मान्य है। विवाह में किसी भी तरह की कठिनाई आ रही हो, तो लड़का–लड़की साथ–साथ रहना शुरू कर देते हैं।" (पृ.–76) स्पष्ट है कि आदिवासी समाज स्त्री को स्वतंत्र रखता है और समान अधिकार देता है।

अपने परिवार का पालन–पोषण करती ये स्त्रियाँ कष्टों को सहन करते हुए भी कर्मठता से लगी रहतीं। उपन्यास में कथावाचक के साथ वार्तालाप करता रुमझुम कहता है – "पानी और जलावन जुटाने में ही हमारी औरतों की आधी ज़िन्दगी गुज़र जाती है।" (पृ.–17) ये आदिवासी स्त्रियाँ इस तरह अपने जीवन का निर्वाहन करती चलती हैं। असुर आदिवासी टोले की ये स्त्रियाँ अपनी संस्कृति को संजोय रखने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। स्त्रियाँ अपने घर दीवारों की लीपा पोती में भी अपनी संस्कृति को उभारती हैं – "कभी–कभी लगता, यह धरती, सूरज, चाँद, सितारे, कई–कई सूरज, कई–कई चाँद, हमारा पूरा ब्रह्मांड, हमारी अपनी आकाशगंगा और पूरे कायनात की लाखों–करोड़ों आकाशगंगाओं के अनन्त ब्रह्मांड, सबके सब किसी स्त्री की हथेलियों से घुमेर लेकर आदि अनन्त काल से नाचते जा रहे हैं। इस अलौकिक नाच पर भी एक स्त्री की ही घूमती हथेलियों की छाप है।" (पृ.–23)

आदिवासी स्त्री का शोषण, पथभ्रष्टता, संघर्ष और चेतना के महत्वपूर्ण पहलुओं को उपन्यासकार ने 'ग्लोबल गाँव के देवता' में चित्रित किया है। आदिवासी स्त्रियों का शोषण किसी न किसी रूप में मुख्यधारा के लोग करते हैं।

उपन्यासकार ने सरकार की उस योजना का खुलासा किया है जो आदिम जाति की बच्चियों के लिए शिक्षा की व्यवस्था करती हैं किंतु वास्तविकता कुछ और ही है। लालचन और रुमझुम बताते हैं – "भौंरपाट स्कूल आदिम जाति परिवार की बच्चियों के लिए खोला गया था। किन्तु उसमें पढ़ने वाली असुर–बरिजिया बच्चियों की संख्या दस प्रतिशत से ज़्यादा नहीं थी।" (पश्.–20) यह माना जाता है कि शिक्षा ही वह माध्यम है जिससे व्यक्ति सजग रहकर सही निर्णय की क्षमता को प्राप्त करता है परंतु सत्य यह है कि आदिवासी स्त्रियों की शिक्षा–व्यवस्था भ्रष्टाचार के चलते वास्तविक उद्देश्य को प्राप्त ही नहीं कर पाई। आदिवासी टोले के लालचन–रुमझुम की मेहनत से असुर–बिरिजिया और कोरबा आदिम परिवार की सड़सठ बच्चियों का एडमिशन हुआ।

स्त्री–विमर्श की दृष्टि से यदि विवेच्य उपन्यास की परख की जाए तो 'ग्लोबल गाँव के देवता' में लेखक ने इन आदिवासी स्त्रियों के शोषण, संघर्ष और चेतना को उकेरा है। आदिवासी स्त्रियों का शोषण आम बात है। उपन्यास इन स्त्रियों के शोषण के चित्रण से अटा पड़ा है। अपने ही असुर समाज के रामचन के चरित्र का उद्घाटन उपन्यासकार ने किया है जो आदिवासी स्त्रियों को मेठ–मुंशी तक काम करने के बहाने पहुँचाता लेकिन वहाँ उनका शोषण होता – "सबको डेरा में काम के लिए असुर लड़कियाँ ही चाहिए थीं। क्यों चाहिए यह बताने की ज़रूरत थोड़े है। रामचन जैसे बिगड़ैल असुर जवान ही उनके हथियार बनते और बड़ी आसानी से एक–एक डेरा में दो–दो तीन लड़कियाँ खटती दिख जातीं।"(पृ.–26)

आदिवासी समाज अपनी स्त्री के इस शोषण के कारण चिंतित है। जहाँ अपने समाज के लोग भी उसमें शामिल हो जाएं तो चिंता और बढ़ जाती है। उनके जीवन की त्रासदी यह है कि इन लोगों के जीवन में न जमीनें अपनी रहीं और न ही इनका जीवन अपना रहा। इनसे ये सब कुछ छीना जा रहा था। लेखक के शब्दों में – "नष्ट करने की प्रक्रिया तो आज भी जारी है, ज़मीन और बेटियाँ चुप–चुप, शान्त–शान्त, किन्तु रोज़ छीनी जा रही हैं।" (पृ.–34)

आदिवासी क्षेत्रों में पुलिस व्यवस्था भी इन कमज़ोर पक्ष के लोगों का साथ देने की अपेक्षा ताकतवरों का साथ ही देती है। अवैध खनन के मसले को लेकर आदिवासी समुदाय के लोगों द्वारा इसलिए जनता–कर्फ़्यू लगा दिया गया ताकि पुलिस उनकी बहु–बेटियों का शोषण न कर सके – "अन्दर गाँवों में पुलिस प्रशासन का आना–जाना बन्द। गिरफ़्तारी के बहाने घरों में घुसते हैं और बेटी–बहुओं का दुरगिंजन करते हैं।" (पृ.–81)

सिंहवा के साथ मिलकर रामचन इन आदिवासी लड़कियों को बहला–फुसला कर, बड़े–बड़े सब्ज़बाग दिखाकर उनका लाभ उठाते और दलालों के हाथ इन्हें बेच देते – "उसके हरामी दलाल घर–घर सूँघा करते। कोई बाहरी जन दलाल थोड़े थे। यही रामचन जैसे घरे–गाँव के आदमी दलाली करते थे। कच्ची उम्र की लड़कीमन को फुसलाना। दिल्ली–कलकत्ता का सब्ज़बाग दिखाना कृ खरीफ कटनी के बाद का हाट बाज़ार ऐसने दलालों से भरा रहता।" (पृ.–30)

गोनू उर्फ़ गणेशवर सिंह राजपूत भी उपन्यास का ऐसा पात्र है जो स्त्री का भोग करता है और केवल इतना ही नहीं अपितु कई ऐसी रखनिया रखीं थी और यहाँ तक कि उनकी बेटियों को भी इस्तेमाल करता था ताकि वह अपने

स्वार्थ साध सके – "रखनियों की जवान बेटियों का भी भरपूर इस्तेमाल करता। किसको थाना के बड़ा बाबू से सटाना है, किसको बी.डी.ओ. साहब के लिए बचाना है और कौन विधायक जी के नाइट हाल्ट में गोड़ दबाएगी?" (पृ.–36)

आर्थिक व्यवस्था का चरमरा जाना भी कहीं न कहीं इन स्त्रियों की बदहाली का कारण बन जाता। गरीबी की मार के कारण भी ये स्त्रियाँ धोखे में आ जातीं। रामरति के माध्यम से लेखक ने स्पष्ट किया है कि वह छुतहा रोग की तरह फैल रही थी – "ठीक ही बात है कि घर में तीन–चार माह से ज़्यादा का अनाज नहीं हो तो कौन बेटों को गाँव छोड़ने और बेटियों को डेरा में काम के बहाने रखनी बनने से रोक सकता है?" (पृ.–39)

असुर समुदाय के नौजवान भी इस स्थिति से चिन्तित हैं इसलिए वे भी अपनी असुरिनों को समझने की कोशिश करते कि इन खदान के मेठों के साथ नज़रें न मिलाओ। इसी स्थिति को स्पष्ट करता यह गीत उपन्यास में दर्ज है।

"काठी बेचे गेले असुरिन,
बाँस बेचे गेले गे,
मेठ संगे नजर मिलयले,
मुंशी संग लासा लगयले गे।" (पृ.–38)

शिंडाल्को कम्पनी सखुआपाट का मैनेजर श्री किशन कन्हैया पांडेय भी स्त्री शोषण में शामिल हैं। उसकी रसिकता का खुलासा उपन्यास में हुआ है – "उनके लिए मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा या अतिश्वेता और अतिकृष्णा कोई भी अगम्या नहीं थी। सोवियत रूस के विघटन के बाद दिल्ली के सस्ते होटलों में अतिश्वेताओं की भरमार थी, जिनके मोबाइल नम्बर इनकी डायरी की शोभा बढ़ाया करते।" (पृ.–53)

जहाँ मेठ, मुंशी और सरकारी संचालक इस शोषण में लिप्त थे वहीं उपन्यासकार ने कंठी बाबा शिवदास का चरित्र भी उकेरा है जो धर्म की आड़ में आदिवासी बच्चियों का शोषण करता है। वह इस काम को अंजाम देता जिससे कोई भी उसका कुछ बिगाड़ नहीं पाता। कोयलबीघा में वह आश्रम–विद्यालय चलाता है और स्कूल में पढ़ने वाली बच्चियों का शोषण करता है। लालचन की बेटियाँ कविता–नमिता उसके शोषण का शिकार होती हैं। जब पता चलता है कि कविता नमिता जब से आश्रम से होकर लौटी हैं तब से बीमार हो तो जब उनका इलाज करने आए डॉ. रामकुमार को पता चलता है कि वे आश्रम से लौटने के बाद से ही गुमसुम है तो वे – "भुनभुनाने लगे कि डायन भी सात घर छोड़कर खाती है, लेकिन ई बबवा साला राक्षस है राक्षस। जरूर ई बच्ची लोग को रात में पैर दबाने के लिए बुलाया होगा। उसके बाद ही छोटी बच्चियाँ पथरा जाती हैं। दर्जनों ऐसे केस उस आश्रम में मैं देख चुका हूँ।" (पृ.–69) यह झूठे बाबा के भेस में उसका चरित्र है जो शोषण करता है परन्तु धार्मिक चोला पहनकर।

जहाँ उपन्यास में नारी शोषण का चित्रण हुआ है वहीं सजग और कर्मठ नारियाँ भी उपन्यास में चित्रित हुई हैं – ऐतवारी, बुधनी, ललिता, लालचन की पत्नी ऐसी ही स्त्रियाँ हैं जो अपनी चेतना से न केवल स्त्री–शोषण के विरुद्ध संघर्ष करती हैं अपितु सशक्त बनकर उभरती हैं।

बुधनी और ललिता उपन्यास की प्रमुख स्त्री पात्र हैं। बुधनी की कर्मठता और ललिता का आदिवासी होते हुए भी शिक्षित होना और अपने समुदाय के लिए सतर्कता से सोचना स्त्री–विमर्श के पैरोकार पहलू हैं।

बुधनी अपने पति की दिमागी हालत कमज़ोर होते हुए भी स्वयं काम कर बच्चों का पालन–पोषण करती है। असम–भूटान जाकर वह काम कर बच्चों का पेट पालती है परन्तु जब उसे वहाँ हिंसा फैल जाने के कारण सब छोड़कर आना पड़ा तब भी अपने दिमागी संतुलन को बनाए रखकर प्रतिकूल परिस्थितियों से उभरती है – "सियानी बुधनी उस खौफनाक मंज़र और भयावह भगदड़ में भी बैंक के बचत खाते, डेरे में रखी नगदी और गहने लेना नहीं भूली थी। (पृ.–30)

असम से सखुआपाट आकर वह चाय की दुकान चलाती है और अपने परिवार का भरण–पोषण करती है। बुधनी केवल परिवार तक ही सीमित स्त्री नहीं है अपितु वह आदिवासियों के अधिकारों के लिए हो रहे संघर्ष में उनके साथ खड़ी होती है। अंत में वह भी बिछायी गयी माइंस के फटने पर शहीद हो जाती है।

ललिता उपन्यास की सशक्त स्त्री पात्र है जो शिक्षित है और अपने समुदाय के लोगों के जीवन और उनके संघर्ष के प्रति पूर्ण रूप से सजग है। वह सुगढ़, निडर और संघर्षरत स्त्री के रूप में उपन्यास में हमारे सामने आती है। जब उसे पता चलता है कि उसकी बहनें कविता और नमिता बीमार हैं तो वह शिवदास बाबा के आश्रम पहुँच जाती है और जब बाबा का एक चेला उससे छेड़छाड़ की कोशिश करता है तो वह डरती नहीं अपितु पलट कर उसे थप्पड़ मार देती है। यही निडरता उसे संघर्ष की ओर अग्रसर करती है। वह अपने आदिवासी समुदाय के पुरुषों को भी सजग करना चाहती है ताकि वे अपने जीवन को व्यर्थ न गँवाए। रुमझुम के मानसिक संतुलन खो देने पर वह सोचती कि अपने समुदाय के पुरुषों को कैसे जागरुक किया जाए – "आज भी यह कंठी आन्दोलन, यह हवन–भजन, यह लँगटा बाबा – क्या है यह सब ? क्या काका सब समझते बूझते बेवकूफ़ नहीं बन रहे?" (पृ.–72)

अपनी संस्कृति और परम्पराओं के प्रति वह कितनी सजग है इसका चित्रण उपन्यासकार ने किया है। जब वह कथावाचक के साथ वार्तालाप करती है और अपनी सांस्कृतिक भिन्नता को अपने समुदाय की विशेषता बताती है – "हमारे महादेव यह पहाड़ है। यह पाट है, जो हमें पालता है। हमारी सरना माई न केवल सखुआ गाठ में बल्कि सारी वनस्पतियों में समायी हैं।" (पृ.–72)

अपने समुदाय के शोषण के प्रति वह चिंतित है और प्रशासन पर प्रश्न चिन्ह लगाती है और चाहती है कि आदिवासी अपने अधिकारों के प्रति सचेत हों। वह स्वयं भी अपने समुदाय के अधिकारों के प्रति सचेत है। उसकी बुद्धि इसीलिए प्रश्न उठाती है – "क्या तो आन्दोलन हुआ जेल भी गए। समझौता हुआ। कहाँ है समझौते की शर्तें? कहाँ हैं हमारे आजा (दादा) के हत्यारे?" (पृ.–72) वह अपने समाज के लोगों को सजग करती है और स्वयं भी उनके अधिकारों की प्राप्ति के लिए संघर्ष करती है किंतु जब वह इस संघर्ष में बलि चढ़ जाती है और बुधनी और वह अपने समुदाय के साथ लैंड माइंस के फटने पर मर जाती हैं।

लेखक इतिहास की ओर मुड़ता मणिपुर के कस्बे मलोम की कथा को भी जोड़ता है कि वहाँ की 34 वर्षीय बेटी इरोम शर्मिला सशस्त्र बल के विशेषाधिकार कानून के विरोध में पिछले लगभग सात वर्षों से आमरण अनशन पर है। केरल की सी.के. जानू हो या महाराष्ट्र की सुरेखा दलवी, मध्यप्रदेश की दुवसिया देवी, छिन्दवाड़ा गोंड गाँव की दयाबाई सभी आदिवासी स्त्रियाँ अपने अधिकारों के लिए जंग करती दिखाई देती हैं। कथावाचक के शब्दों में – "धरती भी स्त्री, प्रकृति भी स्त्री, सरना भाई भी स्त्री और उसके लिए लड़ाई लड़ती सत्यभामा, इरोम शर्मिला, सी.के. जानू, सुरेखा ढलबी और यहाँ पाट में बुधनी दी और सहिया ललिता भी स्त्री। शायद स्त्री ही स्त्री की व्यथा समझती है।" (पृ.–92)

## 10.6 उपसंहार

विद्यार्थियो निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि उपन्यास 'ग्लोबल गाँव के देवता' में आदवासी स्त्री के जीवन, संघर्ष और चेतना का चित्रण हुआ है। आदिवासी स्त्री के जीवन का चित्रण प्रत्येक कोण से चित्रण विवेच्य उपन्यास में हुआ है। जहाँ अपने समाज में आदिवासी स्त्रियाँ सम्मानपूर्वक जीवन बिताती हैं वहीं गैर–आदिवासियों की उनके जीवन में घुसपैठ उन्हें शोषण के अँधेरे कुएं में धकेलती है। शोषण से मुक्ति के प्रयासों के बावजूद जनजातीय महिलाएँ शोषण की शिकार हैं।

## 10.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. स्त्री–विमर्श की दृष्टि से उपन्यास 'ग्लोबल गाँव के देवता' की समीक्षा कीजिए?

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

2. 'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास में आदिवासी स्त्री के शोषण का चित्रण हुआ है स्पष्ट कीजिए?

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

## 10.8 सहायक ग्रन्थ


1. अस्मिता–विमर्श का स्त्री–स्वर – अर्चना वर्मा – मेधा बुक्स, दिल्ली, 2008
2. आदिवासी विकास एक सैद्धान्तिक विवेचन – डॉ. ब्रह्मदेव शर्मा, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 1982


******

# 'ग्लोबल गाँव के देवता' में आदिवासी विमर्श

11.1 भूमिका

11.2 उद्देश्य

11.3 आदिवासी शब्द का अर्थ

11.4 विमर्श शब्द का अर्थ

11.5 आदिवासी–विमर्श का अर्थ एवं इतिहास

11.6 'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास में आदिवासी विमर्श

11.7 उपसंहार

11.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

11.9 सहायक ग्रन्थ

## 11.1 भूमिका

'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास में उपन्यासकार ने आदिवासियों के जीवन, संघर्ष, चेतना और विरोध का चित्रण किया है। आदिवासी समुदाय के प्रति फैले भ्रमों और मिथकों को दूर करने का प्रयास करने के साथ–साथ उनके अस्तित्व और अस्मिता पर आए संकट का यथार्थ चित्रण किया है। आदिवासी जीवन की त्रासदी यह है कि इनका शोषण कर इन्हें मिटाने की प्रक्रिया ज़ोर पकड़ती गई। ऐसे ही प्रश्नों को उठाता विवेच्य उपन्यास आदिवासी जीवन का चित्रण करता है।

## 11.2 उद्देश्य

इस पाठ में आप आदिवासी और विमर्श शब्द के अर्थ से परिचित हो सकेंगे।

- आदिवासी–विमर्श के इतिहास को जान सकेंगे।
- आदिवासी–विमर्श को 'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास के संदर्भ में समझ सकेंगे।

## 11.3 आदिवासी शब्द का अर्थ

'आदिवासी' शब्द दो शब्दों के मेल से बना है आदि+वासी। 'आदि' का अर्थ है – 'आरम्भ से' और 'वासी' का अर्थ है 'रहने वाला'। अतः 'आदिवासी' का अर्थ हुआ वह जो किसी भी क्षेत्र में आरंभ से रहते आए हों। 'मानक हिंदी कोश' के अनुसार – "किसी देश या प्रांत के वे निवासी जो बहुत पहले से वहाँ रहते आये हों और जिनके बाद और लोग भी वहाँ आकर बसे हों।" 'सहज समांतर कोश' में इस शब्द का अर्थ दिया गया है "अदिम वासी, गोंड, टोडा, पुरातन जन, पुरानेवासी, प्रारंभिक वासी, भील, मुंडा, शबर, संथाल। कबायली, गुहावासी, मूल आवासी, वनवासी।" आधुनिक भारत में उड़ीसा, बिहार, मध्यप्रदेश आदि में रहने वाली ओराँव, खरिया, पहाड़िया, मुंडा, संथाल आदि पुरानी जन–जातियाँ।" दूसरी कोटि के व्यक्तियों के लिए किसी क्षेत्र का मूल निवासी होना आवश्यक नहीं है।" 'बृहत् हिन्दी कोश' में आदिवासी शब्द का अर्थ है "किसी देश का मूल निवासी।" 'नालन्दा विशाल शब्दसागर' में आदिवासी शब्द का अर्थ इस प्रकार मिलता है "मूलनिवासी। किसी प्रदेश या राज्य के मूल निवासी।" आदिवासी शब्द के उपर्युक्त अर्थों के आधार पर कहा जा सकता है कि किसी देश–प्रांत के वह निवासी जो बहुत पहले से वहाँ रहते आए हों और वहाँ के मूल निवासी हों आदिवासी कहलाते हैं और उनके बाद और भी आकर बसे हों। ये मुख्यधारा से पिछड़े हुए लोग हैं जो अभावग्रस्त जीवन जीते हैं। कुछ आदिवासी जातियाँ आज शहरी संपर्क में आई हैं और मज़दूरी करके अपना जीवन चला रही हैं। अनपढ़ता, अज्ञानता और अंधश्रद्धा के कारण ये लोग सभ्यता की दौड़ से पिछड़ गए हैं और जंगली जीवन जीने को अभिशप्त हैं। ये आदिवासी जनजातियाँ एक–दूसरे से अनेक अर्थों में भिन्न होती हैं और अपनी संस्कृति और विश्वासों के आधार पर अपना जीवन जीती हैं।

'भारतीय संस्कृति कोश' के अनुसार – "ऐसे निवासी जो किसी क्षेत्र के मूल निवासी हों और ऐसे निवासी जो प्राचीनतम निवासी हों।" अतः आदिवासी शब्द के उपर्युक्त अर्थों के आधार पर कहा जा सकता है कि किसी देश–प्रांत के वह निवासी जो बहुत पहले से वहाँ रहते आए हों और वहाँ के मूल निवासी हों आदिवासी कहलाते हैं। ये समूहों में रहने वाले वे समुदाय हैं जो विशिष्ट पर्यावरण में, विशिष्ट भाषा बोलने वाले, विशिष्ट जीवन पद्धति तथा परम्पराओं को वहन करने वाले होते हैं। इन्हें 'भूमिपुत्र', 'वनपुत्र', 'आदिपुत्र' नाम से भी जाना जाता है। सदियों से जंगलों में वास करने वाले, वन संस्कृति में अपना जीवन निर्वाह करने वाले ये समुदाय 'वनवासी' के रूप में पहचाने जाते हैं।

## 11.4 विमर्श शब्द का अर्थ

' मानक हिंदी कोश' में विमर्श का अर्थ विचारण, आलोचना, व्याकुलता, क्षोभ और उद्वेग है।"

अंग्रेजी हिन्दी शब्दकोश में 'विमर्श' का अर्थ भाषण, प्रवचन, प्रबंध दिया गया है।

ऑक्सफोर्ड अंग्रेजी कोश में भी 'डिस्कोर्स' ;क्पेबवनतेमद्ध शब्द का अर्थ – भाषण या बातचीत ही है।

उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर हम कह सकते हैं कि भाषण, परीक्षा, आलोचना, विचारण, विवेचन, गुणदोष की मीमांसा आदि शब्द विमर्श के समानार्थी हैं। सभी कोशों में 'विमर्श' शब्द का अर्थ किसी न किसी प्रकार बातचीत या विचार–विवेचन से ही जुड़ा है। 'विमर्श' शब्द से जहाँ बातचीत वार्तालाप इत्यादि अर्थ सामने आते हैं वहीं साहित्यिक रूप में इसका अर्थ है किसी विषय का गहन विवेचन–विश्लेषण कर अन्ततः तर्क–संगत निर्णय पर पहुँचने का प्रयत्न। विमर्श शब्द जहाँ जागरुकता का परिचायक है वहीं यह सामाजिक स्तर पर समस्या से निजात भी दिलवाता है।

## 11.5 आदिवासी–विमर्श का अर्थ

आदिवासी विमर्श से अभिप्राय है इन समुदायों का प्रत्येक कोण से निरीक्षण, इनकी समस्याओं को समझना और हाशिए पर चले गए इनके अस्तित्व और अस्मिता के लिए विमर्श करना। इनके अस्तित्व के संकट और मिटती पहचान ने इन प्रश्नों को जन्म दिया कि यदि ये समुदाय शोषित, पीड़ित और उपेक्षित हैं तो इन्हें किस तरह इस स्थिति से उभार कर इनकी रक्षा हो सके। भारतीय संविधान में इन्हें 'अनुसूचित जनजाति' कहकर इनके लिए विशेष अधिकारों का प्रावधान किया गया है। इन प्रावधानों के होते हुए भी सदियों से ये समुदाय शोषण सहन करते आ रहे हैं।

## आदिवासी अस्मिता–विमर्श

भारत की प्रमुख जनजातियाँ हैं संथाल, भील, थारु, खस, हो, खासी, गोंड, उरांव, नागा, मीणा, मुंडा इत्यादि। ये जातियाँ जिन क्षेत्रों में पाई जाती हैं वे हैं आंध्रप्रदेश, बिहार, झारखंड, गुजरात, महाराष्ट्र, केरल, उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, मणिपुर, त्रिपुरा, हिमाचल प्रदेश, पश्चिम बंगाल और मैसूर इत्यादि। भारत अनेक जातियों–जनजातियों, धर्मों, संस्कृतियों और सम्प्रदायों का भंडार है। आर्यों का भारत आगमन, आर्यों और अनार्यों के मध्य चला लम्बा संघर्ष और आर्यों द्वारा अनार्य आदिवासियों पर अत्याचार, उनका क्रूर संहार इतिहास की ऐसी घटनाएं हैं जिन्हें भुलाना मुश्किल है। आदिवासियों की सामाजिक दुर्दशा का आरम्भ यहीं से होता है। इन्हीं त्रासदीपूर्ण घटनाओं के कारण वे समाज से पिछड़ गए और वनों की तरफ भाग गए। वनों में रहते–रहते इन्हें सैंकड़ों वर्ष बीत गए। इन्हें दैत्य, पिशाच, राक्षस और असुर आदि उपहासपूर्ण शब्दों से संबोधित कर समाज में इनका भ्रमपूर्ण अस्तित्व कायम कर दिया गया। आधुनिक भारत की रचना में जहाँ अन्य जातियों और समूहों का योगदान है वहीं आदिम जनजातियों का भी उतना ही योगदान है। "आज की मानव संस्कृति की विविधता की नींव इस आदिवासी अवस्था में ही पड़ी।" 'सबसे पहले मुगल शासन काल में भूमि सम्बन्धी आदिवासियों की पारम्परिक व्यवस्था पर जबरन प्रहार किया गया और 1616 ई. में जहाँगीर के शासनकाल में छोटा नागपुर पर चढ़ाई कर वहाँ के राजा दुर्जन को बन्दी बनाया गया और उसकी रिहाई के बदले उसे कर देने पर विवश किया गया।' 1765 में जब ईस्ट इंडिया कम्पनी को बिहार, बंगाल और उड़ीसा की दीवानी मिली तो नागपुर का इलाका भी स्वभावतः उसकी दीवानी में आ गया और राजा अब इस कंपनी को कर देने लगा। ब्रिटिश शासन का व्यापार जब भारत में बढ़ा तो उन्होंने भारत में रेलवे विस्तार की आवश्यकता महसूस की। वन–वृक्षों पर उन्होंने धावा बोल दिया और इस सम्पदा को नष्ट किया जाने लगा। अंग्रेजों ने पूरे भारत में रेल लाइनों का जाल बिछा दिया। जंगलों का एकाधिकार इन शासकों ने अपने हाथों में ले लिया। जंगलों को 'इम्पीरियल फोरेस्ट डिपार्टमेंट' के निजी नियंत्रण

में सौंप दिया गया। जब वनों पर कानून बनने लगे तो आदिवासियों का वनों पर अधिकार छिनने लगा। धीरे–धीरे अंग्रेजों ने जागीरदारों और जमीदारों को लगान वसूलने के अधिकार दे दिए। आदिवासियों की जमीने हथिया ली गई और वे भूमिहीन हो गए। इन प्रतिकूल परिस्थितियों के उत्पन्न होने के कारण आदिवासी आक्रोश से भर गए और अपने अस्तित्व और अधिकारों को प्राप्त करने के लिए उन्होंने आंदोलन भी किए। "19 वीं सदी में हुआ कोल विद्रोह, चुआड़–विद्रोह, संथाल हूल और बिरसा मुंडा का उलगुलान आदि राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन के साथ–साथ एक सशक्त सामाजिक–सांस्कृतिक पुनर्जागरण के आन्दोलन भी थे, जो ब्रिटिश साम्राज्यवादी शासन के खिलाफ झारखंड क्षेत्र में लड़े गए थे।" आज़ादी के बाद आदिवासियों के मन में यह आशा जागी थी कि अब उनको अपने अधिकार प्राप्त हो जाएंगे परन्तु कुछ भी आशानुरूप न हुआ। "आजादी के बाद की सरकार ने न केवल साम्राज्यवादी सरकार के सिद्धांतों को दोहराया बल्कि उन्हें और भी सशक्त और सबल बनाया, जिसका नतीजा हुआ वन में रहने वाले आदिवासियों का विस्थापन व पलायन और जंगल पर राज्य के वन–विभाग का एकाधिकार स्थापित होना।" आज़ादी के बाद भारत सरकार ने इनकी रक्षा करने की अपेक्षा अंग्रेजों द्वारा बनाए कानूनों को और भी सख्ती से लागू करना शुरू कर दिया। उनकी पीड़ा और उनके अधिकारों को सरकार ने नहीं समझा। "1978 में सिंहभूम में जंगल आन्दोलन छिड़ गया। इसी बीच 18 पुलिस गोलीकांड हुए जिसमें बहुत से आदिवासियों के घर उजाड़ दिए गए।" उन्हें झूठे मुकद्दमों में फँसाया गया। उनकी पीड़ा का मुख्य कारण था उन्हें उनके पूर्वजों के गाँवों से विस्थापित करना और जंगलों के परम्परागत स्वामित्व से वंचित किया जाना। सरकार की इन नीतियों के कारण आदिवासी जमीन के मालिक बनने की बजाए मजदूर बनने पर विवश हो गए। स्वतन्त्रता की लड़ाई में आदिवासियों ने बहुत योगदान दिया था परन्तु उनके नाम को कहीं पर भी आगे नहीं लाया गया बल्कि उनके बचे–खुचे अधिकारों का भी हनन होने लगा। सदियों से इन्हें खदेड़ा जा रहा है। इनके विकास की ओर ध्यान देने की अपेक्षा उनका शोषण और दोहन जारी रहा। अपनी संस्कृति और सभ्यता को ये लोग बढ़ावा देकर सुरक्षित रखना चाहते थे परन्तु मजबूरन उन्हें अपनी संस्कृति से दूर होना पड़ा क्योंकि उन्हें अपनी ज़मीन से जुड़ने नहीं दिया गया। उन्हें हमेशा असभ्य, जंगली कहकर हीन भावना से ग्रसित किया गया। औद्योगिक विकास के नाम पर नयी योजनाओं को भारतीय शासकों ने लागू किया। इन योजनाओं ने विकास से ज़्यादा विनाश किया जिसे हमेशा नज़रअन्दाज किया गया। गरीबी दूर करने के नाम पर शुरू की गई इन योजनाओं ने उन्हें भूमि से बेदखल कर दिया और वे ठोकरें खाने को मजबूर हो गये। झारखंड में लागू इन योजनाओं के कारण आदिवासियों की ज़मीन ले ली गई। "पिछले पाँच दशक में विभिन्न विकास की योजनाओं के नाम पर झारखंड में करोड़ों लोग विस्थापित हुए।" इस तरह विकास के नाम पर लागू की गई योजनाओं के कारण कई मामले प्रकाश में आए जो आदिवासी समुदायों की पीड़ा को ब्यान करते हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सबसे बड़ी आशा की किरण पंडित जवाहरलाल नेहरु ने आदिवासियों के विकास के लिये पंचशील का प्रस्ताव दिया। इस प्रस्ताव में उन्होंने इस बात को महत्त्व दिया था कि आदिवासियों को अपनी प्रवृत्ति और प्रतिभा के आधार पर विकसित होने का अवसर देना चाहिए। पहली पंचवर्षीय योजना से आदिवासियों के विकास के लिए कार्य शुरू किया गया परन्तु अफसोस की बात यह है कि इन योजनाओं में किया जाने वाला व्यय दिन प्रतिदिन बढ़ने की बजाय कम होता चला गया। "आर्थिक दृष्टिकोण से इस पर क्रमशः कुल योजना व्यय का 1.04 प्रतिशत, 0.96 प्रतिशत,

0.75 प्रतिशत, तथा 0.5 प्रतिशत खर्च हुआ। यह उत्तरोत्तर आठवीं और नवीं पंचवर्षीय योजना तक घटता चला गया।" आदिवासी कबीलों के अधिकारों के संरक्षण और उन्हें उनके अधिकारों को प्राप्त करवाने के लिए समय–समय पर संविधान में प्रावधान दिए गए। यह भी सत्य है कि इन प्रावधानों का उल्लंघन भी समय–समय पर होता रहा है।

संविधान निर्माताओं ने आदिवासियों के हितों को ध्यान में रखते हुए पाँचवी अनुसूची में यह कहा है कि राज्यपाल अन्य बातों के साथ–साथ संविधान में अन्य किसी उपबंध के होने पर भी अनुसूचित क्षेत्रों में भूमि–हस्तांतरण का प्रतिरोध कर सकेगा या उस पर प्रतिबंध लगा सकेगा। सच्चाई यह है कि कानून बना देना समस्या का हल नहीं है। सरकार ने कानून तो बना दिए परन्तु उसे व्यावहारिक रूप से अमल में लाने के प्रयास नहीं किए गए। आदिवासियों की जमीनें इन कानूनों के होते हुए भी हस्तांतरित होती रही हैं। कानून बनने के बाद भी भूमि का हस्तांतरण जारी रहा। "झारखंड हो या छत्तीसगढ़ या अन्य आदिवासी क्षेत्र, इन क्षेत्रों में जमीनों को लेकर नारा लगाया गया 'हड़पी हुई जमीनों को वापस करो'। झारखंड की सरकार ने इन मुद्दों को सुलझाने के लिए एक कमेटी का गठन किया जो इस उद्देश्य से गठित की गई ताकि नई–आर्थिक–औद्योगिक एवं कृषि–नीति को लागू करने के लिए जमीन का हस्तांतरण आसान बनाया जा सके।' 'छोटानागपुर कास्तकारी अधिनियम, 1908 का कहना है कि आदिवासी की जमीन गैर–आदिवासी नहीं ले सकता। किसी भी किस्म की जमीन का हस्तांतरण गैर–कानूनी कहा गया। आदिवासी सात वर्ष के लिए किसी को भी 'भुगुत–बंधक' दे सकता है।' सात वर्ष बीत जाने पर जमीन खतियानी रैयत के पक्ष में निर्मुक्त होने का कानून है। जरपेशगी की मियाद पाँच साल कर दी गई। इसमें भी मियाद के बाद खतियानी रैयत के पक्ष में जमीन हो जाने का कानून है। वास्तविक स्थिति में इसके उल्ट हुआ है क्योंकि कानून की परवाह किए बिना गैर आदिवासियों ने आदिवासी किसानों से नब्बे साल और पंचानवे साल के लिए जरपेशगी लिखवा ली। कहीं–कहीं तो ता–मियाद जरपेशगी लिखा ली गई। अन्ततः हुआ यह कि जमीन का सर्वे होने पर जिसके कब्जे में जमीन है, वही उसका मालिक होगा के नियम के आधार पर गैर–आदिवासी साहूकार मालिक बन बैठता है। "दूसरी तरफ 'बिहार अनुसूचित क्षेत्र अधिनियम' 1969, छोटानागपुर टेनेन्सी अधिनियम 1969 में भूमि वापसी तक का प्रावधान भी दिया गया लेकिन इसमें भी विडंबना यह रही कि आदिवासी को आदिवासी होने का प्रमाण–पत्र हासिल करना पड़ता है।" इसके साथ ही जमीन किस ढंग से हस्तांतरित की गई, उसकी किस्म, ठेका आदि का विवरण भी देना पड़ता है। यदि अवधि 30 साल से ऊपर हो जाती है, तो उसकी वापसी आदिवासी रैयत को नहीं होगी। 'अनुसूचित जाति एवं जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम 1989 में यह कहा गया कि आदिवासी भूमि के मालिक ने जो भूमि बंधक में दी है उसका उपभोग बंधकदार केवल एक अवधि विशेष के लिए कर सकता है परन्तु वास्तविकता यह है कि अवधि समाप्त होने के बाद भी वह भूमि, आदिवासी मालिक को वापिस नहीं दी गई।' महाजन–वर्ग ने पुलिस, प्रशासन और अपनी अन्य ताकतों का इस्तेमाल कर आदिवासियों को इस भूमि से वंचित रखा जिसके कारण उनके अधिकारों का हनन हुआ है।

"महाजनों से निरसित कराकर और उन हस्तांतरियों से भूमि पुनः ग्रहित कराने के बावजूद सरकार ने आदिवासियों को उस भूमि पर कब्जा नहीं दिलाया। इस तरह संविधान के 'अनुच्छेद – 19'(1) 'एफ' के अन्तर्गत मौलिक

अधिकार का हनन हुआ है।" अनेक प्रकार से एक्ट लागू होने पर भी आदिवासियों के शोषण का कोई अन्त नहीं था। कोल बियरिंग एरिया एक्ट, 1957 के तहत किसानों की जमीन को बिना नोटिस के अधिग्रहण करना शुरू कर दिया। उनके पुनर्वास व रोजगार की कोई व्यवस्था नहीं की गई। इस एक्ट के लागू होने से किसान, मजदूर सब तबाह होने लगे। उद्योगों और विकास के नाम पर जमीनों के बदले रोजगार नहीं बढ़े बल्कि बेरोजगारी बढ़ गई। किसानों और मजदूरों ने मिलकर इसके खिलाफ आन्दोलन चलाया पर सरकार ने कठोर रवैया अपनाकर थोड़ी–बहुत दी गई सुविधाायें भी वापिस लेनी शुरू कर दी। यही वे परिस्थितियाँ थीं, जिस कारण इन आदिवासी विस्थापितों ने अन्य विस्थापितों के साथ एकजुट होकर संघर्ष शुरू किया। इसके बाद जहाँ भी सरकारी परियोजना लागू होती या केवल जमीन की नपाई शुरू होती तो किसान रोजगार और पुनर्वास की मांगों के लिए संघर्ष शुरू कर देते।

बिरसा मुंडा आदिवासियों में मसीहा के रूप में प्रसिद्ध है। अपने समुदाय के पिछड़े लोगों को संगठित करने का पहला काम इन्होंने ही किया था। उनके हृदय में अपने अधिकारों को हासिल करने की चेतना इन्होंने ही जगाई थी। '1895 में बिरसा मुंडा ने विद्रोह का बिगुल बजाया और जमीदारों, ठेकेदारों और सरकार की अत्याचारी नीतियों के खिलाफ संघर्ष किया।' बिरसा के आंदोलन को समाप्त करने के लिए पुलिस ने भी कई अत्याचार किए परन्तु बिरसा के आंदोलन को रोकना आसान न था। बिरसा को पकड़ने के लिए उनके समर्थकों में फूट डाली गयी। कई मुंडा इनाम की लालच में आ गये जिस कारण पुलिस के लिए बिरसा को पकड़ना आसान हो गया। बिरसा को गिरफ्तार कर लिया गया परन्तु बिरसा ने कहा कि उन्होंने अपनी जाति अपने समुदाय के हाथों में हथियार दिये हैं जो उनकी रक्षा करेंगे। "आत्मविश्वास, शोषण के सामने आवाज उठाना, अपने राज्य के लिए लड़ना, जमीन की मालिकी के लिए प्रतिबद्ध कार्य किये थे बिरसा ने।" बिरसा आंदोलन की उपलब्धियाँ भी इतिहास में दर्ज हैं। झारखण्ड के आदिवासी अपनी जमीन के लिए निरन्तर संघर्ष करते रहे। बिरसा का आंदोलन महाजन, जमींदार, मिशनरियों तथा सरकार के खिलाफ था और यह आंदोलन परिवर्तन लाने में सफल रहा। 'इस आंदोलन के परिणामस्वरूप आदिवासियों और प्रशासन के अंतर को मिटाने के लिए 1902 गुमला अनुमंडल और 1905 में खुंटी अनुमंडल तैयार हुआ। झारखंड को अलग राज्य बनाने की मांग की गई और 1828 में यह मांग सबसे पहले सायमन कमीशन के सामने रखी गयी थी जो अन्ततः 2 अगस्त 2000 को लोकसभा में बिल के रूप में प्रस्तावित हुई और 15 नवंबर 2000 के दिन झारखंड राज्य की रचना हुई। बिरसा के नेतृत्व में जो आंदोलन आरंभ हुआ था आज उसके पुनः विस्तार की आवश्यकता है। आदिवासियों ने नए नेतृत्व की कमान संभाली है और अपनी स्वतंत्र अस्मिता तथा आत्मसम्मान के अहसास का निर्माण किया है। राज्यों के मंत्रीमंडल में भी आदिवासियों का समावेश हुआ है। इनकी राष्ट्रीय भावना भी बढ़ी है। आज वह दुबके और डरे हुए आदिवासी नहीं हैं अपितु अपने अस्तित्व की रक्षा हेतु जन सैलाब के रूप में उभरते हुए आदिवासी हैं। आदिवासियों का समुदाय आज अपने प्रति हो रहे शोषण को रोकना चाहता है और आदिवासी जनता, स्वयंसेवी संस्थाओं और संघर्षवादी संगठनों ने इसके विरुद्ध आवाज़ उठायी है। आदिवासियों को जमींदारों, जमीन हस्तांतरण और आर्थिक शोषण से मुक्त करने वाले कानून आए हैं। इन कानूनों से उन्हें कुछ राहत तो अवश्य मिली है परन्तु अभी भी शासन के दृष्टिकोण को बदलने की आवश्यकता है।

"कर्ज आबंटन योजना, साहूकारी नियंत्रण कानून, आदिवासी जमीन हस्तांतरण निषेध कानून, आदिवासियों के आर्थिक विकास नियम, एकाधिकार अनाज क्रय, न्यूक्लियस बजट, प्रशिक्षण योजना जैसी गारंटी अभी तक आदिवासियों को प्राप्त नहीं हो सकी है।" आदिवासियों के जीवन में निस्संदेह बदलाव आया तो है परन्तु गति धीमी है। उनका पारम्परिक जीवन बदला है। "सामान्य शिक्षा का प्रचार–प्रसार, राजनीतिक जागृति, कृषि–सुधार तथा बदलती कृषि को त्यागकर कायम कृषि करने की प्रवृत्ति, उपक्रमशीलता तथा हिसाब–वृत्ति, भविष्य का विचार तथा बढ़ती आवश्यकताओं की निर्मित भी आदिवासियों में बढ़ रही है।" इस बदलाव के साथ–साथ उनमें चेतना जागी है। वह नई–नई विचारध ाराओं से परिचित हुआ है। अपनी ही नई और पुरानी परिस्थिति में तुलना करने लगा है। "उसमें अपने होने न होने, अपने हकों के अस्तित्व की वर्तमान स्थिति, अपने साथ हुए भेदभाव व अन्याय का बोध भी जगा है।" आदिवासियों की नई पीढ़ी ने इन बदलावों को आत्मसात करना शुरू किया है। इन वंचितों ने अपनी पीड़ा को साहित्य का रूप भी दिया। आदिवासी साहित्य भी आज प्रतिष्ठा प्राप्त करने लगा है। आदिवासियों का साहित्य विभिन्न भाषाओं जैसे खड़िया, संताली, कुडुख, बोडो, गभा, मिजो, खासी इत्यादि में उपलब्ध हो रहा है। इन भाषाओं के अतिरिक्त हिन्दी भाषा में लिखने वाले आदिवासी लेखक भी सामने आ रहे हैं। "वह आज अपनी समस्याओं को हिन्दी की कलम से भी व्यक्त करने लगा है तो साथ ही अपनी संस्कृति, भाषा और अपनी उदात्त जीवन–शैली की अभिव्यक्ति से हिन्दी को समृद्ध कर रहा है।" अब आदिवासी वह वनवासी नहीं रहा जिसे जंगली कहकर उसका उपहास किया जाता था। अब वह समाज का सशक्त नागरिक बनकर उभरने के लिए तैयार खड़ा है। आदिवासी शब्द में ही उनकी पहचान छिपी हुई है और अपनी पहचान को साबित करने के लिए वह संघर्षरत है। आदिवासियों को मुख्यधारा में आने से रोका जाना शासक वर्ग और समाज के उच्च वर्ग की साजिश का परिणाम है। संविधान में उन्हें जनजातीय कहकर उनके आदिवासी होने पर ही प्रश्नचिन्ह लग रहा है। समाज में उसे पिछड़ा, असभ्य, जंगली कहकर निष्कासित कर दिया गया है। अन्ततः हम कह सकते हैं कि यदि आदिवासी समाज प्रगति चाहता है तो उसे नेतृत्व स्वयं अपने हाथों में लेना होगा। जब वे स्वयं सतर्क रहेंगे और आगे आऐंगे तो उनके लिए चिन्तित विद्वजन उनके साथ चलेंगे और उनके अस्तित्व को प्राप्त करवाने और समाज में उन्हें ऊँचा उठाने में पूरा योगदान देंगे। आदिवासी समाज को आज राष्ट्रीय स्तर पर इकट्ठा करने का प्रयास तेज़ हो रहा है और आशा यही है कि अपनी अस्मिता के लिए जिस तरह वे संघर्षरत हैं, उससे उन्हें समाज में सम्मानजनक स्थान अवश्य प्राप्त होगा। "इस सच्चाई को ध्यान में रखते हुए, आदिवासी जनता के हितों की हिफाज़त करना सर्वोच्च प्राथमिकता है। ऐसा ढाँचा विकसित किया जाना चाहिए, जो आदिवासी और गैर–आदिवासी मेहनतकश जनता के सभी हिस्सों की एकता बरकरार रखते हुए आदिवासियों के हितों को आगे बढ़ा सके।"

## 11.6 'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास में आदिवासी विमर्श

रणेन्द्र का 2009 में प्रकाशित उपन्यास 'ग्लोबल गाँव के देवता' आदिवासी जीवन के जल, जंगल और जमीन के संघर्ष को चित्रित करता है। इस उपन्यास में उनकी संस्कृति, सभ्यता, जीवन संघर्ष, शोषण, चेतना और विरोध आदि विभिन्न पहलुओं को उपन्यासकार ने केन्द्र में रखा है। विवेच्य उपन्यास वैश्वीकरण के दौर में इन समुदायों के छिनते

और समाप्त होते जा रहे अस्तित्व के लिए प्रश्न उठाता है और पाठक को झकझोरता है। 'असुर जनजाति' को केन्द्र में रखकर लिखा गया यह उपन्यास आदवासियों के प्रति समाज की भ्रान्तियों को दूर करता है वहीं इन समुदायों के संघर्षों, अधिकारों को गंभीरता से अभिव्यक्ति देता है। इन जनजातियों को लेकर समाज में जिन मिथ्या भ्रमों का प्रचार–प्रसार होता है उसका खुलासा उपन्यासकार आरंभ में ही करता है कि 'असुर' शब्द से लोग केवल यही समझते हैं – "सुना तो था कि यह इलाका असुरों का है, किन्तु असुरों के बारे में मेरी धारणा थी कि खूब लम्बे–चौड़े, काले–कलूटे, भयानक , दाँत–वाँत निकले हुए, माथे पर सींग–वींग लगे हुए लोग होंगे।" (पृ.–11) आज़ादी पूर्व इनका शोषण अंग्रेजो, सामन्तों और महाजनों ने किया तो वहीं आजादी के बाद इनका शोषण विकास के नाम पर देशी और विदेशी कंपनियाँ कर रही हैं। जहाँ एक तरफ खतरा इनके अस्तित्व, संस्कृति और सभ्यता को बचाने का है वहीं दूसरी तरफ गरीबी, भुखमरी, शिक्षा और बेरोज़गारी से बाहर लाने का है।

भूमंडलीकरण और बाज़ारीकरण के इस दौर में बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ इनका शोषण अधिक करती हैं विकास कम। अपने स्वार्थ और लाभ के लिए ये कंपनियाँ इनके क्षेत्रों में तरह–तरह के हथकंडे अपना कर इनका जीवन नष्ट कर रही हैं। उपन्यास में चित्रित भौरांपाट का पूरा क्षेत्र बॉक्साइट से भरा पड़ा है। बॉक्साइट से पैसा कमाने का स्वार्थ लिए बड़ी–बड़ी कम्पनियाँ इन्हें ज़मीन से निकाल कर ले जाती हैं और पीछे छोड़ जाती हैं विषैले गड्ढे। खनन का यह तरीका कृषि भूमि को तो बर्बाद करता ही है साथ ही आदिवासी जीवन में भी विषैले तत्व छोड़ जाता है। इन गड्ढों को भरने का उत्तरदायित्व इन्हीं कंपनियों का है परन्तु ये कम्पनियाँ इन गड्ढों को ज्यों का त्यों छोड़ देती हैं जिससे इनमें बरसात के दिनों में पानी भर जाता है और उस गन्दे पानी से मच्छर पैदा होने पर 'सेरेब्रल मलेरिया' नाम की भयंकर बिमारी फैल जाती है। कथावाचक इस क्षेत्र में इस खनन से पड़े दुष्प्रभाव का वर्णन करता है – "छिटपुट जंगल बाकी खाली दूर–दूर तक फैले उजाड़ बंजर खेत। बीच–बीच में बॉक्साइट की खुली खदानें। जहाँ से बॉक्साइट निकाले जा चुके थे वे गड्ढे भी मुँह बाये पड़े थे। मानो धरती माँ के चेहरे पर चेचक के बड़े–बड़े धब्बे हों।" (पृ.–9)

असुर जनजाति के अस्तित्व पर जो खतरा मंडरा रहा है उसके पीछे 'भौरापाट' क्षेत्र में फैली भ्रष्ट सत्ताधारी वह शक्तियाँ हैं जो केवल अपना स्वार्थ देखती हैं। विडम्बना तो यह है कि जिन्हें इन समुदायों के रक्षण हेतु सोचना चाहिए वही अपने कर्त्तव्य से विमुख हो गए हैं। भौरांपाट का विधायक गुप्ता असुर समाज की देखरेख करने की अपेक्षा पाट पर आई कम्पनियों की सेवा कर रहा है। इतना ही नहीं अपने लाभ के लिए वह प्राकृतिक संसाधनों को छीनकर कम्पनियों को बेच रहा है। विकासशील नीतियों के नाम पर भी आदिवासियों का रोज़गार ठप्प हो रहा है जो इनके जीवन की सबसे बड़ी समस्या है। उनके परम्परागत पेशे का विनाश कर तथाकथित पूँजीवादी वर्ग ने उन्हें रोजगार विहीन कर दिया है। उपन्यास में टाटा जैसी कम्पनियों पर लेखक ने प्रहार किया है जिन्होंने आदिवासियों की लोहे के औजार बनाने की कला को नष्ट कर दिया और स्वयं औजार बनाने लगे।

विडम्बना तो यह है कि सरकार भी विकास नीतियों के नाम पर आदिवासियों का शोषण करती है। रोजगार के नाम पर 'बेगार' करवाकर उन्हें मूर्ख बनाया जाता है। उपन्यास में इसका चित्रण आलू की खेती करने की योजना

से होता है। ललिता सजग पात्र है और स्थिति को समझ जाती है – "इस साल सरकारी बीज से खेती कीजिए। कॉपरेटिव आलू खरीद लेगी और रुपया आपके नाम से बैंक में डाल देगी। उसी पैसे से अगले साल बरसात में खुद आलू लगाना है।" (पृ.– 96)

विवेच्य उपन्यास में लेखक कम्पनी व सरकारी गठजोड़ का यथार्थ चित्रण करता है। सरकारी योजनाओं पर सन्देह करते हुए उपन्यासकार चित्रण करता है कि इन क्षेत्रों में चलाई जा रही विकास नीतियाँ भी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के लाभ को देखती हैं। खदान मालिकों को सरकार बॉक्साइट निकालने के लिए लीज़ पर ज़मीन देती है परन्तु वास्तविकता यह है कि ये कम्पनियाँ लीज़ की भूमि को छोड़कर गैर–लीज़धारी भूमि से बॉक्साइट निकालती हैं। लालचन दा कहता है – "छोटे–बड़े सभी खदान–मालिकों का एक ही रवैया। लीज़ की भूमि पर कम, वन विभाग, गैरमजरुआ ज़मीन, असुर रैयत की ज़मीन से ज्यादा खनन किया करते।" (पृ.–27) ये छोटी –बड़ी कम्पनियाँ आदिवासियों का शोषण करती हैं न कि विकास। शिंडाल्को कम्पनी के अधिकारी भी कम्पनी के लाभ को महत्त्व देते हैं किन्तु आदिवासियों की हो रही दुर्दशा की ओर ध्यान देना कोई अपना कर्त्तव्य नहीं समझता। लालचन कम्पनी के अवैध खनन को रुकवाने के लिए जिला कलेक्टर और एस.पी. के नाम शिकायत पत्र लिखता है परन्तु लाभ नहीं दिखता बल्कि सरकारी कर्मचारियों के भ्रष्टतन्त्र का खुलासा होता है कि सरकार ने जिला खनन के पदाधिकारियों को जाँच की जिम्मेदारी दी है। लालचन और अन्य असुर इस बात को समझ जाते हैं कि "बिल्ली को दूध की रखवाली का भार" सौंपा गया है। सरकारी सहयोग से ये कम्पनियाँ अपने स्वार्थ की पूर्ति करती हैं। असुर जनजाति के लिए ये कम्पनियाँ अभिशाप बनकर आई हैं जो उन्हें उनके ही क्षेत्र में दुष्कर जीवन जीने को विवश कर देती हैं। खदान मालिक सदैव इस ताक में रहते कि किसी तरह आदिवासियों की ज़मीन पर ज़्यादा  से ज़्यादा कब्जा हो सके। उन्हें धोखे में रखकर और कोरे कागज़ों पर अंगूठा लगवाकर सस्ते दामों में उनकी ज़मीन खरीद लेते।

भूमि अधिग्रहण कानून के आधार पर इन समुदायों की ज़मीनें छीनी जा रही हैं। उपन्यास में इसका यथार्थ चित्रण वन–विभाग की अभ्यारण्य नीति के माध्यम से हुआ है जिसमें भेड़ियों की खास नस्ल को बचाने की विशेष जिम्मेदारी वन–विभाग लेता है जिसमें आदिवासियों के सैंतीस गाँवों का उजड़ना तय है। 'वेदांग' कम्पनी वन–विभाग का इस कार्य में पूर्ण सहयोग करती है। कम्पनी को घेराबन्दी का काम देने के पीछे भी सरकार की रणनीति है कि कम्पनी यदि वनों को बेचेगी तो किसी को भी शंका नहीं होगी।

संवैधानिक आधार पर सरकार इनकी शिक्षा की व्यवस्था भी करती है परन्तु स्थिति यह है कि यह भी केवल भरोसा भर है व्यावहारिक स्थिति कुछ और ही है। भौरांपाट गाँव में असुर जनजाति के बच्चों की शिक्षा के लिए खोले गए स्कूल का चित्रण उपन्यासकार करता है जो केवल छलावा मात्र ही सिद्ध होता है। टूटी–फूटी इमारत, छात्रावास में स्वच्छता का नामों–निशान नहीं और बच्चों के खाने–पीने की पूर्ण व्यवस्था नहीं है जिससे यह स्पष्ट होता है कि ये नीतियाँ व्यावहारिक रूप से लागू नहीं हो पातीं। उस पर भी विडंबना यह कि असुर जनजाति के बच्चों के लिए बनाए गए इस स्कूल में असुर समाज के बच्चों की संख्या सबसे कम है क्योंकि अध्यापकों के अपने ही नाते–रिश्तेदारों के

बच्चों को वहां दाखिला दे रखा है। वास्तविकता तो यह है कि असुरों के सौ से ज़्यादा घरों को उजाड़कर बनाया गया था यह स्कूल।

पाथरपाट के स्कूल की भी यही स्थिति है कि वह केवल धोखा मात्र ही सिद्ध होता है इसलिए लालचन कहता है – "पहले जाकर पाथरपाट का जगप्रसिद्ध स्कूल देखे आइए तब समझ में आ जाएगा कि असल स्कूल क्या होता है और फुसलाने वाला स्कूल क्या होता है।" इतना ही नहीं इन विद्यालयों में दी जाने वाली शिक्षा भी उनकी मातृभाषा में न देकर दूसरी भाषाओं में दी जाती है। शिक्षित आदिवासियों को उनकी योग्यता के अनुसार काम भी नहीं मिल रहा जिसका चित्रण उपन्यास में पात्र रुमझुम के माध्यम से हुआ है। पढ़ा–लिखा होने के बावजूद वह योग्यतानुरूप नौकरी न पा सका। खदान में काम मिलने पर भी उसे वहाँ आदिवासी के रूप में ही मानकर उसका मज़ाक उड़ाया जाता रहा और बेइज्जती के कारण वह काम न कर पाता। ललिता कथावाचक को स्पष्ट करती है – "एक–दो लोगों को काम भी दिया है तो उलटा–पुलटा। जानबूझ कर ऐसा किया है कि बेइज्जत करके निकालने में सुविधा हो।" (पृ.–73) यहाँ तक कि पढ़ा–लिखा होने के कारण वह 'पाथरपाट' विद्यालय में भी आवेदन देता है लेकिन असफल रहता है अपनी मानसिक पीड़ा का चित्रण करता हुआ वह कथानायक से कहता है – "आखिर हमारी छाया से भी क्यों चिढ़ते हैं ये लोग?" (पृ.–19)

धर्म के आधार पर भी इन भोले–भाले आदिवासियों को बहला–फुसलाकर इनके जीवन को नष्ट किया जा रहा है। इसका यथार्थ चित्रण उपन्यास में शिवदास बाबा के माध्यम से हुआ है। आदिवासी क्षेत्र में अपनी पैठ बनाकर वह अपनी मंशा की पूर्ति करता है। अपनी राजनीतिक पहुँच और धार्मिक चाल दोनों तरह से वह आदिवासियों को मूर्ख बनाता है। चमत्कार के झूठे ढोंग से वह उन्हें अपनी चाल में फंसाता है। वह 'कंठी' धारण अभियान चलाकर आदिवासियों में फूट डालने में कामयाब हो जाता है। धर्मांतरण की इस चाल से आदिवासी 'कंठीधारी' और गैर–कंठीधारी में बँट जाते हैं और छुआछूत करते हैं। दूसरी तरफ धार्मिक आश्रम का ढोंग कर वह वहाँ अपराधियों को शरण देता है – "आश्रम में जहाँ–वहाँ के क्रिमिनल दाढ़ी–वाढ़ी बढ़ाकर धूनी–गाँजा रमाये पड़े रहते।" (पृ.–65)

आदिवासी जीवन में स्त्री–शोषण भी एक ऐसा प्रश्न है जिससे इनका रक्षण आवश्यक है। अपने समाज में 'सियानी' कहलाने वाली ये स्त्रियाँ गैर–आदिवासियों के शोषण का शिकार होती हैं। शिवदास बाबा असुर जनजाति की बच्चियों के लिए आवासीय विद्यालय का निर्माण करवाता है वहीं दूसरी ओर उस विद्यालय में पढ़ने वाली लड़कियों का यौन शोषण भी करता है। उपन्यास के पात्र लालचन की बेटियाँ कविता–नमिता उसके शोषण का शिकार होती हैं। तन्त्र साधना के लिए उसके आश्रम में बलि भी दी जाती है। जब एक बच्ची की लाश मिलती है तो देखकर पता चलता है – "गले में नींबू–मिरची की माला, बालों में अडहूल के फूल, देह में जहाँ–तहाँ सिन्दूर मला हुआ, साफ था कि तन्त्र–मन्त्र के लिये इस बच्ची का इस्तेमाल हुआ था।" (पृ.–60)

यह शोषण यहाँ तक ही सीमित नहीं है अपितु उन्हें खरीदने–बेचने के साथ–साथ वेश्यावृत्ति में भी धकेल दिया जाता है और इन कुकृत्यों को अंजाम देते हैं गैर–आदिवासी और आदिवासी लोग। गैर–आदिवासियों में उपन्यास का

पात्र सिंह जी इन कुकृत्यों में शामिल है। उसके चरित्र का खुलासा लालचन दा करता है – "खासकर लड़की–सियानीमन के सप्लाई में थोड़ा ज्यादा ही इंटरेस्ट लेता था सिंहवा।" (पृ.–30)

उपन्यास का पात्र 'गोनू' उर्फ गणेशवर सिंह भी आदिवासी औरतों का शोषण करता है। अपनी इस कुवृत्ति के कारण उसकी कई रखैले हैं। यहाँ तक कि अपनी उन रखनियों की बेटियों का इस्तेमाल भी वह अपने लाभ के लिए करता है – "रखनियों की जवान बेटियों का भी भरपूर इस्तेमाल करता। किसको थाना के बड़ा बाबू से सटाना है, किसको बी.डी.ओ. साहब के लिए बचाना है और कौन विधायक जी के नाइट हाल्ट में गोड़ दबाएगी।" (पृ.–36)

बहुराष्ट्रीय कंपनियों के संचालक भी आदिवासी औरतों का शोषण करते हैं। शिंडाल्को कम्पनी सखुआपाट का मैनेजर श्री किशन कन्हैया पांडेय भी ऐसा ही पात्र है जो रसिक प्रवृत्ति का है और कॉलोनी से सटे ग्रामीण टोले की लड़कियों को वह अपनी हवस का शिकार बनाता। कनारी में रहते एक युवक जेम्स की बहन 'सलोनी लकड़ा' को पांडे की हवस का शिकार होना पड़ता है।

आदिवासी औरतों की खरीद–फरोख्त का काम करने वाले गैर–आदिवासियों ने आदिवासियों को भी लोभ में डालकर अपना दलाल बना लिया है। उपन्यास का आदिवासी पात्र 'रामचन' इन गैर–आदिवासियों के लिए काम करता है और आदिवासी औरतों को इनके हाथों बिकवा देता – "कोई बाहरी जन दलाल थोड़े थे। यही रामचन जैसे घरे गाँव के आदमी दलाली करते थे। कच्ची उम्र की लड़कीमन को फुसलाना। दिल्ली–कलकत्ता का सब्ज़बाग दिखाना।" (पृ.–30)

गैर–आदिवासियों के आदिवासी समाज में प्रवेश करने के कारण और आदिवासी औरतों के. लोभ के कारण भी स्त्रियाँ शोषण का शिकार होती हैं। विवेच्य उपन्यास में इसका चित्रण हुआ है। अपनी गरीबी की मार को सहन न कर पाने के कारण ये इस कुकृत्य को रोक नहीं पाते। नरेटर कहता है – "उस समाज के बड़े–बुजुर्गों की यह सोच थी कि हमारे यहाँ बेटियों की संख्या थोड़ा ज्यादा ही होती है, वैसे भी वे नदियों की तरह होती हैं, खुद अपना रास्ता ढूँढने वाली।" (पृ.– 53)

पैसे के लोभ ने आदिवासी असुर समाज की औरतों का चरित्र बदल दिया। इसीलिए चिन्तित आदिवासी नवयुवक अपने दुःख को उपन्यास में इस गीत के माध्यम से व्यक्त करता हैं –

"काठी बेचे गेले असुरिन,

बाँस बेचे गेले गे,

मेठ संगे नजर मिलयले,

मुंशी संग लासा लगयले गे।"

विवेच्य उपन्यास में जहाँ आदिवासियों के शोषण का चित्रण है वहीं उनकी चेतना, संघर्ष और विरोध का चित्रण भी हुआ है। संगठित होकर अपने अस्तित्व और अस्मिता के लिए ये समुदाय संघर्ष करने को तत्पर हैं। 'असुर समाज' के पात्रों के साथ गैर आदिवासी पात्र भी आगे आकर इस संघर्ष का उत्तरदायित्व लेते हैं। लालचन, रुमझुम, डॉ. रामकुमार, कथावाचक, ललिता, बुधनी, ऐतवारी इत्यादि पात्र एकजुट हो आदिवासियों के अधिकारों के लिए संघर्षरत हैं। शिक्षा के नाम पर हो रहे धोखे के विरुद्ध रुमझुम, ललिता आवाज़ उठाते हैं। अध्यापकों की कमी आदिवासी लड़कियों को स्कूल भेजना, उनको विद्यालयों में दाखिला दिलवाना इत्यादि के लिए ललिता स्वयं कदम उठाती है। इस प्रकार असुर समुदाय का शिक्षित वर्ग इस संघर्ष को जारी है।

यह समुदाय सरकारी दलालों के विरुद्ध भी शंखनाद करता है। ये दलाल उनकी जमीनों को हड़प लेना चाहते हैं। गणेशवर सिंह लालचन के चाचा की हत्या करवा देता है और उसकी जमीन पर अपना अधिकार करना चाहता है। लालचन सतर्क हो अपनी ज़मीन को बचाने के लिए 'कनारी नवयुवक संघ' की मदद से गणेश्वर सिंह के विरुद्ध लड़ता है।

लालचन, डॉ. रामकुमार, ललिता, बुधनी, रुमझुम, किनारी नवयुवक संघ आदि मिलकर अपने समुदाय के अधिकारों की रक्षा के लिए 'संघर्ष समिति' का निर्माण भी करते हैं। इतना ही नहीं अपितु कार्यवाही को आगे बढ़ाते हुए वे सरकार के समक्ष अपनी समस्याओं यथा पाट पर अवैध खनन, बॉक्साइट निकाल कर गड्ढों को न भरना, पीने के पानी की व्यवस्था न होना, अस्पताल न होना इत्यादि के लिए माँग पत्र तैयार कर रैली निकालते हैं। ग्लोबल गाँव के देवताओं अर्थात् इन पूंजीपतियों और कंपनियों की नींव हिलने लगती है – "पाट के तीस–चालीस खदानों में काम रुकवाकर उन्होंने सीधे नये देवताओं को चुनौती दे दी थी।" (पृ–52)

उपन्यास में लेखक ने आदिवासियों के विरोध का चित्रण किया है। जब व्यर्थ में उन्हें कानूनी दायरे में लाकर तंग किया जाता है तो वे चुप नहीं बैठते। सोमा की पिटाई किए जाने पर वे लोग थाने में जाकर धरने पर बैठ जाते हैं परन्तु शांत भीड़ को उकसाकर उन पर गोलियाँ चला दी जाती हैं और इसे झूठा नक्सली रंग देकर अखबार में इस तरह छापा जाता है – "पाथरपाट में हुई पुलिस मुठभेड़ में छह नक्सली मारे गये। मारे गये नक्सलियों में कुख्यात एरिया कमांडर बालचन भी शामिल।" (पृ.–88)

विडंबना यह है कि एकजुट हुई संघर्ष समिति को तोड़ने तथा असुर समाज पर झूठे गोलीकांड की योजना भी पुलिस द्वारा ही बनाई जाती है। संघर्ष समिति के सदस्य धरने वाली घटना के बाद थोड़े दिनों के लिए गाँव छोड़ ललिता की मौसी के यहाँ शरण लेते हैं परन्तु पुलिस का खबरी उन्हें सूचना पहुँचाता रहता है। एक दिन बीमार रामचन को अस्पताल से दिखाकर लौट रहे लालचन और डॉ. रामकुमार को पुलिस रास्ते में ही गिरफ्तार कर अलग–अलग गाड़ियों में बिठाकर ले जाती है। जंगल में ले जाकर गोलियों की आवाज़ आती है जिससे लगता है कि दोनों को मार दिया गया है। वास्तविकता यह थी कि डॉ. रामकुमार को मार दिया जाता है और लालचन को पुलिस पकड़कर ले

जाती है और उस पर अत्याचार करती है। लालचन की दुर्दशा का वर्णन उपन्यास में हुआ है – "लगातार पिटाई और भूख प्यास ने उनके सोचने–समझने की शक्ति छीन ली। कितने महीनों से यों ही सब सहे जा रहे थे, अब यह भी याद नहीं था।" (पृ.–96)

लालचन की अधमरी हालत का फायदा उठाकर पुलिस जबरदस्ती एक कोरे कागज़ पर उसके हस्ताक्षर करवाकर अपनी अगली योजना को अंजाम देती है और कागज़ पर लिखा जाता है कि लालचन ने समझौता कर लिया है और संघर्ष समिति भंग कर दी। रिश्वत का झूठा खेल खेला जाता है और लालचन के घर के सामने नया ट्रेक्टर खड़ा कर दिया जाता है। गाँव वासी लालचन को घृणा की दृष्टि से देखते हैं और पुलिस के खेल को समझ नहीं पाते। बुधनी और ललिता चिंतित हैं कि 'वेदांग कम्पनी' घेराबन्दी के काम के लिए गैर–आदिवासी मजदूर आदिवासी क्षेत्र में ला रही है। दिकुओं के आदिवासी क्षेत्र में प्रवेश को लेकर इनका बेदखल होना तय था। असुर जनजाति के लोग ललिता और बुधनी के नेतृत्व में यह तय करते हैं कि कम्पनी के अधिकारियों से बात की जाएगी। शोषण और दमन की अति यह है कि अगले दिन सुबह ये सब लोग कम्पनी से बातचीत के लिए रवाना होते हैं परन्तु धमाकों की आवाज़ सुनाई देती है और बात करने जा रहे सबकी धज्जियाँ उड़ जाती हैं – "पता चला कि लैंड माइंस बिछायी गयी थी। बातचीत के लिए जाते ललिता, बुधनी दी, गन्दूर, एतवारी, लालचन दा के बाबा और पन्द्रह लोगों की धज्जियाँ उड़ गयी थीं।" (पृ.–100) यह परिणाम था एक दिन पहले कम्पनी को दी गयी खबर का कि आदिवासी उनसे बातचीत करना चाहते हैं।

आदिवासियों के इस दर्दनाक अन्त से ही उपन्यास का भी अन्त होता है परन्तु विमर्श का पहलू यह है कि इनके संघर्ष, चेतना और विरोध को भी दमनकारी नीतियाँ समाप्त कर देती हैं और जीत होती है प्रशासन की। प्रश्न यह उठता है कि इन्हें इनके अस्तित्व और अस्मिता की रक्षा के लिए कब तक कुर्बान होना होगा। उपन्यास का अन्त अवश्य आशावादी दृष्टिकोण की ओर मुड़ता है कि दिल्ली विश्वविद्यालय में पढ़ रहा रुमझुम का छोटा भाई सुनील इस संघर्ष को जारी रखेगा।

## 11.7 उपसंहार

उपर्युक्त विवरण के आधार पर स्पष्ट है कि उपन्यास 'ग्लोबल गाँव के देवता' आदिवासी समुदाय के शोषण की गाथा को प्रस्तुत करता है। सजग और संघर्षरत आदिवासी अपने अस्तित्व और अस्मिता की रक्षा करते हुए मुख्यध ारा के लोगों के लिए चुनौती साबित होते हैं परन्तु विडंबना यह है कि उन पूंजीपति और शक्तिशाली शोषकों की नीतियाँ केवल इनका शोषण करती हैं विकास नहीं। विवेच्य उपन्यास के आधार पर कहा जा सकता है कि यह अनवरत संघर्ष चलता रहेगा ताकि ये जनजातियाँ अपने अधिकारों को प्राप्त कर सकें।

## 11.8 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. 'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास में आदिवासी जीवन का यथार्थ चित्रण हुआ है? स्पष्ट कीजिए?

2. उपन्यास 'ग्लोबल गाँव के देवता' आदिवासी–विमर्श पर केन्द्रित है सोदाहरण स्पष्ट कीजिए?

3. आदिवासी–विमर्श की दृष्टि से 'ग्लोबल गाँव के देवता' की समीक्षा कीजिए?

4. 'ग्लोबल गाँव के देवता' आदिवासी शोषण का दस्तावेज है स्पष्ट कीजिए?

# 'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास के प्रमुख चरित्र

**12.1 भूमिका**

**12.2 उद्देश्य**

**12.3 'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास के प्रमुख पात्र**

**12.3.1 कथावाचक**

**12.3.2 लालचन दा**

**12.3.3 रुमझुम**

**12.3.4 डॉ. रामकुमार**

**12.3.5 शिवदास बाबा (लंगटा बाबा)**

**12.3.6 ललिता**

**12.4 उपसंहार**

**12.5 अभ्यासार्थ प्रश्न**

**12.6 सहायक ग्रन्थ**

## 12.1 भूमिका

किसी भी साहित्यिक विधा में पात्रों की विशेष भूमिका होती है। पात्र कथा को गति देने में सहायक होते हैं। रचनाकार पात्रों की योजना कथानुसार करता है। 'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास में रणेन्द्र ने आदिवासी और गैर–आदिवासी दोनों प्रकार के पात्रों की योजना की है। ये पात्र शोषित और शोषक वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। पुरुष पात्रों में लालचन दा, रुमझुम, डॉ. रामकुमार, रामचन, बालचन, गुप्ता जी, गणेशवर सिंह उर्फ गोनू, किरानी बाबू, साहू बाबू, कन्हैया पांडेय, लंगटा बाबा (शिवदास बाबा), अंसारी साहब, सोमा, भीखा, गन्दूर हैं तो स्त्री पात्रों में ललिता,

बुधनी, एतवारी, कविता, नमिता, गोमकाइन, रुमझुम की आयो (माँ) हैं। ये सभी पात्र कथा में विशेष महत्व रखते हैं परन्तु यहाँ हम उपन्यास के प्रमुख पात्रों की चर्चा करेंगे।

## 12.2 उद्देश्य

- उपन्यास में पात्रों की क्या भूमिका है जान सकेंगे।
- 'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास के पात्रों के चरित्र को समझ सकेंगे।
- उपन्यास के प्रमुख पात्रों से अवगत हो सकेंगे।

## 12.3 'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास के प्रमुख पात्र

विवेच्य उपन्यास में प्रमुख पात्रों में पुरुष पात्र कथावाचक, लालचन, रुमझुम, डॉ. रामकुमार, लंगटा बाबा हैं तो स्त्री पात्र ललिता है। उपन्यास की कथा के साथ इन पात्रों का सीधा संबंध है। विद्यार्थियो आइए जानते हैं कि इनके चरित्र की क्या विशेषताएँ हैं और उपन्यास में इनकी क्या भूमिका है?

### 12.3.1 कथावाचक

'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास 'मैं' शैली में लिखा गया उपन्यास है। इसे हम कथावाचक या कथानायक कह सकते हैं। विवेच्य उपन्यास का आरंभ ही कथावाचक की बरवे ज़िला के प्रखंड कोयलबीघा के भौंरापाट के पीटीजी गर्ल्स रेज़िडेंशियल स्कूल में अध्यापक के रूप में नियुक्ति से होता है। कथावाचक विज्ञान का शिक्षक है। इस प्रखंड में अपनी नियुक्ति को लेकर नाखुश कथावाचक उपन्यास की कथा को कहता है और धीरे–धीरे भौरांपाट के विद्यालय और आदिवासियों के साथ अपने तादात्मय को बिठाता वहीं का हो जाता है।

कथावाचक गैर–आदिवासी पात्र के रूप में हमारे सामने आता है जो जिज्ञासु, हँसमुख, मिलनसार, आदिवासियों के लिए चिंतित है। अपनी नियुक्ति को लेकर वह हताश–निराश, बस–ट्रैक्टर बदली करते और आख़िरी में बॉक्साइट वाले ट्रक लदकर पहाड़ के घुमावदार रास्तों से चढ़ता भौरांपाट स्कूल पहुँचा।" (पृ.–8)

आदिवासी इलाके में अपने स्कूल पहुँचकर वह तालमेल बिठाने की कोशिश करता है और उसका जिज्ञासु व्यक्तित्व पाठक के सामने आता है। वह असुर इलाके में है यह जानकर वह हतप्रभ रह जाता है – "सुना तो था कि यह इलाका असुरों का है, किन्तु असुरों के बारे में मेरी धारणा थी कि खूब लम्बे–चौड़े, काले–कलूटे, भयानक, दाँत–वाँत निकले हुए, माथे पर सींग–वींग लगे हुए लोग होंगे। लेकिन लालचन को देखकर सब उलट–पुलट हो रहा था।" (पृ.–11)

अपने स्कूल की पिऊन एतवारी को देखकर वह सोच भी नहीं पाता कि वह भी असुर है इसलिए वह बार–बार चौंक जाता है। उसके सामने यह रहस्योद्घाटन पाठक के भ्रम को भी दूर करते हैं – "यह छरहरी–सलोनी एतवारी

भी असुर ही है, यह जानकर मेरी हैरानी बढ़ गयी थी। हफ़्ता भर से इसे देख रहा हूँ, न सूप जैसे नाखून दिखे, न खून पीने वाले दाँत। कैसी–कैसी ग़लत धारणाएँ।" (पृ.–12)

कथावाचक जिज्ञासु है इसलिए वह कोई भी बात पता चलते ही उसे समझ लेना चाहता है इसलिए अपने मन में उपजी शंका कि यदि सरकार आदिवासियों के बारे में न सोचती तो स्कूल क्यों खोलती इसलिए लालचन दा उसे पाथरपाट का स्कूल देख आने के लिए कहते हैं तो उसकी जिज्ञासा बढ़ जाती है इसलिए रविवार को रुमझुम के साथ जाने का तय होने पर वह सारा आलस छोड़ देता है और सुबह–सुबह ही तैयार हो जाता है – "लेकिन आज नींद की खुमारी गायब थी। अजब तरह की फुर्ती। मन में बेचैनी। कपड़ा–वपड़ा पहनकर तैयार।" (पृ.–15)

यह जिज्ञासा उसकी तब भी देखने को मिलती है जब वह असुरों से संबंधित किताबों को पढ़ने के लिए इकट्ठा करते हैं और सारी जानकारी पाना चाहते हैं – "आजकल असुरों के बारे में जानने की इच्छा बलवती हो गई थी। उसमें जितनी किताबें असुरों से सम्बन्धित थीं, सब उठाकर ले आया था। वेरियर एल्विन से लेकर एस.सी. राय तक सब मेरे कमरे की टेबल की शोभा बढ़ा रहे थे।" (पृ.–15)

रुमझुम के साथ घुलमिलकर वह संपूर्ण जानकारी हासिल करता है और आदिवासियों के साथ मिलकर उनके संघर्ष का हिस्सा बनता है। भौंरापाट के माहौल में घुलमिलकर कथावाचक अच्छा महसूस करने लगता है इसलिए वह स्वीकार करता है – "रहते–रहते अपना भौरांपाट स्कूल मुझे अच्छा लगने लगा था।" (पृ.–19)

कथावाचक की मिलनसार आदत ने कहीं न कहीं गाँववालों पर भी प्रभाव डाला और आदिवासी बच्चियों के एडमिशन को लेकर वह गाँव में घूमा जिससे उसे लोगों के मनों में उतरने का अवसर मिल गया – "बच्चियों के एडमिशन के चक्कर में महीने–दो–महीने तक रोज़–रोज़ की घुमाई से एक बहुत बड़ा फ़ायदा यह हुआ कि मैं कई परिवारों का घरौआ हो गया। एक ऐसा अपनापन, लगाव जो कभी–कभी नज़दीकी नाते–रिश्तेदारी में भी नहीं मिलते।" (पृ.–22) असुर जनजाति के साथ घुलमिलकर वह अपने शनिवार–रविवार के दिन अम्बाटोली या रुमझुम के गाँव कन्दापाट में ही बिताता। लालचन दा की पत्नी को भौजी की भाँति मानकर वह देवर–भाभी का संबंध स्थापित करता और गीत सुनता –

"काहे रे देवरा मन तोरा कुम्हले,
काहे रे मन सूखी गेला रे,
भूखे रे देवरा मन तोरा कुम्हले,
पियासे मन सूखी गेला रे।" (पृ.–26)

कथावाचक का व्यक्तित्व प्रभावशाली है ही वह भी आकर्षक व्यक्तित्व से प्रभावित हुए बिना नहीं रहता इसलिए ललिता (लालचन दा की भतीजी) के व्यक्तित्व से प्रभावित होता है और उसके कहने पर रस्म निभाकर उसका मित्र

भी बन जाता है। सहिया जोड़ने की रस्म को निभाकर वह खूब खुश होता है। यहाँ उसके मिलनसार व्यक्तित्व का पता चलता है।

आदिवासियों के शोषण और पीड़ा से कथावाचक भी चिंतित रहता है। लालचन के चाचा की हत्या, कमसिन बच्चियों का शोषण, आदिवासियों के अधिकारों का हनन हो वह प्रत्येक इस स्थिति में उनकी चिंता करता है।

अतः कथावाचक का प्रभावशाली व्यक्तित्व कथा को गति देने में सहायक हुआ है। पूर्ण रोचकता से वह कथा को सुनाता है।

### 12.3.2 लालचन दा

'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास के पात्रों में लालचन दा प्रमुख पात्रों में से एक है। उपन्यास के आरंभ से अंत तक कथा के केन्द्र में लालचन दा अपनी भूमिका निभाता है। इसके चरित्र की प्रमुख विशेषताएँ हैं – असुर, अपने समुदाय के लिए चिंतित, जागरुक, अंधविश्वासी, पुलिस की कूटनीति का शिकार, संघर्षशील इत्यादि।

उपन्यास के आरंभ में पाठकों का सामना लालचन दा के साथ होता है जब वह घायलावस्था में कथावाचक के पास पहुँचता है – "अट्ठाइस–तीस की उम्र का खूब गोरा चिट्टा आदमी। सफेद धोती और क्रीम कलर का पोलिस्टर कुर्ता।" (पृ.–10) ये हैं गाँव नवा अम्बाटोली के प्रधान, बैगा बाबा के बड़े बेटे लालचन असुर।

लालचन दा अपने इलाके के आदिवासी समुदायों के लिए चिंतित भी हैं क्योंकि विकास नीतियों के नाम पर हो रहे शोषण का खुलासा वे कथावाचक से उस समय करते हैं जब वह कहता है कि यदि सरकार आदिवासी समुदायों का विकास न चाहती तो यहाँ स्कूल क्यों खोलती तो लालचन दा कहता है – "अरे मास्टर साहब! क्या तो आदिवासियों का आवासीय स्कूल! पहले जाकर पाथरपाट का जगप्रसिद्ध स्कूल देख आइए। तब समझ में आ जाएगा कि असल स्कूल क्या होता है और फुसलाने वाला स्कूल क्या होता है।" (पृ.–14)

लालचन दा अपनी जनजाति के अधिकारों के लिए 'संघर्ष समिति' बनाता है ताकि शोषण से बचा जा सके। जागरुक होकर लालचन दा अपने संघर्ष को जारी रखते हैं। लालचन दा की समझदारी भी उनके इस संघर्ष को जारी रखने में मदद करती है इसीलिए उन्होंने सरकारी सामुदायिक भवन अपने खलिहान के छोर पर बनवा लिया था – "लालचन दा ने समझदारी दिखाते हुए खलिहान की सड़क के पास वाले छोर पर सरकारी सामुदायिक भवना बनवा लिया था। इसका फायदा यह था कि अब जब भी सरकारी कर्मचारी, पंचायत सेवक, ग्राम सेवक । आराम से सरकारी योजनाओं की जानकारी लालचन दा लोगों को मिल जाती।" (पृ.–25)

लालचन के परिवार को भी गोनू उर्फ गणेशवर सिंह के शोषण का शिकार होना पड़ता है। लालचन के चाचा की हत्या कर दी जाती है ताकि उसके खेतों पर गणेशवर सिंह अधिकार जमा ले लेकिन लालचन दा उसके विरुद्ध लड़ने का फैसला करता है लेकिन गोनू सिंह के आदमियों से उन्हें भिड़ना पड़ता है और वे गोली चलाकर बालचन को

घायल कर देते हैं। भाई बालचन के घायल होने से लालचन दा थोड़ा सोच में पड़ जाते हैं – "बालचन के गिरने से लालचन दा हिल गये थे। अब उनकी आवाज़ में वह आग महसूस नहीं होती थी।" (पृ.–42)

लालचन दा निरन्तर इस संघर्ष में रत थे। शोषण के खिलाफ लालचन दा ने डॉ. रामकुमार, रुमझुम के साथ मिलकर पाट की खदानों में काम रुकवा दिया परन्तु कनारी नवयुवक संघ ने पांडेयी जी के कहने पर आन्दोलन से हाथ खींच लिए। उसी रात पुलिस छापा मार कर उन्हें गिरफ्तार कर लेती है।

कोयलाश्रम के शिवदास बाबा ने स्वयं इन लोगों की जमानत करवायी। लालचन दा इतने अंधविश्वासी हो जाते हैं कि स्वयं भी शिवदास बाबा के भक्त बन जाते हैं – "शिवदास बाबा का रसूख देख लालचन दा गद्‌गद थे। आजकल बुधनी दी की देसी केबिन में भी जब देखिये बाबा जी की कहानी। बाबा जी ऐसे, तो बाबाजी वैसे। एकदम फ़िदा थे लालचन दा।" (पृ.–61) इससे स्पष्ट होता है कि लालचन दा बाबा के कंठी अभियान, रसूख के प्रभाव में आ चुके थे। इतने पक्के भगत हो जाते हैं लालचन कि अपनी बेटियों कविता–नमिता का नाम कोयलेश्वर आश्रम वाले आवासीय स्कूल में लिखवा दिया। अन्ततः जब वह वहाँ शिवदास बाबा के शोषण का शिकार होती हैं तब समझ में आता है कि कितना कपटी है वह शिवदास बाबा।

इतना सब हो जाने पर लालचन दा भी अंदर से टूट से गए थे। उपन्यासकार ने इसका चित्रण किया है कि लालचन के भरोसे ही आदिवासियों का संघर्ष जारी था परन्तु जब लालचन स्वयं ही पहले जैसे न रहे थे – "किन्तु लालचन दा खुद पहले जैसे नहीं रह गये थे। बदले–बदले से थे। चाचा के हत्यारे की गिरफ़्तारी अब तक नहीं होना, पुश्तैनी धनहर खेत का खानदान के हाथ से निकल जाना, बालचन के दवा–दारु में हाथ का खाली होना, बेटियों का आश्रम स्कूल में बेइज्ज़त होना। इन सारी घटनाओं ने उनकी निश्छल हँसी उनसे छीन ली थी।" (पश्.–81)

लालचन दा का कष्ट अभी कटा नहीं था और वे पुलिस की भ्रष्टता के शिकार हुए। उन्हें आंदोलन के समय में पुलिस ने गिरफ्तार कर खूब मारा–पीटा और झूठी खबरें देकर उसका मानसिक संतुलन भी बिगाड़ दिया गया – "यहाँ से वहाँ, वहाँ से यहाँ पट्‌टी बाँधकर रात–रात भर पुलिस जीप में घूमते, टार्चर, मार–पीट सहते, लालचन अब बुरी तरह से टूट गए थे। रणनीति के तहत उन्हें झूठी खबरें दी जातीं। रामकुमार, रामचन, ललिता, बुधनी एक–एक कर सबकी मौत की ख़बरों ने, लगातार पिटाई और भूख–प्यास ने उनके सोचने–समझने की शक्ति छीन ली।" (पृ.–96)

मानसिक संतुलन खो चुके और अधमरे लालचन को पुलिस ने छोड़ने से पहले जबरन एक सादे कागज पर उनके हस्ताक्षर करवा लिए ये थी भ्रष्ट पुलिस प्रशासन की अगली नीति। शिंडाल्को के मैनेजर बाबू पांडेय ने इस रणनीति के तहत एक नया ट्रैक्टर उनके घर पहुँचा दिया और कहा कि लालचन असुर ने समझौता कर लिया है। और संघर्ष समिति भंग कर दी है। जब तक लालचन अपने गाँव पहुँचते तब तक नया ट्रेक्टर उनके दुआर पर देखकर लोगों को विश्वास करना पड़ा कि लालचन गद्दार हो गए लेकिन लालचन को इसकी खबर न थी। अपने परिवार और समाज के लोगों की उपेक्षा को वे सहन नहीं कर पा रहे थे – "लालचन दा को लगा, इससे तो अच्छा रहता कि पुलिस उन्हें गोली ही मार देती। यह कैसी मार मारी थी कि अपने ही उनके दुश्मन हो गये।" (पृ.–98)

कथावाचक उनकी इस मनोदशा को समझ रहा था। परन्तु लालचन दा अंदर से टूट चुके थे और अपनों की उपेक्षा को सहन कर रहे थे। उनकी स्थिति का चित्रण कथावाचक के शब्दों में – "सोने जैसी देह कैसी कंकाल–सी स्याह हो गयी थी। कितना दुख सहा था इस आदमी ने! घर आकर भी दुख ही मिला, वह भी ऐसा जो सब दुखों पर भारी था।" (पृ.–98)

अतः हम कह सकते हैं कि लालचन विवेच्य उपन्यास का महत्त्वपूर्ण पात्र है। उपन्यास की कथा को गति देने में उसका प्रमुख स्थान है।

### 12.3.3 रुमझुम

रुमझुम 'ग्लोबल गाँव के देवता' का प्रमुख चरित्र है जो कथा में शुरू से अन्त तक उपस्थित है। शिक्षित युवक, बेरोज़गार, समुदाय के प्रति चिंतित, जागरुक, निराश होना इत्यादि उसके चरित्र की प्रमुख विशेषताएँ हैं। गाँव कन्दापाट का यह पात्र उपन्यास में पाठकों को विशेष रूप से आकर्षित करता है।

शिक्षित युवक के रूप में रुमझुम पाठकों के सम्मुख आता हैं। शिक्षा में विशेष रुचि के चलते वो अपने समुदाय को भी प्रेरित करता है। शिक्षा के प्रति उसके विशेष लगाव को उपन्यासकार चित्रित करता है – "संस्कृत में ऑनर्स किया है। पिता स्कूल में टीचर हैं, किन्तु इनको अभी नौकरी नहीं मिली है।" (पृ.–14) अपने समुदाय के इतिहास और फैले भ्रमों के प्रति पाठक उसे सदैव चिंतित पाता है इसलिए कथावाचक से वार्तालाप के समय वह संस्कृत को पढ़ने का विषय चुनने का कारण बताता है – "इस देवासुर संग्राम ने मुझे भी बहुत उलझाया था मास्टर साहब। इसलिए मैंने पढ़ाई के लिए संस्कृत को चुना।" (पृ.–17)

रुमझुम अपनी असुर जनजाति का पूर्ण इतिहास और संघर्ष भी अपनी जानकारी में संजो कर रखता है इसलिए कथावाचक और पाठक को हम उसके व्यक्तित्व से प्रभावित होता पाते हैं। वह अपने असुर समुदाय का इतिहास बताता हुआ कहता है – "हम असुर लोग मोटा–मोटी तीन भाग में बँटे हैं। बीर असुर, अगरिया असुर और बिरिजिया असुर।" (पृ.–18)

इस तरह की जानकारियों से वह बार–बार पाठक को अवगत करवाता है। उसकी चिंता अपने समुदाय के लोगों के लिए है जिन्हें सदियों से उपेक्षित और शोषित जीवन जीने को विवश किया गया। आदिवासियों के सौ से ज़्यादा घरों को उजाड़कर बने पाथरपाट के आवासीय स्कूल को लेकर रुमझुम चिंतित है उस पर भी ज़्यादा चिंता इसलिए कि तीस वर्षों से उस स्कूल में आदिम जाति के एक भी बच्चे ने पढ़ाई नहीं की – "असुरों के सौ से ज़्यादा घरों को उजाड़कर बना था यह स्कूल। अभी भी आसपास असुर आबादी है। पिछले तीस वर्षों का रजिस्टर उठाकर देख लीजिए जो एक भी आदिमजाति परिवार के बच्चे ने इस स्कूल में पढ़ाई की हो।" (पृ.–19)

रुमझुम की जानकारी पाठक को तब और भी अचम्भित करती है जब वह 'ट्रेल ऑव टियर्स' रेड इंडियंस की किताब के अध्याय की ओर इशारा करता है कि किस प्रकार मूल निवासियों का शोषण किया गया। इससे स्पष्ट होता

है कि वह महत्वपूर्ण जानकारियाँ रखता है जो उसके चरित्र की प्रमुख विशेषता है। 'संघर्ष समिति' में भी रुमझुम सक्रिय भूमिका निभाता है ताकि अपनी जनजाति के अधिकारों को सुरक्षित रखा जा सके। विवेच्य उपन्यास में वह हमें इस संघर्ष में हमेशा आगे दिखाई देता है। प्रधानमंत्री को पत्र लिखना और अपने समुदाय की समस्याओं से अवगत करवाना भी उसके चरित्र का महत्त्वपूर्ण पहलू है। लिखे गए पत्र में उसकी जानकारियाँ पढ़कर कथावाचक भी हतप्रभ रह जाता है – "लेकिन बीसवीं सदी की हार हमारी असुर जाति के अपने पूरे इतिहास में सबसे बड़ी हार थी। इस बार कथा–कहानी वाले सिंगबोंगा ने नहीं, टाटा जैसी कम्पनियों ने हमारा नाश किया। उनकी फैक्टरियों में बना लोहा, कुदाल, खुरपी, गैंता, खन्ती सुदूर हाटों तक पहुँच गये।" (पृ.–83)

रुमझुम भावुक प्रवृत्ति का है इसलिए अपने समुदाय की पीड़ा का वर्णन करते–करते वह अक्सर भावुक हो जाता है। अपने समाज की स्त्रियों के कठिन जीवन का वर्णन वह कथावाचक से करता है – "पानी और जलावन जुटाने में ही हमारी औरतों की आधी ज़िन्दगी गुज़र जाती है। यहाँ मकई का घट्टा खा–खाकर जीभ पर घट्टा पड़ जाता है। हमारे ज़्यादातर घरों में भात–दाल सब्ज़ी भी पर्व–त्योहार का भोजन है।" (पृ.–17) यह कहते–कहते वह भावुक हो जाता है उसकी इस मनःस्थिति का चित्रण कथावाचक करता है – "रुमझुम की आवाज़ थरथराने लगी और आँखें छलछलाने।" (पृ.–17)

योग्यतानुसार रोज़गार न मिलने के कारण रुमझुम हताश और निराश हो जाता है। पढ़े–लिखे होने पर भी उसे काम नहीं मिल रहा था। बड़ी मुश्किलों और संघर्ष के बाद उन्हें खदान में काम तो दिया जाता है परन्तु बात–बात पर जलील करके – "रुमझुम सोमा, भीखा जैसे कुछ प्रमुख असुर युवाओं को ऑफिस में जगह दी गयी थी, लेकिन वे भी कोई बहुत खुश नहीं दिखते थे। नया काम सीखने के बदले उन्हें बात–बात पर जलील किया जाता था।" (पृ. –64) इस अपमान ने उसके मन को भारी ठेस दी जिससे वह आए दिन पीने लगा और अपनी हालत बिगाड़ने लगा। उसकी इस हालत को देख डॉ. रामकुमार, लालचन, कथावाचक , ललिता सब परेशान हो जाते परन्तु उसे इस स्थिति से उबारना मुश्किल हो गया। अंदर से आहत रुमझुम बार–बार उदास–हताश हो जाता इसलिए नशे में डूबा हुआ भी वह गीत गाने लगता –

"हम बाकी दिन कैसे गुज़ारेंगे
इसका कोई अर्थ नहीं
हमारी रात
भरपूर काली रात होने का आश्वासन दे रही
क्षितिज पर एक भी तारा नहीं।" (पश्.–74)

कभी होश में आता भी तो दारु का असर साफ दिखाई पड़ता – "साल भर में पूरे अल्कोहालिक हो ये थे रुमझुम। आँख के पपोटे और चेहरा सूजा हुआ। सुना था, अब तो सवेरे जगते हैं तो कुल्ला भी महुआ की पहली धार से करते हैं।" (पश्.–82)

इस स्थिति में भी संघर्ष में वह सदा आगे रहता है परन्तु अंत में संघर्ष करते–करते पुलिस की गोली का शिकार हो जाता है और उसकी मृत्यु हो जाती है।

### 12.3.4 डॉ. रामकुमार

डॉ. रामकुमार 'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास में रजिस्टर्ड प्रैक्टिशनर के रूप में पाठकों के सामने आते हैं। उनके व्यक्तित्व से उपन्यासकार अवगत करवाता है – "हंसमुख मनोहर डॉक्टर। रजिस्टर्ड प्रैक्टिशनर। नीचे कनारी बबुआनी टोले के।" (पृ.–12)

बबुआनी टोले के होते हुए भी आदिवासियों के प्रिय थे और उन्हें उनके अधिकारों के लिए सचेत करते दिखाई देते हैं। सखुआपाट के साथ–साथ वे सभी इलाकों से परिचित हैं और पूर्ण जानकारी रखते हैं। अपने अधिकारों के लिए संघर्षरत आदिवासियों का वे साथ देते हैं – "डाक्टर साहब की सलाह थी कि लड़ाई अकेले जीती नहीं जा सकती। यह केवल लालचन के चाचा के पाँच एकड़ का सवाल नहीं है, इस सवाल को अन्य सवालों से जोड़ना होगा।" (पृ.–48)

डॉक्टर रामकुमार अपनी समझ और बुद्धिमानी से आदिवासियों का साथ दे रहे थे इसलिए वे उनके हितों के लिए प्रश्न उठाते और समझाते कि अगला कदम क्या उठाना है। शिवदास बाबा के कंठी अभियान को भी वे अच्छी तरह समझ रहे थे – "बाबा के झाड़ फाँस, दिखावा–पाखंड को उनसे ज़्यादा बेहतर कोई नहीं जानता था।" (पृ.–65) आदिवासियों के हितचिन्तक बनकर वे उनका हमेशा साथ देते और सारी खोज–खबर रखते कि क्या हो रहा है। इसलिए वे उनके हितों के लिए अड़ जाते – "डॉक्टर साहब के अड़ने के दो बिन्दु थे। एक कि ई सब काला पशु वाला ड्रामा यहाँ नहीं चलेगा।" (पृ.–65)

डॉ. रामकुमार औरतों के साथ बहुत ही आदर से पेश आते। वे उनके सबसे अधिक विश्वासपात्र थे इसलिए वे भी इलाज करवाने वहाँ ही पहुँचतीं – "इसीलिए पूरे पाट की बीमार–परेशान सियानीमन उनके यहाँ भीड़ लगाये रहतीं। वे जानती थीं कि उनकी परेशानी डॉगदर बाबू तक ही महफूज रहेगी।" (पृ.–50)

शिवदास बाबा के आश्रम में पीड़ित–शोषित कमसिन लड़कियों को भी वे इलाज कर बचाते परन्तु अंदर से बहुत दु:खी भी होते कि ऐसे बाबाओं का कोई अंत नहीं – "कनारी डेरे से कितनी बार उन्हें आधी–आधी रात को चुपके से गाड़ी में बैठकर आश्रम ले जाया गया था। कितनी–कितनी बार उन्होंने बाबा की कोठरी में बेहोश पड़ी कमसिन बच्चियों को पानी–खून चढ़ाकर जान बचाई थी – उसका कभी हिसाब नहीं रखा, लेकिन देखते ही इनके मन में उसके चेहरे पर थूकने का मन करता।" (पृ.–65)

कविता–नमिता (लालचन दा की बेटियाँ) भी बाबा के शोषण का शिकार होती हैं तो डॉ. रामकुमार उनका इलाज करते हैं। वे उनके बीमार होने का सुनकर समझ लेते हैं कि जरूर उस बाबा ने इन्हें रात में पैर दबाने के बहाने बुलाया

होगा – "डॉक साहब ने सुनते ही मामला समझ लिया। भुनभुनाने लगे कि डायन भी सात घर छोड़कर खाती है, लेकिन ई बबवा साला राक्षस है राक्षस।" (पृ. 69)

डॉक्टर रामकुमार उपन्यास में शुरू से अंत तक आदिवासियों का साथ देते हैं परन्तु अंततः पुलिस के भ्रष्टतन्त्र का शिकार वे भी होते हैं और उनको मार दिया जाता है।

### 12.3.5 शिवदास बाबा (लंगटा बाबा)

शिवदास बाबा उपन्यास 'ग्लोबल गांव के देवता' के लंगटा बाबा है जो बाबा के चोले में अपने स्वार्थ साध ाते हैं और रसूख और ताकत का प्रयोग कर गलत कामों को अंजाम देते हैं। स्वार्थी प्रवृति, छली, ताकत का प्रयोग करने वाला, लड़कियों का शोषण करने वाला लंगटा बाबा के चरित्र की महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ हैं।

बाबा का उपन्यास में प्रवेश होता है कि सात–आठ वर्ष पहले कनारी गाँव के शिव मन्दिर में प्रकट हुए – "कहते हैं कि आज से सात–आठ वर्ष पहले यहीं कनारी गाँव के पूरबवारी कोयल नदी के किनारे के शिव मन्दिर में प्रकट हुए थे शिवदास बाबा।" (पृ.–57) बाबा ने पाट में आकर डेरा जमा लिया था और कंठी अभियान चलाकर आदिवासियों को अपने जाल में फसा लिया था – "धीरे–धीरे शिवदास बाबा का कंठी अभियान चल निकला। बाबा गाँव–गाँव घूमते, हवन करते और भगतों को कंठी धारण करवाते।" (पृ.–57)

कोयलेश्वर आश्रम से सटे गैरमजरुआ ज़मीन पर कन्याओं के लिए भव्य आवासीय उच्च विद्यालय का निर्माण करवाया। इस तरह बाबा ने सर्वप्रथम अपना विश्वास लोगों में बनाया जिससे कि कोई भी उनके चरित्र पर संदेह न कर पाता। बाबा के शुरूआती दिनों की घटना है – "एक मूर्ख थानेदार को कोयलेश्वर आश्रम के पास ही नदी किनारे झाड़ियों में एक बारह–तेरह साल की कमसिन बच्ची की नग्न लाश मिली।"(पृ.–60) बाबा को गिरफ्तार किया गया परन्तु बाबा ने लोगों के मन में इतनी जगह बना ली थी कि थानेदार को बाबा को छोड़ना पड़ा – "आख़िर उस नासमझ थानेदार को सबके सामने बाबाजी के पैर छूकर माफी मांगनी पड़ी और वहीं से रिहा करना पड़ा, तब जाकर मामला ठंडाया।" (पृ.–60)

बाबा ने अपना रसूख जमा लिया था इसलिए अब वह चुनावों में भी अपने चेलों–भक्तों को खड़ा करते ताकि अपने स्वार्थों को साध सकें – "आगामी चुनावों में बाबा जी ने पार्टी के टिकट वितरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। बाबा जी के खास भगतों को भी अच्छी संख्या में टिकट मिले। ऐसे भगतों में से एक लोकसभा और तीन विधानसभा में पहुँच गये।" (पृ.–61) आदिवासियों में अपनी पैठ बनाने के लिए बाबा आए दिन अपनी ताकत का इस्तेमाल करता और अपने भक्तों के सामने अच्छा बनता। बाबा का असली चेहरा कोई नहीं जान पा रहा था परन्तु जल्द ही वह रंग उतरने लगा जब लालचन दा की बेटियों कविता–नमिता की बीमारी से राज खुला कि बाबा अक्सर कमसिन छोटी बच्चियों को अपने पाँव दबाने के बहाने बुलाकर उनका शोषण करता है। उपन्यास में इसका चित्रण हुआ है – "अकेले में बच्चियों से पूछताछ

की। आशंका सही थी। भारी झटका लगा था कोमल मन को। भूख–प्यास, नींद सब उड़ गयी थी। चारों तरफ वह राक्षस लँगंटा बाबा ही दिखता था।" (पृ.–69)

बाबा का चरित्र उद्‌घाटित होता है जब वह वेदांग जैसी बड़ी कम्पनी के साथ मिलकर सौदेबाजी करता है ताकि बड़ा लाभ पा सके – "चूंकि कोयलबीघा में भूमि का जुगाड़ उनके बिना हो नहीं सकता इसलिए उन्हें कम्पनी में शेयर मिलना चाहिए। अब बाबा और विधायक को सौदेबाजी का एक और मौक़ा मिल गया था।" (पृ.–89)

इस तरह बाबा केवल अपने स्वार्थों को साधने और छल करने में माहिर था। विवेच्य उपन्यास में उसका कुचरित्र पाठकों के सामने आता है।

### 12.3.6 ललिता

ललिता उपन्यास की प्रमुख स्त्री पात्र है जो शिक्षित होने के साथ–साथ आकर्षक व्यक्तित्व वाली, समझदार, जागरुक और बहादुर है। ललिता लालचन दा की भतीजी है जो माता–पिता को बचपन में ही खो चुकी है इसलिए उसका लालन–पालन और पढ़ाई की पूर्ण जिम्मेदारी लालचन दा ही उठाते हैं। वह एम.ए. कर रही है और पूर्ण रुचि से पढ़ रही है। उसके आकर्षक व्यक्तित्व का वर्णन कथावाचक करता है – "मैं भकुआकर देखता ही रह गया। कम–से–कम पाट पर ऐसी सुघढ़, सुरुचिपूर्ण पहनावे वाली सुन्दर लड़की मैंने नहीं देखी।" (पृ.–68)

ललिता समझदार व्यक्तित्व की मालिक थी इसलिए सदैव अपने समुदाय के लोगों के बारे में सोचती यहाँ तक कि अपने समाज के मर्दों से वह खफा हो जाती है – "ललिता इन दिनों अपने चाचा लालचन 'का' पर बहुत नाराज़ थी। उसका मानना था कि मर्द और खासकर असुर मर्द किसी के भी झाँसे में आसानी से आ जाया करते हैं।" (पृ. –70) इसीलिए वह चिंतित रहती है कि जब तक उनके समाज के लोग समझदार नहीं होंगे तब तक अपने अधिकारों को पाना मुश्किल है। रुमझुम 'का' के नशे में डूब जाने पर भी वह चिंतित होती है क्योंकि उनसे पढ़कर ही वह आज इस मुकाम पर पहुँच पाई। वह अक्सर अपने पुराने रुमझुम का को ढूंढने की कोशिश करती है – "कई–कई बार प्रयास किया ललिता ने कि अपने पुराने रुमझुम 'का' को खोज ले, जो कभी उन्हें रोज़–रोज़ हुलसकर मिलने आते और बहुत मन से पढ़ाया करते थे।" (पृ.–71)

कथावाचक से वार्तालाप करते हुए उसके आक्रोश का खुलासा होता है जब वह कहती है कि उनके अधि ाकारों के लिए लड़े जा रहे संघर्ष का उन्हें लाभ नहीं मिलता इसीलिए वह प्रश्न उठाती है – "क्या तो आन्दोलन हुआ। जेल भी गये। समझौता हुआ। कहाँ हैं समझौते की शर्तें? कहाँ हैं हमारे आजा (दादा) के हत्यारे? कहाँ मिला धनहर पर दखल?" (पृ.–72) ये सारे प्रश्न असुर ललिता के मन में कुलबुलाते हैं जो अपने समुदाय के लोगों के लिए उसकी चिंता को अभिव्यक्त करते हैं। ललिता का प्रभावशाली व्यक्तित्व उपन्यास में चित्रित हुआ है। कथावाचक से उसकी मित्रता और तर्कशील संवाद स्पष्ट करता है कि वह आँख मूंद विश्वास नहीं करती अपितु बुद्धि से काम लेती है। 'संघर्ष समिति'

की अगुआ बनकर वह अपने समुदाय का नेतृत्व करती है। आंदोलन को गति देने में पाठक उसे प्रमुख भूमिका में देखता है। इस संघर्ष में अंततः पुलिस की बिछाई गई लैंड माइंस फटने से उसकी मृत्यु हो जाती है।

## 12.4 उपसंहार

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं 'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास में प्रमुख और गौण पात्रों की विशेष भूमिका है जो कथा को गति देने में सहायक तो हैं ही पाठक को भी प्रभावित करते हैं।

## 12.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. 'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास के पात्र लालचन दा का चरित्र–चित्रण कीजिए?

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

2. रुमझुम 'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास का प्रमुख पात्र है स्पष्ट कीजिए?

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

3. शिवदास बाबा की 'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास में भूमिका स्पष्ट कीजिए?

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

4. ललिता 'ग्लोबल गाँव के देवता' की जागरुक स्त्री पात्र है स्पष्ट कीजिए?

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

## 12.6 सहायक ग्रन्थ


1. आदिवासी भाषा और शिक्षा – सं. रमणिका गुप्ता – स्वराज प्रकाशन, दिल्ली
2. झारखंड के आदिवासियों के बीच – वीर भारत तलवार – भारतीय ज्ञानपीठ
3. आदिवासी विकास, उपलब्धियाँ एवं चुनौतियाँ – एस.एन.चौधरी, मनीषा मिश्रा – कॉसेप्ट पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली, 2012


******

# किन्नर : अर्थ एवं इतिहास

**13.0 रूपरेखा**

**13.1 उद्देश्य**

**13.2 प्रस्तावना**

**13.3 किन्नर : अर्थ एवं परिभाषा**

**13.4 किन्नर : इतिहास**

**13.5 निष्कर्ष**

**13.6 अभ्यासार्थ प्रश्न**

**13.7 पठनीय पुस्तकें**

## 13.1 उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरांत आप –

- किन्नर शब्द के अर्थ को जान सकेंगे।
- किन्नर शब्द कहां से आया है इससे सम्बन्धित जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- किन्नर जीवन के इतिहास को जान सकेंगे।

## 13.2 प्रस्तावना

लैंगिक आधार पर मानव मुख्यतः दो वर्गों में विभाजित है, स्त्री एवं पुरुष। इन्हीं दो वर्गों के साथ–साथ मानव जाति में एक अन्य लिंग अर्थात् तृतीय लिंग प्रकृति के इन्सान भी उपस्थित हैं। सामान्यतः समाज में ऐसे मानव के लिए 'किन्नर' अथवा 'हिजड़ा' शब्द प्रयोग किया जाता है। ये वे लोग होते हैं, जो लैंगिक आधार से न तो पूर्णतः स्त्री होते

हैं और न ही पूर्णतः पुरुष। भारत की विभिन्न भाषाओं में किन्नर के लिए भिन्न–भिन्न शब्द व्यवहृत हैं, जैसे – तेलुगु में नपुंसकुडु, कोज्जा या मादा, तमिल में थिरू नंगई, अरावनी, गुजराती में पवैय्य, पंजाब में खुसरा, कन्नड़ में जोगप्पा एवं इसी प्रकार भारत के विभिन्न क्षेत्रों में छक्का, खोजा, किन्नर, हिजड़ा, नपुंसक, थर्ड जेंडर, ट्रांसजेंडर इत्यादि शब्द भी किन्नरों के लिए प्रयोग किए जाते हैं।

## 13.3 किन्नर : अर्थ एवं परिभाषा

जिस समाज में स्त्री और पुरुष रहते हैं उसी समाज में एक वर्ग और भी है, जो पारिवारिक अनुष्ठानों में आशीष देने का कार्य भी करता है। कहा जाता है कि इस वर्ग का आर्शीवाद आनुवांशिक समृद्धि लाता है पर समाज का कोई व्यक्ति स्वप्न में भी उनके जैसे समाज की आकांक्षा नहीं करता है। यह वर्ग 'जेण्डर' जिसे हिजड़ा, किन्नर और ख्वाजासरा आदि के नामों से भी पुकारा जाता है।

सहज समान्तर–कोश में किन्नर का अर्थ है – "अश्वमुख, किंपुरुष, कुबेर सखा, गायक वादक जाति, तुरंगवदन, संगीत प्रेमी।"

वृहत हिन्दी कोश में किन्नर शब्द का अर्थ है, "देवताओं की एक योनि जिनका मुख घोड़े के जैसा होना माना जाता है, किंपुरुष, गाने–बजाने वाली एक जाति।"

नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा 12 खण्डों में प्रकाशित हिन्दी विश्वकोश के तीसरे खण्ड पर किन्नर की जो व्याख्या दी गई है वह इस प्रकार है –

1. "किन्नर हिमालय में आधुनिक किन्नौर प्रदेश के पहाड़ी, जिनकी भाषा कन्नौरी, गलचा, लाहौली आदि बोलियों के परिवार की है।"

2. "किन्नर हिमाचल प्रदेश के क्षेत्र में बसने वाली एक मनुष्य जाति का नाम है, जिसके प्रधान केन्द्र हिमवत् और हेमकूट थे। पुराणों और महाभारत की कथाओं एवं आख्यानों में तो उनकी चर्चाएं प्राप्त होती ही हैं, कादम्बरी जैसे कुछ साहित्यिक ग्रन्थों में भी उनके स्वरूप, निवासक्षेत्र और क्रियाकलापों के वर्णन मिलते हैं। किन्नरों की उत्पत्ति में दो मत हैं – एक तो यह कि वे ब्रह्मा की छाया अथवा उनके पैर के अंगूठे से उत्पन्न हुए हैं और दूसरा यह कि अरिष्ठा और कश्यप उनके आदिजनक थे।"

हिजड़ा, कीव, खोजन, मौसी, छक्का, शिखंडी, थर्ड जेंडर, ट्रांसजेंडर एवं तृतीय लिंग आदि नामों से जाने जानेवाले किन्नर का अस्तित्व अनंत कालों से चला आ रहा है। हर संस्कृति और सभ्यता में उनकी भूमिका अहम् रही है। वैदिक साहित्य, महाभारत, रामायण, संस्कृत नाटक एवं कौटिल्य के अर्थशास्त्र में स्पष्ट उल्लेख है कि समाज में किन्नरों के लिए पर्याप्त स्थान था। राजाओं के राज्य में भी उनकी भूमिका महत्वपूर्ण थी। वे बहादुर योद्धाओं के दल में शामिल होते थे। स्त्री–पुरुष कुछ भी, बन सकने की क्षमता उन्हें राजकीय जासूस का सम्मानित पद भी दिलाती थी। दरबार एवं मंदिर में अपनी नृत्य कला का प्रदर्शन करके वाह–वाही भी लूटते थे। इनाम–इकराम भी कमाते थे। हरम

एवं जनानखाने में विश्वसनीय सुरक्षाकर्मी की भूमिका निभाते थे। मतलब लिंग दोष उनमें कमी नहीं, बल्कि खूबी थी। वे उपेक्षा एवं तिरस्कार के पात्र नहीं, आदर के पात्र थे। लेकिन अंग्रेजों के शासन–काल में किन्नरों की उपेक्षा–तिरस्कार एवं सामाजिक बहिष्कार का जो सिलसिला शुरू हुआ, वह आज भी थमने का नाम नही ले रहा। पहले भी, अब भी, ये किन्नर उस दुनिया में रहते आए हैं, जिसमें आप और हम रहते हैं, लेकिन आज उनका समुदाय भारतीय समाज के सबसे उपेक्षित तबकों में से एक है। उनकी और हमारी मुलकात, आपकी–हमारी इच्छा हो या न हो, मात्र मांगलिक प्रसंगों पर ही होती रहती है। बाकी समय में हम तो एक निश्चित दूरी बनाए रखते हैं।

किन्नर है तो मनुष्य लेकिन पैदायशी वह न स्त्री लिंग है न पुल्लिंग। यानि प्राकृतिक (जैविक) कारणवश इनके जननांग पूर्ण रूप से विकसित नहीं हो पाते। वे अंतः लिंगी, उभय लिंगी या अलैंगिक होते हैं। हालाँकि अधिकांश किन्नर पुरुष शारीरिक संरचना के होते हैं, किन्तु उनका व्यवहार स्त्रियोचित होता है। बहुत कम किन्नर ऐसे भी होते हैं, जिनकी संरचना स्त्रियों की होती है पर व्यवहार पुरुषोचित हो। तथापि दोनों प्रकार के किन्नरों में जननांग अवशेषी होते हैं, जो सक्रिय नहीं होते। किन्नरों के इसी जैविक–यौनिक दोष की बदौलत समाज हमेशा उन्हें तिरस्कृत–उपेक्षित कर उसे अनुपयोगी सिद्ध करता रहा है। लम्बे समय तक समाज में उनकी पहचान मनुष्य के रूप में नहीं बल्कि हिजड़े के रूप में ही होती रही। हिजड़े का अर्थ ही है 'नपुसंक'। देश की सबसे बड़ी न्यायालय की दखल के बाद उन्हें आदरसूचक नाम मिला – 'किन्नर' और उनके लम्बे संघर्ष के बाद, अप्रैल 2014 में उन्हें 'थर्ड जेंडर' का दर्जा मिला।

## 13.4 किन्नर : इतिहास

'किन्नर' शब्द आधुनिक किन्नौर क्षेत्र में प्राचीनकाल से निवास करने वाली जनजाति विशेष के लिए प्रयोग होता आया है, जिसके उद्भव एवं विकास पर राहुल सांकृत्यायन ने 'किन्नर देश में' नामक अपनी रचना में विस्तृत रूप से चर्चा की है। देश के प्राचीन साहित्य में किन्नर को 'तृतीय प्रकृति' अथवा 'नपुंसक' मानव के रूप में सम्बोधित किया गया है। प्राचीनकाल से ही मनुष्य की प्रकृति पर विद्वानों ने विचार किया है। इसी क्रम में संस्कृति के विभिन्न प्राचीन ग्रन्थों में लिंग के ज्ञान पर भी प्रकाश डाला गया है। प्राचीन भाषाविद् पाणिनिकृत 'अष्टाध्यायी' के 'खिल–भाग' में लिंगानुशासन प्राप्त होता है, जिसमें स्त्री एवं किन्नर अथवा नपुंसक के भेद को स्पष्ट किया गया है।

**पौराणिक ग्रन्थ** – किन्नरों के विभिन्न लक्षणों के आधार पर पौराणिक ग्रन्थों में किंपुरुष एवं किंपुरुषी का भी भेद स्पष्ट किया गया है वात्स्यायनकृत कामसूत्र में किन्नरों को तृतीय प्रकृति कहा गया है, जिसके नवम् अध्याय में किंपुरुष एवं किंपुरुषी इसका उल्लेख मिलता है, "द्विविधा तृतीयाप्रकृतिः स्त्रीरूपिणी पुरुषरूपिणी च।' अर्थात् तृतीय प्रकृति दो प्रकार की होती है – एक स्त्री के रूप में और दूसरी पुरुष के रूप में। वह किन्नर, जिसमें स्त्री गुण ज्यादा हो, वह किंपुरुषी और जिसमें पुरुष गुण ज्यादा हों, वह किंपुरुष होता है।"

**बौद्ध साहित्य** – बौद्ध साहित्य में किन्नर शब्द का प्रयोग सुत्तपिटक के अंतर्गत विमानवत्थु में भी हुआ है, जिसमें लिखा है कि 'चन्द्रभागानदीतीरे अहोसी किन्नरी तदा' जिससे स्पष्ट होता है कि पर्वतीय भाग में चिनाब के तट

पर उस समय किन्नर रहा करते थे। पंडित राहुल सांकृत्यायन इन्हीं किन्नरों के विषय में कहते हैं कि 'यदि किन्नर का शब्दार्थ बुरा आदमी लें, तो अपने शत्रु के लिए ऐसे शब्दों का प्रयोग आज भी हुआ करता है। किसी ने अपने शत्रुओं को यह नाम दिया होगा,यह तो जरूर मालूम होता है कि ऐसा नाम आर्यों की भाषा में होने से यह अर्थाभाव आर्यों का ही हो सकता है, तो क्या किन्नर आर्यों से भिन्न थे? हां, आदिम रूप में भिन्न जरूर मालूम होते हैं।" राहुल सांकृत्यायन बौद्ध साहित्य के विश्लेषण के आधार पर यह स्पष्ट करते हैं कि किन्नौर देश में रहने वाले लोग शारीरिक रूप में विशेष थे। यह विशेषता किस कोटि की अथवा किस श्रेणी की थी, यह एक मौजूदा प्रश्न है।

**रामायण काल** – रामायण काल में किन्नरों की प्रत्यक्ष उपस्थिति के प्रमाण वाल्मीकिकृत रामायण एवं तुलसीदासकृत रामचरितमानस में मिलते हैं। वाल्मीकिकृत रामायण के उत्तरकांड में वर्णित राजा प्रजापति कर्दम के पुत्र इल की कथा के माध्यम से किन्नरों की उत्पत्ति के मिथकीय प्रमाण मिलते हैं। राजा कर्दम का पुत्र अपने कुछ सैनिकों के साथ जंगल में शिकार के लिए निकल पड़ता है। लगातार शिकार करते हुए राजा इल उस पर्वत पर पहुंचता है, जहां भगवान शिव अपनी पत्नी पार्वती के साथ विहार कर रहे थे। भगवान शिव ने पार्वती को खुश करने के लिए उस समय स्त्री रूप धारण किया हुआ था, जिसके प्रभाव से उस पर्वत पर उपस्थित राजा इल एवं उसके सिपाहियों सहित सभी जीव–जन्तु स्त्री के रूप में परिवर्तित हो गये। स्त्री रूप धारण किए हुए इल ने भगवान शिव से पुनः पुरुष रूप प्रदान करने के लिए प्रार्थना की। भगवान शिव ने पुरुषत्व देने से इन्कार कर दिया, किन्तु पार्वती ने अनुनय–विनय के पश्चात एक माह स्त्री एवं एक माह पुरुष के रूप में सम्पूर्ण जीवन व्यतीत करने का वरदान दिया। इसी रूप में इल एक माह सुन्दर स्त्री 'इला' और एक माह राजा 'इल' के रूप में जीवन यापन करने लगा। एक दिन चन्द्रमा के पुत्र बुद्ध भगवान ने सुन्दरी इला को पर्वत पर विचरण करते हुए देखा। उनकी सम्पूर्ण कथा जानकर सुन्दरी इला तथा उसके स्त्रीरूपी सभी सिपाहियों को बुद्ध भगवान ने देवयोनि विशेष होने का वर दिया तथा साथ ही श्वेत पर्वत पर निवास करने हेतु आमंत्रित किया, 'अत्र किंपुरुषीभूत्वा शैलरोधसी वत्स्यथ आवासस्तु गिरावस्मिन मीनाक्षी शीघ्रमेव विधीयाताम्।'

रामचरित मानस में भी किन्नरों का उल्लेख मिलता है। वनवास जाते समय श्रीराम अपने पीछे आए छोटे भाइयों सहित सभी स्त्री एवं पुरुषों को मार्ग से वापस लौट जाने के लिए कहते हैं। आदेश का पालन करते हुए सभी स्त्री एवं पुरुष वापस अयोध्या लौट आते हैं, किन्तु मध्यलिंगी अर्थात् हिजड़े वापस नहीं लौटते। 14 वर्षों के बाद वनवास से वापस लौटते समय श्रीराम ने उनसे वहां रुके रहने का कारण पूछा। तब श्रीराम के कथन को किन्नरों ने स्पष्ट किया कि प्रभु आपने नर और नारी को वापस जाने की अनुमति दी थी, किन्तु हमारे सम्बन्ध में कोई आदेश नहीं किया था।

इसका उल्लेख 'किन्नर कथा' उपन्यास में महेन्द्र भीष्म ने भी किया है। (पृ. 39)। कहा जाता है कि हिजड़ों की इस निश्चल एवं निस्वार्थ भक्ति भावना को देखकर श्रीराम ने उन्हें वरदान दिया कि कलयुग में तुम्हारा ही राज होगा और तुम लोग जिसको भी आशीर्वाद दोगे, उसका अनिष्ट नहीं होगा। रामचरितमानस में ही श्रीराम की भक्ति के सम्बन्ध में पात्रता का उल्लेख करते हुए लिखा है कि – "चराचर जगत में कोई भी जीव हो, चाहे वह स्त्री, पुरुष, नपुंसक,

देव, दानव, मानव, तिर्यक इत्यादि हो। अगर वह सम्पूर्ण कपट को त्यागकर मुझे भजता है, वह मुझे प्रिय है। स्त्री–पुरुष के साथ–साथ नपुंसक अर्थात् तृतीय लिंग के उल्लेख से स्पष्ट है कि रामायण काल में किन्नर वर्ग की विशेष उपस्थिति थी।"

**मध्यकाल** – मध्यकालीन भारतीय इतिहास में किन्नरों का सम्बन्ध हरमों के साथ देखने को मिलता है, क्योंकि हरम अरबी शब्द है। इसीलिए हरम की प्रथा मुस्लिम शासन की स्थापना के उपरान्त ही भारत में प्रारम्भ मानी जाती है, किन्तु हरम की भांति एक ही शासक द्वारा सैकड़ों स्त्रियों को रखने की प्रथा भारत में अति प्राचीन है। हरम की व्यवस्था की देख–रेख के लिए किन्नरों को ही रखा जाता था। किंपुरुषों को सुरक्षा की दृष्टि से और किंपुरुषियों के हरम में रहने वाली स्त्रियों की सेवा एवं सहायता के लिए रखा जाता था। खिलजी वंश के शासक अलाउद्दीन खिलजी के हरम में भी किंपुरुष एवं किंपुरुषियां होती थीं, किन्तु उन्हें खोजा, कलीव एवं खोजा सरा से सम्बोधित किया जाता था। गुजरात में किन्नरों की आराध्य मां बहुचरा देवी और अलाउद्दीन खिलजी के सम्बन्ध में एक प्रसंग मिलता है, जिसका उल्लेख समकालीन हिन्दी उपन्यासकार महेन्द्र भीष्म अपने उपन्यास किन्नर कथा में भी करते हैं, 'अलाउद्दीन खिलजी की सेना जब मां बहुचरा देवी के मन्दिर को विध्वंस करने पहुंची, तब उनके तमाम सैनिकों ने मन्दिर की मुर्गियां खा लीं। जब देवी के संज्ञान में यह आया, तब उन्होंने इन सारी मुर्गियों को आह्वान कर अपने पास बुलाया। देवी के आह्वान करने से सारी मुर्गियां सैनिकों का पेट फाड़कर देवी के समक्ष उपस्थित हुईं। उन सैनिकों के प्राण बच गए, जिन्होंने मुर्गियां नहीं खाई थीं। वे सारे के सारे जीवित सैनिक देवी के अनुयायी बन गए और देवी की प्रसन्नता के लिए उन्होंने स्त्री वेश धारण कर लिया। मां बहुचर देवी ने उन्हें हिजड़ा रूप प्रदान कर सभी को अपनी सेवा में लगा लिया।

अलाउद्दीन खिलजी के विश्वासपात्र सेनापति मलिक काफूर को इतिहासकारों ने किन्नर माना है। अलाउद्दीन खिलजी और मलिक काफूर के मध्य समलैंगिक सम्बन्ध थे। इसके सम्बन्ध में यूनिवर्सिटी ऑफ मोटाना की प्रोफेसर वनिता एवं रूट अपनी पुस्तक 'सेमसेक्स लव इन इंडिया' में लिखती है कि 'सुल्ताना खिलजी मकि काफूर की सुन्दरता पर फिदा था और उसे खम्भात की लड़ाई के बाद बतौर गुलाम खरीदा भी गया था। इससे पता चलता है कि अलाउद्दीन खिलजी के मलिक काफूर के साथ वाकई में समलैंगिक सम्बन्ध थे, इसी कारण उसको प्रधान सेनानायक भी नियुक्त किया गया।'

**महाभारत काल** – महाभारत में किन्नर के रूप में शिखंडी तथा बृहनल्ला (अर्जुन) का उल्लेख मिलता है। अर्जुन ने शिखंडी को ढाल बनाकर ही भीष्म पितामह का वध करने में सफलता पाई थी। शिखंडी को सामने देखकर भीष्म पितामह ने कहा कि वह एक नपुंसक से युद्ध नहीं कर सकते और अपने शस्त्र नीचे डाल दिए थे।

शिंखंडी का जन्म एक कन्या के रूप में हुआ था, किन्तु उसके जन्म के समय एक आकाशवाणी हुई कि उसका लालन–पालन एक पुत्री की तरह नहीं वरन् एक पुत्र की भांति किया जाए। इसलिए स्वभाव से स्त्री एवं शारीरिक स्तर से पुरुष शिखंडी का लालन–पालन पुरुष की भांति हुआ, जो इतिहास में नपुंसक के रूप में जाना गया। पांडवों द्वारा भीष्म पितामह को पराजित न करने की स्थिति में, उनसे ही आदर्श स्वरूप उनको पराजित करने का उपाय पूछा गया। कौन उन्हें पराजित करेगा, इस सम्बन्ध में भीष्म पितामह कहते हैं –

तुम्हारी सेना में जो महारथी द्रुपद पुत्र प्रायः शत्रुओं को जीता करता है, वह पहले स्त्री था और पीछे से पुरुष हो गया है।

एक प्रसंग यह भी है कि अर्जुन एवं अलूपी का पुत्र अरावन एक किन्नर था। इसलिए किन्नरों को कुछ स्थानों पर अरावनी भी कहा जाता है। अरावली अर्थात् अरावन के वंश से अथवा अरावन के अनुयायी। महाभारत की मूल कथा के अनुसार कुरुक्षेत्र में युद्ध के दौरान पांडवों को अपनी विजय सुनिश्चित करने हेतु मां काली के चरणों में एक राजकुमार की नरबलि देनी पड़ती है। नरबलि के लिए अरावन खुद को प्रस्तुत करता है। बलिदान से पूर्व अरावन ने श्रीकृष्ण से वरदान में एक सुन्दर कन्या से विवाह करने की इच्छा जाहिर की, किन्तु कोई भी कन्या एक दिन के लिए सुहागिन कैसे बन सकती थी? इसलिए मोहिनी का रूप धारण करके श्रीकृष्ण अरावन से विवाह करते हैं। किन्नर, जो स्त्री रूप में पुरुष माने जाते हैं, इसी कारणवश तमिलनाडु के प्रसिद्ध कुवागत मेले में अरावन से एक रात की शादी करते हैं। 'पूरे कुवागम में सत्रह दिनों तक उत्सव जैसा माहौल होता है। देश के कोने–कोने से हिजड़े कुवागत में जमा होते हैं।'

## 13.5 निष्कर्ष

विविध पौराणिक एवं ऐतिहासिक प्रसंगों एवं सन्दर्भों का सूक्ष्मता के साथ अध्ययन करने के पश्चात यह तथ्य उभरकर सामने आता है कि आज समाज में उपेक्षित एवं हेय दृष्टि से देखे जाने वाले किन्नर समाज का इतिहास समृद्ध है। देवताओं के साथ उनका भी उल्लेख किया जाता है। जब समाज की संरचना में उच्च एवं निम्न वर्ग की संकल्पना थी। उस दौर में भी किन्नरों का सम्बन्ध उच्च वर्ग के साथ देखने को मिलता है। वर्तमान समय में लोक से भी इतर समझे जाने वाले किन्नर समाज को प्राचीन काल में शिष्ट एवं उच्च वर्ग के साथ देखा जाता था।

## 13.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र 1. किन्नर शब्द का अर्थ बतलाते हुए इसके इतिहास पर प्रकाश डालें।

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

प्र 2. मध्यकालीन किन्नर इतिहास पर प्रकाश डालें।

उ0 _____

प्र 3. पौराणिक ग्रन्थों में किन्नर शब्द किनके लिए प्रयुक्त होता था? स्पष्ट कीजिए।

उ0

प्र 4. बौद्ध साहित्य में किन्नरों का क्या इतिहास रहा है स्पष्ट कीजिए।

उ0

## 13.7 पठनीय पुस्तकें


1. पोस्ट बाक्स नं. 203 नाला सोपारा – चित्रा मुद्गल
2. चित्रा मुद्गल के उपन्यासों में नारी चित्रण – डॉ. शालिनी
3. थर्ड जेंडर के संघर्ष का यथार्थ – सं. डॉ. शगुफ्ता नियाज़
4. थर्ड जेंडर विमर्श – सं. शरद सिंह


******

# उपन्यास पोस्ट बॉक्स नं. 203 'नाला सोपारा' में अभिव्यक्त समस्याएँ

**14.0 रूपरेखा**

**14.1 उद्देश्य**

**14.2 प्रस्तावना**

**14.3 चित्रा मुद्गल : संक्षिप्त परिचय**

**14.4 उपन्यास में अभिव्यक्त समस्याएँ**

**14.5 उपन्यास का उद्देश्य**

**14.6 सारांश**

**14.7 अभ्यासार्थ प्रश्न**

**14.8 पठनीय पुस्तकें**

## 14.1 उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख के अध्ययनोपरांत आप –

- किन्नर जीवन की व्यथा एवं पीड़ा को समझेंगे।
- उस समुदाय के बारे में जानेंगे जो हमेशा हाशिए की ओर धकेल दिया गया।
- प्रस्तुत आलेख में थर्ड जेंडर समुदाय की समस्याओं के प्रति अवगत होंगे।

## 14.2 प्रस्तावना

चित्रा मुद्गल का उपन्यास पोस्ट बॉक्स नं. 203 'नाला सोपारा' तृतीय प्रकृति अथवा थर्ड जेंडर समुदाय की संवेदना को प्रस्तुत करता हुआ नए कलेवर की पत्राचार शैली में रचित एक महत्वपूर्ण उपन्यास है। उपन्यास लेखन

के सम्बन्ध में लेखिका लिखती हैं, "लम्बे समय से मेरे मन में पीड़ा थी, एक छटपाहट थी, कि आखिर क्यों हमारे इस अहम हिस्से को अलग–थलग किया जा रहा है।" यह उपन्यास समाज के इसी अलग–थलग किए जाने वाले समुदाय की पीड़ा एवं व्यथा का चित्रण करता है। यह उपन्यास समाज की तीसरी सत्ता को उपेक्षा और तिरस्कार के अँधेरे से बाहर लाकर उसकी सहज मानवीय पहचान के लिये किये जाने वाले संघर्ष में निहित है और यही दरअसल वह मुकाम है जहां चित्रा मुद्गल को साहित्य में एक सशक्त हस्ताक्षर के रूप में स्वीकार किया गया है।

## 14.3 चित्रा मुद्गल : संक्षिप्त परिचय

चित्रा मुद्गल हिन्दी की वरिष्ठ कथा लेखिका हैं। उनका जीवन किसी रोमांचक प्रेम–कथा से कम नहीं है। उन्नाव के जमींदार परिवार में जन्मी किसी लड़की के लिए साठ के दशक में अंतर्जातीय प्रेम विवाह करना आसान काम नहीं था। लेकिन चित्रा जी ने तो शुरू से ही कठिन मार्ग के विकल्प को अपनाया। पिता का आलीशान बंगला छोड़कर 25 रुपए महीने के किराए की खोली में रहना और मजदूर यूनियन के लिए काम करना – जैसी हर चुनौती को उन्होंने हँसते–हँसते स्वीकार किया।

10 दिसम्बर 1944 को जन्मी चित्रा मुद्गल की प्रारंभिक शिक्षा पैतृक ग्राम निहाली खेड़ा (जिला उन्नाव, उ.प्र.) से लगे ग्राम भरतीपुर की कन्या पाठशाला में हुई। हायर सेकेंडरी पूना बोर्ड से की और शेष पढ़ाई मुंबई विश्वविद्यालय से। बहुत बाद में स्नातकोत्तर उन्होंनें पत्राचार पाठ्यक्रम के माध्यम से एस.एन.डी.टी. महिला विश्वविद्यालय मुंबई से की। चित्रकला में गहरी अभिरूचि रखने वाली, चित्रा मुद्गल ने जे.जे. स्कूल आफ आर्ट्स से फाइन आर्ट्स का अध्ययन भी किया। सोमैया कॉलेज में पढ़ाई के दौरान वह श्रमिक नेता दत्ता सामंत के संपर्क में आकर श्रमिक आंदोलन से जुड़ीं। उन्हीं दिनों घरों में झाड़ू–पोंछा कर, उत्पीड़न और बदहाली में जीवन–यापन करने वाली बाइयों के उत्थान और बुनियादी अधिकारों की बहाली के लिए संघर्षरत संस्था जागरण की बीस वर्ष की वय में सचिव बनी।

चित्रा मुद्गल के अब तक तेरह कहानी–संग्रह, चार उपन्यास, तीन बाल उपन्यास, चार बाल कथा संग्रह, पांच संपादित पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। उपन्यास 'आवां' आठ भाषाओं में अनूदित तथा देश के 6 प्रतिष्ठित सम्मानों से अलंकृत है। एक जमीन अपनी, आवां, गिलिगडु और पोस्टबाक्स नं. 203 नाला सोपारा इनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। लेखिका को पढ़ना जैसे भावनाओं के गहन बियाबां से गुजरना है, या मन की रेती पर किसी बादल का बरसना होता है। चित्रा मुद्गल भारतीय साहित्य में एक समादृत नाम है। वे हमारे समय की ऐसी लेखिका हैं जो लेखन के सामयम से सामाजिक सरोकारों पर जमीनी काम करती हैं। उनका व्यापक जीवनानुभव उनकी लेखनी में नज़र आता है।

1990 में प्रकाशित उपन्यास 'एक ज़मीन अपनी' विज्ञापन जगत की पृष्ठभूमि पर आधारित उपन्यास है। इस उपन्यास में उपन्यासकार ने भूमण्डलीकरण के दौर में विज्ञापन संस्कृति और उससे जुड़ी समस्याओं का उल्लेख किया है। यह उपन्यास विज्ञापन जगत् के रहस्यों का खुलासा करता है।

1999 में प्रकाशित उपन्यास 'आवाँ' स्त्री विमर्श का महाख्यान है। इस उपन्यास में आधुनिक युग में नारी की वास्तविक स्थिति, उत्पीड़न, अत्याचार, मजदूर आन्दोलन, ट्रेड युनियनों आदि का यथार्थ अंकन हुआ है। उपन्यास मुम्बई की पृष्ठभूमि पर लिखा गया है। हिन्दी उपन्यास साहित्य में यह पहला उपन्यास है जो पूँजीपतियों और मिल मालिकों के संघर्ष को चित्रित करता है। इस उपन्यास में स्त्री शोषण की समस्या के साथ मजदूर राजनीति, उनके आपसी वैमनस्य और प्रतिद्वन्द्विता एवं छल–छद्म को भी दर्शाया गया है।

'गिलिगड्डु' 2002 में प्रकाशित हुआ। यह एक लघु उपन्यास है। इसमें वृद्धों के जीवन की समस्याओं का चित्रण हुआ है। लेखिका ने वर्तमान समय में बुजुर्गों की स्थिति को इस उपन्यास में उद्घाटित किया है। आज की पीढ़ी बुजुर्गों को घर में सम्मान न देते हुए उन्हें अकेला छोड़ देती है। चित्रा मुद्गल ने अपने इस उपन्यास में आधुनिक युग में तेजी से बदलते हुए जीवन मूल्यों के बीच उपेक्षित होते बुजुर्गों की कथा कही है।

'पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा' 2016 में प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास समाज के उस हिस्से को सामने लाया जिसकी पहचान आमतौर पर हिजड़े के रूप में होती है। उपन्यास की कथा समाज की तीसरी सत्ता को उपेक्षा और तिरस्कार के अँधेरे से बाहर लाकर उसकी सहज मानवीय पहचान के लिए किये जाने वाले संघर्ष में निहित है। उपन्यास में समाज की हर सतह उघड़ती है और एक नयी रचनात्मक सतह बनने को आतुर है। लेखिका उपन्यास में प्रश्न उठाती है कि परिवार के बीच से छिटककर नरकीय जीवन जीने को विवश किए जाने वाले ये 'बीच के लोग' आखिर मनुष्य क्यों नहीं माने जाते।

## 14.4 उपन्यास में अभिव्यक्त समस्याएँ

'पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा' थर्ड जेंडर समुदाय की समस्याओं को अत्यन्त मानवीय दृष्टि से प्रस्तुत करने का प्रयास करता है। उपन्यास के लेखन को स्पष्ट करती हुई लेखिका कहती हैं, "इस उपन्यास में मैने आज़ाद भारत में किन्नरों की स्थिति पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है। आज़ादी के पहले और बाद हमने अपनी तमाम रूढ़ियों जैसे सती प्रथा, बाल विवाह, दलितों और अस्पृश्यों से भेदभाव आदि को तोड़ा है लेकिन किन्नरों की जिंदगी में कोई भी परिवर्तन नहीं आया। अब हाल ही में हमारे राजनेताओं ने उन्हें अलग श्रेणी देने की कवायद शुरू की है जबकि समाज में उनकी स्थिति आज भी अछूतों से बदतर है। समाज ने उनकी पढ़ाई–लिखाई पर ध्यान नहीं दिया। उन्हें किसी तीज–त्योहार में शामिल नहीं किया जाता है। इसके चलते आज भी हालत यह है कि अगर मेट्रो में एक किन्नर चढ़ जाए तो सब उसे अजीब निगाहों से देखते हैं। सड़क पर भीख माँगते हुए मिल जाए तो हिकारत की नजर से देखकर जल्दी से पैसा–वैसा देकर चलता करते हैं। जब मैं मुंबई के नाला सोपारा में रहती थी तब मेरा सामना एक ऐसे युवक से हुआ जिसे किन्नर होने की वजह से जबरिया घर से निकाल दिया गया था। यह उपन्यास उसी युवक के विद्रोह की कहानी है।"

**लिंग दोष की समस्या** – चित्रा मुद्गल 'नाला सोपारा' में गहरी मानवीय अपील के साथ उपस्थित हैं। समाज में जैसे बलात्कृता स्त्री अपने किसी अपराध के बिना दोहरा दण्ड भुगतती है, अपने अपमान एवं यातना के साथ परिवार

और समाज की उपेक्षा का दण्ड, लगभग वही स्थिति समाज में लिंग से ग्रस्त बच्चों की होती है। उपन्यास में लेखिका इस समस्या को उसके वास्तविक परिप्रेक्ष्य में मानवीय सहानुभूति के साथ देखे जाने की अपील करती है। उपन्यास का पात्र विनोद पुरुष लक्षण और प्रवृति वाला हिजड़ा होता है। उसमें कोई स्त्रैण प्रवृत्ति नहीं है, इसलिए वह साथी किन्नरों द्वारा लाख जबर्दस्ती करने और प्रताड़ित होने के बावजूद उनके अनुकूल नहीं हो पाता और श्रम करके जीने के लिए अनवरत संघर्ष करता है। वह अपनी बात को लिखता है, "सबने मुझसे मुँह मोड़ लिया। सपनों में मुझसे मुँह नहीं फेरा। आज भी वे मेरे पास बेरोक–टोक चले आते हैं।" विनोद का सपना होता है कि वह भी सामान्य मनुष्य की भाँति गरिमापूर्ण जीवन जिये। वह बार–बार प्रश्न उठाता है कि जननांग विकलांगता को इतना बड़ा दोष क्यों मान लिया गया है? सिर्फ इसी कारण उसे घर–परिवार, रिश्ते–नाते सबसे कट कर नरक की ज़िंदगी क्यों भोगनी पड़ रही है? वह कहता है, "जननांग विकलांगता बहुत बड़ा दोष है, लेकिन इतना बड़ा भी नहीं कि तुम मान लो कि तुम धड़ का मात्र वही निचला हिस्सा हो। मस्तिष्क नहीं हो, दिल नहीं हो, धड़कन नहीं हो, आँख नहीं हो। तुम्हारे हाथ–पैर नहीं हैं। हैं, हैं, हैं, सब वैसे ही हैं जैसे औरों के हैं। यौन सुख लेने–देने से वंचित हो तुम, वात्सल्य सुख से नहीं।"

लिंग–पूजक समाज लिंग विहीनों को कैसे बर्दाश्त करेगा? इस बड़े प्रश्न को लेखिका ने समाज के समक्ष प्रस्तुत करते हुए गंभीरतापूर्वक विचार करने के लिए भी प्रवृत किया है कि आखिर एक मनुष्य को सिर्फ इसलिए समाज से बहिष्कृत क्यों होना पड़े कि वह लिंगदोषी है? सिर्फ इसी कारण उसकी उम्मीदों, सपनों, आकांक्षाओं, भावनाओं का गला क्यों घोंट दिया जाता है? वस्तुतः उसके मूल में समाज का यौन–केंद्रित होना है उपन्यास इस बात को प्रबलता से रेखांकित करता है कि हमारा समाज जब तक यौन केंद्रित बना रहेगा, तब तक यह समस्या बनी रहेगी। यौन केंद्रित समाज से मुक्ति ही इस उपन्यास का स्वप्न है और इसका केंद्रीय कथ्य भी ।

"बावला, तूने यह समझाया था और छोकरों से तू अलग है। यह मान लेने में ही तेरी भलाई है, न किसी से बराबरी कर, न अपनी इस कमी की उनसे कोई चर्चा। समाज को ऐसे लोगों की आदत नहीं है और वे आदत डालना भी नहीं चाहते। पर मुझे विश्वास है, हमेशा ऐसी स्थिति नहीं रहने वाली। वक्त बदलेगा। वक्त के साथ नजरिया बदलेगा।" माँ द्वारा बिन्नी को दिए गए इस संदेश से जहाँ समाज की रूढ़िवादिता का आभास मिलता है वहीं लैंगिक अक्षमता से त्रस्त पुत्र को माँ की सांत्वना जीवन के प्रति आशान्वित करती है क्योंकि ये तो सत्य है ही, वक्त बदलता है पर कितनी तेज या धीरे, उसकी गति पर निर्भर करता है।

**विस्थापन की दशा** – उपन्यास का नायक बिन्नी एक मेधावी छात्र है। माँ–बाप के द्वारा बिन्नी को अनेक विशेषज्ञ डाक्टरों को दिखाया गया परन्तु कहीं भी लाभ नहीं हुआ अपितु शारीरिक विकृति के साथ ही बिन्नी बड़ा होता चला गया। हिजड़ों की नायिका चंपाबाई पूरी जानकारी लैस घर पर हंगामा मचाती है और बिन्नी पर अपने समुदाय का हक जताती है। माँ उस दिन तो जैसे–तैसे उसे टाल देती है, लेकिन वह कुछ दिन बाद फिर आते और उस बच्चे की जाँच करके अपने साथ ले जाने की धमकी भी दे जाती है। स्वाभाविक ही परिवार के लिए बड़ा सदमा था। वह कितना ही असामान्य और शारीरिक न्यूनता का शिकार हो, तेरह–चौदह साल तक उसी परिवार का अंग बनकर पाला पोसा है।

भविष्य की चिंता में, विचार विमर्श के बीच, यह विचार भी एक बार सामने आता है कि उसकी जगह छोटे भाई को दिखाकर जैसे भी हो इस संकट से उबरने की कोशिश की जाए। लेकिन सामाजिक संजाल ऐसा नहीं होता है तो इतने समय बाद चंपाबाई कैसे उस परिवार तक पहुँचती। अपनी धमकी को सही साबित करते हुए चंपाबाई जल्दी ही लौटती है और बस्ती–मुहल्ले में हंगामे से बचने के लिए बिन्नी अंततः उसे सौंप दिया जाता है। माँ–बाप को संबोधित अपने पत्रों की शृंखला वाले किसी पत्र में, जिसके सहारे ही उपन्यास का कथानक बुना गया है। माँ की इस विवशता को वह कसाई के हाथ सौंपी गई बछिया की तरह बताकर छिटकन और अलगाव की आन्तिरक पीड़ा को ही व्यक्त करता है।

चंपाबाई को सौंपे जाते समय विनोद–बिन्नी की उम्र चौदह साल की थी। एक तरह से उसका दोहरा विस्थापन था जितना ही सामाजिक, सांस्कृतिक उतना ही भावनात्मक और परिवेशगत। यहाँ कैसे भी धार्मिक आचार शास्त्र की जगह बिरादरी के अपने आचार शास्त्र पर अधिक बल होता है। उसके रोज़ नहाने की आदत को यहाँ उपहास की दृष्टि से देखा जाता है। इसके लिए संगी–साथी उसका मज़ाक उड़ाते हैं। स्त्रीलिंग और पुल्लिंग को लेकर भी तब–जब प्रताड़ित किया जाता है। जबकि वह पुरुष के रूप में अपनी पहचान कायम रखना चाहता है। 'सारी प्रताड़ना के बावजूद वह उनकी बात स्वीकार नहीं करता और अंत तक अपनी ज़िद पर डटा रहता है। उनके लात, घूसे, थप्पड़ और बातों में गर्म तेल–सी टपकती किसी भी सम्बन्ध को न बख्शने वाली अश्लील गालियों के बावजूद न मैं मटक–मटक कर ताली पीटने को राजी हुआ, न सलमे–सितारे वाली साडियाँ लपेट कर लिपिस्टिक लगा कानों में बूंदे लटकने को।"

उसका यह विस्थापन उसके साथ ही परिवार के लिए भी मानसिक–भावनात्मक पीड़ा से अधिक क्षोभ और फजीहत का सबब था। आस–पड़ोस के लोग ही नहीं स्कूल और संबन्धियों के लिए बाकायदा एक कहानी गढ़ी जाती है। स्कूल में यह सूचना दी जाती है कि जूनागढ़ में वह सड़क–दुर्घटना का शिकार हो गया। इसी तरह मामा को बताया जाता है कि उत्तराखण्ड में यात्रा के दौरान किसी संकरे मोड़ पर यह दुर्घटना घटी। यह भी कहा गया कि स्कूल की ओर से पिकनिक के दौरान कुछ अन्य साथियों के साथ वह प्रपात क्या नदी में बह गया और उसका शव तक नहीं मिला। आस–पड़ोस से बचने के लिए परिवर वाले यह निश्चय करते हैं कि कालवादेवी वाला पुराना निजी मकान बेचकर कहीं और रहा जाये। एक समृद्ध और सम्मानित बस्ती से नाले जैसे घृणित माहौल में पहुँचना ही विस्थापन है उससे अधिक विस्थापन का दंश बिन्नी भोगता है यहाँ विनोद और बिन्नी दोनों रूपों से अधिक उसे बिमली के रूप में एक नई पहचान पर खास ज़ोर दिया जाता है। इसे न मानने पर जब–तब उसे शारीरिक रूप से प्रताड़ित भी किया जाता है। इस मानसिक आघात से विनोद की माँ और पिता चुप्पी साध लेते हैं। एक गहन और रहस्यमयी चुप्पी मानो उनका सुरक्षा कवच हो।

विस्थापन हर व्यक्ति के लिए दुखदाई होता है। हिजड़ों के तो जीवन का सत्य भी होता परिवार से विस्थापन और जन्म भर उनकी याद में तड़पना। बिन्नी तो एक भी दिन अपने परिवार और माँ को विस्मृत नहीं कर पाता है, "ते तू ही बता, तुझे पत्र लिखते हुए उस आदत से कैसे उबरूँ? लिखते हुए तू सामने आकर बैठ जाती है। मुझे लगने लगता है कि मैं तुझसे वह सब कुछ जान लूँ, जिसे जानने के अधिकारी से मैं अपदस्थ कर दिया गया हूँ और तुझे, उस सबसे करा दूँ जिसे तुझे जनवाए बगैर मैं रह ही नहीं सकता।"

अपने परिवार के साथ गुजारा हर पल, हर तीज, त्यौहार आदि घर से विस्थापित किन्नर को पल–पल परिवार की ओर खींचती है परन्तु वह मजबूर हो मन मसोस कर रह जाता है। उपन्यास में तो लेखिका ने पत्र के माध्यम से भावनाओं का प्रकटीकरण करवा दिया है, परन्तु यह भी सत्य है कि अधिकांश किन्नर तो अनपढ़ होते हैं वे किस प्रकार प्रकट करते होंगे अपनी भावनाओं को। अंदर ही अंदर कितना रोते होंगे जब उन्हें अपने घर में परिवार के द्वारा मनाए गए पहले और आखिरी जन्म दिन की याद आती होगी, "20 जून को मेरा जन्मदिन था, बा। घर में सबका जन्मदिन तू धूमधाम से मनाया करती है। मेरा जन्मदिन मनाया था तूने, बा? केसर की खीर बनाई थी, साथ में खांडवी। तू हंस रही है न! हूँ न अब भी मै नादान! जबकि इतना बड़ा हो गया हूँ। इस नरक में रहकर असली उम्र से दोगुना। ... और अंत में कैसे लिखूं कि पप्पा को कहना मैं उन्हें खूब–खूब याद करता हूँ। उनके पास होता तो पढ़ाई से लौटकर उनकी किराने की दुकान पर बैठ उनका हाथ बंटाता, जिस काम से मोटा भाई को घृणा है।"

अतः स्पष्ट है कि सामाजिक व्यवस्था के कारण अपने ही घर परिवार से बेदखल कर दिए गए इस वर्ग की अपनी अलग वेदना है। "प्रत्येक हिजड़ा अभिशप्त है, अपने परिवार से बिछुड़ने के दंश से। समाज का पहला घात यहीं से उस पर शुरू होता है। अपने ही परिवार से, अपने ही लोगों द्वारा उसे अपनों से दूर कर दिया जाता है। परिवार से विस्थापन का दंश सर्वप्रथम उन्हें ही भुगतना होता है।" परिवार और समाज द्वारा तो उन्हें त्याग दिया जाता है किन्तु भावात्मक स्तर पर कभी अपने परिवार से अलग नहीं हो पाते हैं।

**परिवार की अवहेलना का दंश** – प्रस्तुत उपन्यास में पिता व्यथित होकर बिन्नी के साथ असंतुलित व्यवहार अपनाता है। माँ मजबूर है और भाई क्रूर। स्पष्ट है कि भारतीय परिवार भी अपने थर्ड जेण्डर सदस्य के प्रति अमानवीय दृष्टिकोण रखते हैं; जिसका चित्रण लेखिका विनोद के बड़े भाई सिद्धार्थ के माध्यम से करती है। बालक बिन्नी को हिजड़ों के हाथों सौंपने में उसकी एक महत्वपूर्ण भूमिका थी। बिन्नी एक किन्नर है और सिद्धार्थ पूर्ण पुरुष। वह बिन्नी को सामाजिक अपयश, बदनामी के कारण घर में रखे जाने के पक्ष में नहीं है और न ही उसे परिवार से जोड़े रखना चाहता है। उनकी मंशा अपने छोटे भाई से पीछा छुड़ाने की है। किसी तरह उसे घर–परिवार से दूर कर दिया जाए। उपन्यास का एक उदाहरण दृष्टव्य है, "बाथरूम से नहाकर निकले मोटा भाई अपने कमरे में घुसते हुए तेरी ओर पलटे थे – चौदह वर्ष बाद अचानक जिन्न से हिजड़े यहाँ प्रकट हो सकते हैं तो होस्टल में नहीं प्रकट हो सकते। कोई गारंटी है इसकी? बात फैल गई तो पूरे खानदान पर दाग लग जाएगा। अपने दीकरे के बिना मैं प्राण दे दूँगी" कहने पर मोटा भाई अपनी माँ पर बिगड़ते हुए कहते हैं, "अपनी कोख से एक ही औलाद पैदा की है बा तूने? हमें कहीं से पड़ा उठाकर लाई है जो तू .....।"

लैंगिक रूप से अपरिपूर्ण बच्चों के प्रति माता–पिता का व्यवहार भी असंतुलित होता है। प्रस्तुत उपन्यास में एक प्रसंग आता है जब पिता का ब्लड प्रेशर नापना होता है। पिता को बड़े पुत्र पर भरोसा होता है परन्तु बिन्नी पर नहीं क्योंकि वह अंदर से उसे अपूर्ण मानते हैं, "मोटा भाई ने मुझे ज़िम्मेदारी सौंपी थी कि पप्पा को सुबह शाम दवा अब तुझे खिलानी होगी तो मैं कितना खुश हुआ था लेकिन पप्पा मुझ पर विश्वास ही नहीं करते थे। मेरे ब्लड़प्रेशर नापकर

लिख लेने के बावजूद वे मोटा भाई को अक्सर गुहार लगा बैठते, जरा मेरा ब्लडप्रेशर तो आकर ले लो, सिद्धार्थ। देखो, बिन्नी ने ठीक लिया है कि नहीं। नीचे का कितना है।" यही नहीं बिन्नी को किन्नर समुदाय को सौंपने के बावजूद मोटा भाई सिद्धार्थ अपनी गर्भवती पत्नी की सोनोग्राफी करवाते समय बार–बार डाक्टर से यही सवाल करता है कि कहीं उसके गर्भ में पलने वाली संतान में लिंग दोष तो नहीं है। अगर ऐसा है तो वह बच्चे को नष्ट करवा देगा पर एक लिंग दोषी बच्चे का पिता नहीं बनेगा। उसके डर के मारे विनोद की माँ विनोद का फोन नहीं उठाती थी। सिद्धार्थ माँ को उनके कमरे में टंगे विनोद की तस्वीर को भी हटाने पर मजबूर करता है क्योंकि वह अपने लिंग दोष युक्त भाई की कोई स्मृति इस घर में नहीं रखना चाहता जिसका बुरा प्रभाव उसकी गर्भवती पत्नी पर पड़े। माँ के सामने ही वह बिन्नी को 'काली परछाई' के रूप में सम्बोधित करता है।

यहाँ यह कहना अनिवार्य होगा जहाँ यह समुदाय अपने परिवारजनों की अवहेलना सहन करती है वहीं किन्नर सन्तान अपने माता–पिता से उतना ही स्नेह और लगाव रखती है जितना कि अन्य परन्तु उसका स्नेह और माता–पिता के लिए कर्तव्य निर्वहन की भावना दिल में ही दफन होकर रह जाती है। वह हमेशा अपने माता–पिता से स्वयं को जोड़कर देखता है, "बहुत कुछ नहीं जानती है मासूम। तीन बरस की थी, तब से वह सरदार तुलसीबाई के साथ है, उनकी अंधभक्त। अपने मां–बाप की याद नहीं उसे। नहीं जानती कि वह कहाँ पैदा हुई, कहाँ की है। एक सुबह शीशे के सामने खड़ी होकर कुछ असंबद्ध सी बातें कर रही थी। मैं उसके पीछे आ खड़ा हुआ था अचंभित। शायद उसे आभास हो गया था। कोई उसके पीछे आ खड़ा हुआ था। उसने अपनी ठुड्डी ऊपर उठाई थी। शीशे में अब उसकी उठी हुई ठुड्डी और तना हुआ गला दिख रहा था। अगले ही पल उसने चेहरे को नीचे कर लिया था और ऑखों से अपने चेहरे को घूर रही थी। उसकी आंखें अपने नयन–नक्श टटोल रही थीं। जानती हूँ, मैं अपनी माँ और बाबू जी को। देखा है मैंने उन्हें खुद को आईने में देखते हुए। देखो, देखो न। गौरी हूँ कि नहीं। एकदम अपनी माँ जैसी माँ खूब गोरी रही होगी। आंबा हल्दी की कच्ची गाँठ जैसी – केशरधुली गोराई। हाथ नयन नक्श थोड़ा कम तीखे हैं लेकिन नाक सुतवां है। माथा संकरा। इसलिए मैं बाल ऊपर की ओर काढ़ती हूँ। बाबू जी के चलते माथा संकरा हो गया होने दा।" इतना सब होने के बाद भी बिन्नी की चिंता अपने परिवार के प्रति बनी रहती है। वह अपनी माँ से पत्र में पापा के ब्लड प्रेशर के बारे में पूछता रहता है। वह उनसे यह भी पूछता है कि हमारा नया फ्लैट कौन से माले पर है इसलिए नहीं क्योंकि उसे घर का पता चाहिए बल्कि, "इसलिए जानना चाहता हूँ कि तुझे और पापा को सीढ़ियाँ तो नहीं चढ़नी पड़ती। कालबा देवी वाले घर की तरह लिफ्ट है न बिल्डिंग में। लिफ्ट न हो तो लिफ्ट वाला घर ले ले। पप्पा को पेसमेकर लगा है न? मोबाइल फोन इस्तेमाल करना भी ऐसे में मना है, लेकर तो नहीं दिया उनको।" जब उसे सूचना प्राप्त होती है कि बड़ा भाई और भाभी परिवार से अलग होकर रहने लगे हैं तो वह पुनः अपनी माँ से प्रार्थना करता है कि उसे प्रतिदिन सुबह शाम मिनट भर के लिए फोन करने की अनुमति दे दें। जिससे कि मैं तुम्हारा और पिता का कुशल क्षेम जान सकूँ जिससे कि मुझे प्रत्येक सुबह पता लग सके कि, "पापा पिछली रात अपने बड़े दीकरा जो उनके परिवार के नयी पीढ़ी की विरासत सौंप जाने में असमर्थ है सही दावा कर सकता है कि उसकी झोली में मात्र उनकी चिंता है और उन चिंताओं के प्रति वह पूरी तरह से ईमानदार है।" माँ की सरवाइकल स्पान्डलाइटिस की भी उसे फिक्र रहती है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि परिवार की अवहेलना के बावजूद ऐसे बच्चे के मन में अपने परिवार के प्रति मोह समाप्त नहीं होता, उसका मन कुंठाग्रस्त रहता है कि वह अपने माता–पिता की सेवा न कर सका।

**नकारात्मक प्रवृत्ति** – यह उपन्यास हिजड़ों को भी मनुष्य मानने और उनके प्रति सहज मानवीय संवेदना रखने का संदेश देता है। लेखिका इस समुदाय की नकारात्मक प्रवृत्ति, मानसिकता और कुप्रथाओं का भी चित्रण करती है। बिन्नी हिजड़ों की दुर्गति के लिए स्वयं हिजड़ों को जिम्मेदार बताने का साहस करता है क्योंकि हिजड़ा बिरादरी मुख्यधारा द्वारा हिजड़ों पर थोपे गये हिजड़ागिरी के लक्षण से स्वयं को मुक्त करने के लिए प्रायः हाथ पैर नहीं मारती। बधाई और भीख के अपमानजनक जुए को उतार फेंकने का प्रयास अगर कोई इक्का–दुक्का हिजड़ा करता भी है तो हिजड़ों के गुरू और सरदार ही उसके दुश्मन बन जाते हैं। वे अपनी गद्दी के हिजड़ों को अपने पैरों पर खड़े ही नहीं होने देते। उपन्यास में हिजड़ा विनोद जब कंप्यूटर क्लास में दाखिला लेता है तो सरदार तुलसीबाई को सहज ही बर्दाश्त नहीं होता कि उनका कोई चेला उनकी बादशाहत से नज़र फेरे लेकिन विनोद के सिर पर स्थानीय विधायक का हाथ होने से सरदार खुल कर आपत्ति व्यक्त नहीं कर सका। हिजड़ों की एकता के नाम पर हिजड़ा बच्चों को उनके माँ–बाप से दूर कर हिजड़ा समाज में रहने को बाध्य करना और उन्हें उनकी इच्छा के विरुद्ध जबरन हिजड़ागिरी में उतारना विनोद को नागवार है। वह इस समुदाय द्वारा अपनी संख्या बल में इजाफे के पीछे उनके अंदर गहराई तक समाये हुए असुरक्षाबोध को रेखांकित करते हुए अपनी बा से कहता है कि, "यह भीतर के खोखले और डरे हुए लोगों की जमाते हैं। ये चाहते हैं, जिस विशेष परिभाषा से उन्हें मंडित किया गया है, उसी रूप में ही सही, उनकी भी एक संगठित उपस्थिति समाज में बने। उनकी ताकत में इजाफा हो।" सरदार तुलसीबाई के हिजड़ा डेरे पर रहना विनोद को नरकतुल्य लगता है किन्तु वह असहाय था क्योंकि सरदार की ज़ोर जबर्दस्ती के कारण वह डेरा छोड़कर अन्यत्र जा भी नहीं सकता था। एक बार सरदार के ठिकाने से भाग निकलने पर सरदार उसे खोजकर न सिर्फ वापिस ले आया था अपितु बेरहमी से उसकी पिटाई भी की थी। अपनी संख्या बढ़ाने के लिए एक सामान्य बच्चे का बलात् खतना करके उसकी ज़िंदगी बर्बाद कर देने वाले हिजड़ा गुरूओं और सरदारों को बख्शा नहीं जा सकता। इस पर विनोद उर्फ बिन्नी मूक दर्शक बने रहने पर अफसोस प्रकट करता है क्योंकि जब खतने की आड़ में सरदार द्वारा की गई ज्यादती से एक लड़का मर गया था तब वह सरदार का विरोध करने के लिए साहस नहीं जुटा पाया था। वह दिल से चाहता है कि अपने घर–परिवार और समाज के हाथों झेले गये अपने बहिष्कार और अपने जीवन में भोगे गये जलालत के नर्क से उसकी हिजड़ा बिरादरी सबक ले। वह अपनी बिरादरी को समझाने का प्रयास भी करता है कि लिंगदोषी बच्चों को उनके माँ–बाप से अलगाना बंद होना चाहिए।

**अपराधीकरण** – यह समुदाय समाज से मिलने वाली उपेक्षा, सम्मानजनक रोज़गार अवसरों के अभाव और पथभ्रष्टा हिजड़ा गुरूओं के कारण अपराध की काली दुनिया में भी प्रायः डूबे देखे जाते हैं, "असामाजिक तत्वों के हाथ की कठपुतली बनने में जितनी भूमिक किन्नरों के संदर्भ में सामाजिक बहिष्कार तिरस्कार की रही है, उससे कम उनके पथभ्रष्ट निरंकुश सरदारों और गुरूओं की नहीं ऊपर से विकल्पहीनता की कुंठा ने उन्हें आंधी का तिनका बना दिया।" हिजड़ा सरदार

तुलसी बाई के अपराधियों से संपर्क हैं। उसके डेरे पर सुपारी की दलाली खाने वाला बल्लभगढ़ का कासिम दादा आता है। सरदार पत्ते से चिलम तक का नशा भी करता है और नशीली चीजों की खरीद–फरोख्त में उसे पुलिस द्वारा गिरफ्तार भी किया जाता है। कुछ हिजड़े देह व्यापार में भी लिप्त पाये जाते हैं। तुलसी बाई के ठिकाने पर रहने वाली सायरा ऐसी ही किन्नर है। वैसे देखा जाए कि हिजड़े अपने जैसों को समाज में कहीं भी पाने पर अपने साथ मिला लेते हैं और मरते दम तक साथ रखते हैं। प्रत्येक को अपनी रोटी का जुगाड़ स्वयं करना पड़ता है। जो एक बार इनके चंगुल में फंस गया वह अलग नहीं हो सकता है वे भागना चाहे तो भाग भी नहीं सकता और यह समुदाय उसे भागने भी नहीं देते चाहे इसके लिए उस पर शारीरिक और मानसिक अत्याचार ही क्यों न करना पड़े। प्रस्तुत उपन्यास में भी बिन्नी भागना चाहता है पर ऐसा हो ही नहीं पाता है, "कहीं और भाग सकता नहीं। एक बार भागा था, बा। पड़ोस के बेकरी वाले हामिद मियाँ के आश्वासन पर। सोचा था, दिल्ली से अलीगढ़ दूर है। नहीं ढूँढ पाएंगे लेकिन गलतफहमी में था। एक दिन सुबह पाया, बेकरी का शटर उठाया ही कि दिल्ली के सरदार तितलीबाई को प्रेत सा सामने खड़ा पाया। देशी कट्टा सीने पर तना था। हामिद मियाँ ने गिड़गिड़ाते हुए हाथ उठा दिए थे। उस रोज ठिकाने पर पहुँचते ही सरदार ने जिस बेरहमी से मुझे मारा था, बा। खोपड़ी में चार टाँके आए थे। निचले जबड़े के दो दाँत हिल गये थे। सफदरगंज के दाँतों के विभाग में उन दाँतों को तार से कसा गया था।" परन्तु विनोद संभ्रांत परिवार से आने के कारण और शिक्षित होने के कारण वह अपराध से दूर रहता है और दूसरे किन्नरों को भी पढ़ लिखकर अपने पैरों पर खड़े हो इस जीवन के नर्क से मुक्ति का संदेश देता है।

**दमित होती भावनात्मक इच्छाएँ** – इस समुदाय की अछूती दुनिया से अनजान एक सामान्य पाठक को भी यह उपन्यास विश्वास दिलाता है कि यह भी आम इंसान की तरह ही दिल रखते हैं। वह चाहे संतान को जन्म देने में सक्षम न हों लेकिन उसके मन में भी किसी को प्यार करने, किसी का प्यार चाहने की हिलोरें उठती हैं। अपने पुराने कालबा देवी वाले घर के तीसरे माले पर रहने वाली ज्योत्सना को लेकर किशोर बिन्नी के मन में कुछ हलचल होने लगती थी। यद्यपि घर से निकालकर हिजड़ों को सौंप दिये जाने के बाद वह हिज़ड़ों के बीच युवा होता है किंतु ज्योत्सना तब भी अपनी बा को लिखी गई बिन्नी की चिट्ठियों में आती रहती थी। वैसे अब बिमली बना दिया गया बिन्नी स्वीकारता है कि उस किशोर वय में उसे समझ ही कहाँ थी कि वह ज्योत्सना के काबिल नहीं है। लेकिन अपनी तमाम जननांग अक्षमता के बावजूद विनोद को ज्योत्सना को लेकर सच्चा प्रेम था, उसें कहीं कोई कुंठा न थी। वह माँ को लिखी चिठ्ठी में स्वीकारता है, "मुझे लगता है बा, मैं कुछ बन जाता तो उससे ब्याह जरूर करता। सब कुछ बना देता उसे। कह देता, तू मुझसे फेरे भर ले ले। अपनी इच्छाएँ जीने के लिए तू स्वतन्त्र है। बच्चा हम गोद ले लेंगे। गोद नहीं लेना चाहोगी तो जिससे मर्जी हो बच्चा पैदा कर ले। खुशी–खुशी मैं उसे अपना नाम दूँगा। वे सारे सुख दूँगा जो एक बाप से औलाद उम्मीद करती है।

**शिक्षा की समस्या** – चित्रा जी की यह मान्यता सराहनीय है कि वे किसी भी कुरीति की तोड़ शिक्षा के आलोक के माध्यम से मानती है। इसलिए के थर्ड जेण्डर की मुक्ति का मार्ग शिक्षा के माध्यम से समाज की मुख्यधारा में शामिल

होने में मानती है। उपन्यास में अन्य समस्याओं के अतिरिक्त शिक्षा की समस्या का वर्णन भी लेखिका करती है। विनोद किन्नर समुदाय के बीच रहकर सामान्य मनुष्यों के जैसे पहचाने जाने पर बल देता है। लेखिका उपन्यास में सीधे तौर पर स्पष्ट करती है कि किन्नर भी आम इंसान की तरह ही प्यार का, पारिवारिक रिश्तों का हकदार है। बिन्नी के किन्नर होने से उसके मां–बाप ने बिन्नी से स्कूल जाने, अपने हमउम्र के दोस्तों के साथ खेलने, अपने सपने सच करने के अधिकार छीन लिये। किन्तु बिन्नी के अंदर की तड़प दिखती है कि किन्नर बच्चा भी सामान्य बच्चे की तरह स्कूल जाना चाहता है, विकसित होना चाहता है। जब समाज के भय से बिन्नी के स्कूल छूटने की अनहोनी की काली परछाइयों को परे धकेल वह शक्ति भर चीख पड़ा था, "पप्पा, मैं घर में बैठकर नहीं पढ़ूंगा। सबके साथ पढ़ूंगा। अपनी कक्षा में बैठकर। मुझे स्कूल जाना है। मैं अपना ध्यान रखूंगा। अपनी हिफाजत खुद करूँगा। कब तक मैं अपने सहपाठियों से टेलीफोन पर होमवर्क नोट करता रहूँगा, पापा ... मुझे छुट्टी नहीं करनी। मेरी पढ़ाई बर्बाद हो रही है। पिछड़ जाऊँगा मैं अपनी कक्षा में। पिछड़ना नहीं चाहता मैं। मैं बोर्ड में टॉप करना चाहता हू ...।" परन्तु बिन्नी की पढ़ाई छूट जाती है। पढ़ाई–लिखाई से लेकर खेलकूद तक हर चीज़ में अव्वल आने वाला बिन्नी घर और समाज द्वारा अपने सपनों की हत्या चुपचाप देखते रहता है।

**कानूनी अधिकार एवं आरक्षण** – भारत में सुप्रीम कोर्ट द्वारा किन्नर समुदाय को कानूनी मान्यता प्रदान करते हुए उन्हें कुछ सुविधाएँ देने के निर्देश दिए थे, यहाँ यह प्रश्न उठता है कि क्या हम मान लें कि समाज और सत्ता अब तीसरी आवाज को सुनने के लिए तैयार है? संभवतः अभी नहीं क्योंकि यह भारत में प्रचलित अन्य समस्याओं एवं विद्रूपताओं की ओर भी देखने के लिए विवश है, जैसे जातिवाद, दलित समस्या, स्त्री समस्या तथा आदिवासी समस्या इत्यादि। इन सभी पक्षों को कानूनी मान्यता मिले काफी समय हो चुका है परन्तु सत्य यह है कि अभी भी इनका जीवन कष्टमय है। ऐसे में जिस किन्नर समुदाय को इंसान नहीं माना जाता है उसके प्रति समाज कानूनी दबाव के बाद भी कितना सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाएगा? यह भी अपने आप में विचारणीय प्रश्न है। इस सम्बन्ध में लेखिका कहती है, "सुप्रीम कोर्ट कुछ सुविधाएँ मुहैया कराने का निर्देश दे सकता है, लेकिन इनके प्रति नजरिया बदलने की बात भी है। क्या आप उनके माथे से कलंक का टीका मिटा सकते हैं? उसकी जड़ें कहाँ हैं, आपको परिवार तक जाना होगा। मुख्य प्रतिपाद्य यह है कि परिवार के अंदर समाज कैसे आ जाता है कि एक विकलांग बच्चे को खुद से अलग कर दिया गया। हमें घरों को, माँ–बाप को कठघरे में लेने की जरूरत है। उन्हें समझाया जाए कि वे जननांगीय विकलांगता की शिकार औलाद को फेंके नहीं।" सुप्रीम कोर्ट द्वारा किन्नरों के लिए आरक्षण दिए जाने की बात कही गई इस पर विनोद कहता है कि "हमें आरक्षण की जरूरत नहीं है। सरकार को चाहिए कि वह किन्नरों के लिए आरक्षण के बजाय माँ–बाप को दंडित करने का प्रावधान करे। अगर भ्रूण के लिंग परीक्षण करने पर सजा का प्रावधान कर सकते हैं तो ऐसे माँ–बाप को क्यों नहीं दंडित किया जाना चाहिए जो अपने किन्नर बच्चों को कहीं छोड़ आते हैं या फिर किन्नरों को कहीं दे देते हैं?" किन्नरों के लिए आरक्षण के बजाय ऐसे बच्चों को फेंकने वालों, दूसरे को सौंप देने वाले माँ–बाप को सजा देने का नियम बनना चाहिए। मनुष्य को मनुष्य की तरह देखना चाहिए। स्पष्ट है कि अगर संविधान इन्हें मौलिक अधिकारों के साथ सामान्य जीवन का अधिकार देगा, तो यह केवल वोट बैंक नहीं रहेंगे बल्कि एक सामान्य मनुष्य की

गरिमा के साथ जीवन यापन कर सकेंगे। उपन्यास में लेखिका ने उनकी स्थिति के लिए उन्हें भी दोषी ठहराया है क्योंकि जिस अभिशप्त जीवन को वे स्वयं झेलते हैं, आने वाली पीढ़ी के लिए भी उसी विस्थापन, उपेक्षा, अपमान की पृष्ठभूमि तैयार कर देते हैं। जरूरत है सोच बदलने की। संवेदनशील बनने की सोच बदलेगी, तभी जब अभिभावक अपने लिंग दोषी बच्चों को कलंक मान किन्नरों के हवाले नहीं करेंगे। उन्हें कूड़ें में नहीं फैंकेंगे। ट्रांसजेंडर के खाँचे में नहीं धकेलेंगे। यह पहचान जब उन्हें किन्नरों के रूप में जीने नहीं दे रही समाज में तो सरकारी मान्यता मिल जाने के बाद जीने देंगी?

**राजनीति का कुत्सित रूप** – उपन्यास के अन्त में एक समाचार छपता है कि मीठी नदी में एक किन्नर की फूली हुई लाश बरामद होती है। जिसे आपसी रंजिश का मामला माना जाता है। इस हत्या में 'अंडरवर्ल्ड' की भूमिका की बात कही जा रही है। लाश की पहचान और हत्या के कारण अस्पष्ट दिखाई गए हैं। पर पाठक के मन में पूरी तरह स्पष्ट हो उठते हैं कि यह लाश विनोद उर्फ बिन्नी की है। इसे मात्र एक साधारण घटना समझ कर छोड़ा नहीं जा सकता। यही वह मुख्य बिन्दु है जहाँ से राजनीति का घृणित स्वरूप उजागर होता है। सामान्य जनता के बीच सामान्य मानव बने रहने की बात करते विधायक जी उर्फ बाऊजी अपने क्षेत्र के एक मंजे हुए खिलाड़ी हैं। जितना वह देंगे, उससे अधिक वसूलना राजनीति का धर्म है। विनोद को स्वीकारने और सुविधाएँ प्रदान करने के पीछे सोची–समझी रणनीति थी, जिसका उपयोग वह अनुकूल समय पर करना चाहते थे। लेकिन विनोद के दुर्भाग्य और विधायक जी के सौभाग्य ने यह अवसर जल्द ही उपलब्ध करा दिया। विनोद को चंडीगढ़ ले जाते समय विधायक जी की मानसिकता का कोई संकेत उपन्यास में उपलब्ध नहीं होता, परन्तु उनके विदेश से लौटे भतीजे के कुकृत्य ने विधायक जी को ऐसा निर्णय लेने के लिए विवश किया। बिना सूचित किए वापस दिल्ली लौटना उनकी विवशता थी और विनोद को घटना स्थल से दूर रखना उनकी समझदारी थी।

तिवारी जी बड़ी संजीदगी, समझदारी से विनोद को व्याख्यान के लिए प्रेरित करते हैं। एक सोची समझी योजना के अनुसार चंडीगढ़ के स्थानीय नेताओं के माध्यम से सभा का आयोजन कराते हैं। "देखो, यह मुद्दा हमारे लिए शोभा भर नहीं है। साथ देंगे किन्नर हमारा तो हम उनके आरक्षण की मुहिम चलाएंगे। जोडेंगे उन्हें विकास के समान अवसरों से। शिक्षा, रोजगार, सम्पत्ति, ऋण, बूढ़ों की पेंशन, बेरोजगार युवाओं का भत्ता, लेकिन ताली एक हाथ से नहीं बजती। संगठित होना पड़ेगा। जेलें भरनी होंगी, धरने देने होंगे।"

विनोद राजनीति के दांव–पेचों से अनभिज्ञ है, वह भाषण देता है, अपने तर्कों से किन्नर समाज को शिक्षा के प्रकाश की ओर प्रेरित करता है, आत्म सम्मान की बात करता है। एक तरह से समाज में वापसी के मार्ग को प्रशस्त करने की बात करता है और यह भी स्थापित करता है कि स्वयं अपना कर्म किए बगैर, स्वविवेक की जागृति के बिना यह स्थिति संभव नहीं होगी। वह अपने समाज के लिए आरक्षण को उनकी दशा में सुधार के लिए आवश्यक नहीं मानता। यही बात उसकी मौत का कारण बनती है। क्योंकि उसने वोट बैंक के समीकरण को पूर्णतः उलट दिया था। "क्यों विनोद, सीने पर समाज सुधारक का तमगा लटकाने का शौक चर्रा आया। राजा राम मोहन राय बनना चाहते हो। इसीलिए हमने भेजा था तुम्हें चंडीगढ़। मनमानी करने? वह तुम तो छंटे हुए राजनीतिकार निकले। सरकार को सलाह देने लगे।

पासा पलटने में माहिर। गलत कर रहा हूँ। सभा में तुमने आरक्षण की बात उठायी थी और तुम पाठ पढ़ाने लगे किन्नरों के स्वाभिमान का। लगे समाज को चेताने। समाज से उनके अधिकार की माँग करने लगे।"

उपन्यास में एक विधायक के सहयोग से विनोद को एक बड़ी दुनिया में हस्तक्षेप का अवसर मिलता है। चण्डीगढ़ में आयोजित किन्नर सम्मेलन की अध्यक्षता और उस सम्मेलन में दिये जाने वाले बीज–भाषण के लिए बिन्नी अपनी सहमति जताता है लेकिन विधायक के सहयोगी एवं सचिव तिवारी जी द्वारा दिए जाने वाले दिशा निर्देशों से वह सहमत नहीं हो पाता। विधायक वस्तुतः इसे एक राजनीतिक मुद्दे के रूप में प्रस्तुत करना चाहता है। इस समुदाय के लिए आरक्षण का विशेष प्रावधान करके न सिर्फ वह अपना और अपनी पार्टी का श्रेय चाहता है, इसमें भावी चुनाव में वोट–बैंक की संभावनायें भी उसे दिखाई देती हैं। अतः यह कहना ठीक ही होगा कि राजनीति में जनता मात्र एक वोट–'बैंक है, जिसे अलग–अलग टुकड़ो में विभाजित कर आरक्षण का लालीपॉप देकर स्वार्थ सिद्धि की जाती है। अपने एक साक्षात्कार में लेखिका ने स्पष्ट किया है कि, "कानून जरूरी है, मगर यह कानून राजनीतिक मंशा से प्रेरित नहीं होना चाहिए। सबसे पहले इन्हें शिक्षा देने की जरूरत है। भरोसा दिलाने की जरूरत है कि वह हमारा हिस्सा हैं। वह जैसे चाहें रहें, वह जिस जेंडर या जिस स्थिति के साथ रहना चाहते हैं, रहें हमें वे जस के तस स्वीकार हैं। एक वोट बैंक की तरह नहीं बल्कि समाज के एक जरूरी हिस्से के रूप में स्वीकार कर इन्हें कानूनी और सामाजिक बराबरी दिलाने की कोशिश करनी चाहिए।

**मनुष्य न मानने की समस्या** – 'पोस्ट बाक्स नं. 203' नाला सोपारा में लेखिका किन्नरों की सबसे बड़ी समस्या पर विचार करती है जो है उन्हें मनुष्य न मानने की समस्या। विनोद भी यही चाहता है कि, सामान्य मनुष्यों के बीच में सामान्य मनुष्य के रूप में ही पहचाने जाने की ख्वाहिश रखता हूँ।" हमारे समाज की संरचना ऐसी है जो कि केवल दो ही खांचों में बंधा हुआ है – स्त्री एवं पुरुष का खांचा। जिस कारण लैंगिक रूप से विषम अन्य किसी वर्ग के लिए समाज इतना कठोर है कि उसे मनुष्य तक नहीं माना जाता है। प्रश्न है कि ऐसा क्यों है तथा किन्नर समुदाय स्त्री–पुरुष से किस रूप में भिन्न है? दरअसल, ये सारा खेल केवल कुछ गुण सूत्रों का ही है, जिसके कारण कोई स्त्री, पुरुष या किन्नर बनकर दुनिया में जन्म लेता है। किन्नर स्त्री–पुरुष से केवल इस मायने में ही भिन्न होते हैं कि वह समाज के सृजन या प्रजनन में उनकी तरह सक्षम नहीं हैं। अब यहाँ प्रश्न यह भी है कि केवल इस एक वजह के कारण ही किसी को मनुष्य कहलाने का हक नहीं है। उपन्यास में बिन्नी का संघर्ष यही है कि उसे अन्य लोगों की तरह ही मनुष्य समझा जाए और कोई अलग प्रजाति न मानते हुए अपने में से ही एक माना जाए तभी समाज में किन्नरों का दर्जा स्त्री–पुरुष के समान माना जाएगा केवल आरक्षण कर देने से कुछ नहीं होता।

**आत्मविश्वास से जीने की चाह** – चित्रा मुद्गल ने इस उपन्यास में एक और संकेत दिया है कि जरूरी नहीं है हिजड़े वही काम हमेशा करते रहें जो वे न जाने कितने समय से करते चले आ रहे हैं। विपरीत परिस्थितियों में किस प्रकार अपने जीवन को संवारा जा सकता है इसका बहुत अच्छा उदाहरण है इस उपन्यास के नायक बिन्नी का संघर्ष। वह नेग मांगने, भीख मांगने के पक्ष में कतई नहीं है और हिजड़ा गुरू के अत्याचारों, मार–पिटाई के बाद भी झुकता

नहीं है अपनी पढ़ाई जारी रखता है। चौदह वर्ष तक परिवार में रहकर जो पढ़ाई–लिखाई उसने की थी उसका लाभ वह उठाता है। अंग्रेज़ी बोलकर वह अपने साथियों की अस्पताल आदि में मदद करता है। घर में रहते माँ उसे कभी दुनिया का सबसे बड़ा गणितज्ञ बनाने का सपना देखती थी। पढ़ाई के इस संस्कार को आत्मसात् कर वह अपनी साथी पूनम से कहता है, "पढ़ाई ही हमारी मुक्ति का रास्ता है। कोई और रास्ता ही नहीं छोड़ा गया है हमारे लिए ..." जो सपना कभी माँ ने उसके लिए देखा था वह चाहता है कि पूनम इतना तो पढ़ ले कि विश्व के कुछ श्रेष्ठतम उपन्यास तो पढ़ ही सके ताकि उनके चरित्रों पर कभी बात की जा सके। जीवन की पाठशाला से ही बिन्नी सीखता है कि स्वाभिमानी और आत्मनिर्भर होकर ही जीवन जीने का कोई अर्थ है। विधायक के यहाँ नौकरी शुरू करने पर जरूरी सुविधाओं के नाम पर जब उसे एक अच्छा कीमती मोबाइल, लैपटाप और ऐसी रही कुछ अन्य चीज़ें मुहैया कराई जाती हैं, उन्हें वह इसी शर्त पर स्वीकार करता है कि इनकी राशि उसके वेतन में से काटी जाएगी। यह उसे परिवार से मिला संस्कार ही है जो उसे परिवार के प्रति एक गहरे ममत्व से बांधे रहता है जिसमें हर एक चिंता का भाव निहित है। बिन्नी के मन में समाज के प्रति कोई दुराग्रह भी नहीं पलता वह आत्मसम्मान के साथ जीना चाहता है। मानसिक सन्तुलन को बनाए रखने के लिए वह मेहनत मजदूरी करके जीवनयापन करता है। जीवन में आगे बढ़ने की जिजीविषा उसको पढ़ाई की ओर मोड़ देती है। पढ़ाई का सहारा उसकी कुण्ठाओं को पीछे छोड़ देता है और वह समाज के साथ एक नये प्रकार से समायोजन करता है। वह शारीरिक श्रम करने में किसी भी प्रकार की लज्जा महसूस नहीं करता उसे उमंग सोसाइटी में गाड़ियाँ धोने का काम मिलता है। किन्नरों को लिखना पढ़ना सिखाता है। उन सब के खाते डाकखाने में खुलवाता है सरकारी, गैर सरकारी अस्पतालों में जचकी वार्डों के चक्कर लगा नये जन्मे बच्चों के घर–घाट के अते–पते नोट कर लाता है ताकि वे बधावा उगाहने की रस्म पूरी कर सके। वह कंप्यूटर कोर्स सीखता है। विधायक के यहां नौकरी करता है। उनकी कृपा से एन.आई.टी. बेसिक कंप्यूटर प्रोग्राम में दाखिला मिल जाता है। कंप्यूटर के सामने बैठते ही, "कोई दूसरा ही फुर्तीला नौजवान जन्म ले लेता है। आत्मविश्वास से भरा हुआ।" चार दिन के भीतर ही वह आरम्भिक पाठ्यक्रम की बारीकियां सीख लेता है। कंप्यूटर का कोर्स पूरा होते ही विधायक के दफ्तर में कार्य करना प्रारम्भ करता है वहां, "तनख्वाह मेरी लगभग सात हजार रुपए होगी। काम बढ़ेगा तो तनख्वाह भी बढ़ेगी।" इसके पश्चात् उसे कार्यालय में दो कमरे रहने के लिए दे दिए गये जहाँ अटैच्ड या जुड़ा हुआ लैटरीन–बाथरूम भी है। वह निरन्तर पढ़ाई–लिखाई कंप्यूटर और विधायक जी के साथ उनकी चिट्ठी–पत्री के जवाब देने में लग गया। उपन्यास की पूनम पढ़ना–लिखना सीखना चाहती है। वह अपना नाम लिखना सीखती है। खाता खुलवाने के लिए अंगूठा लगवाना उसे मंजूर नहीं था। वह जिद्द भी करती है कि तब तक वह अपना खाता नहीं खुलवाएगी जब तक वह अपना नाम ठीक से लिखना नहीं सीख जाएगी। लेखिका की मान्यता है कि किसी भी कुरीति का तोड़ शिक्षा के आलोक में निहित है। इसलिए थर्ड जेण्डर की मुक्ति का मार्ग शिक्षा के माध्यम से समाज की मुख्यधारा में शामिल होने में मानती है।

**बलात्कार की समस्या** – लेखिका चित्रा मुद्गल ने उपन्यास में हिजड़ों पर होने वाले यौन अत्याचारों और बलात्कारों को भी सामने लाने का प्रयास किया है। हिजड़ों के साथ होने वाली इस तरह की यौन हिंसा पर प्रायः पुलिस कोई भी कारवाई करती नहीं दिखती। वास्तव में हिजड़ा देह पुलिस के लिए भी मन बहलाव का खिलौना मात्र होती है।

नाच–गाने की एवज में अपनी बख्शीश के नाम पर तुलसीबाई के हिजड़ा समूह की एक हिजड़ा चन्द्रा द्वारा घर के बूढ़े मालिक से की गई ठिठोली को उस घर के लोग जबरन मानकर न सिर्फ चन्द्रा आदि हिजड़ों के साथ मारपीट करते हैं बल्कि इन हिजड़ों की बांहों, छातियों होंठों और पीठों पर दरिंदगी भरी खरोंचें और नील के निशान बना देते हैं। लेकिन पुलिस के लिए वही सही थे जो पर्दों वाले घरों में रहते थे। पुलिस एक तरफा कारवाई करते हुए सरदार समेत सात हिजड़ों को लॉक अप में डाल देती है। हिजड़ों के साथ होने वाले बलात्कार और क्रूर यौन हिंसा की घटना में पूनम जोशी के साथ स्थानीय विधायक जी का भतीजा बिल्लू और उसके दोस्त वहशीपन पर उतर कर पाश्विकता का नंगा नाच खेलते हैं लेकिन पूनम जोशी के साथ इतना सब कुछ घटित हो जाने के बाद भी पुलिस को खबर तक नहीं की गई। एक तो विधायक जी जैसे रसूख वाले लोगों के भतीजों पर पुलिस हाथ ही नहीं धरती और फिर हिजड़ों के साथ होने वाले बलात्कार और यौन हिंसा के मामलों में पुलिस रुचि नहीं लेती। शायद हिजड़ों की दैहिक अस्मिता के पुलिस के लिए कोई निहितार्थ होते ही नहीं।

## 14.5 उपन्यास का उद्देश्य

चित्रा मुद्गल का उपन्यास 'पोस्ट बाक्स नं. 203' नाला सोपारा मुम्बई के एक खाते–पीते परिवार के बच्चे विनोद की कहानी है जो जन्म से ही जननांग की विकृति का शिकार है। पारिवारिक उत्सवों एवं पर्वों पर इनकी उपस्थिति को प्रायः संदिग्ध दृष्टि से देखा जाता है। मन मांगी राशि के लिए जिद, हंगामां और अजब आतंक से इन्हें जोड़ कर देखा जाता है। जब तब इनके उपद्रव और मनमानी के विरुद्ध पुलिस को हस्तक्षेप करना पड़ता है। ट्रेनों, बसों और बाज़ारों में इनके झुण्डों को प्रायः देखा जा सकता है जिनका मुख्य धंधा एक तरह की 'वसूली' होता है। इसके लिए उनका तर्क होता है – सामाजिक उपेक्षा और आर्थिक साधनों की अल्पता। शास्त्रों में उनकी उपस्थिति भले ही शुभ सगुन के रूप में उल्लिखित हो, समाज में उनके प्रति सामान्य मानवीय और संवेदनशील व्यवहार का भी घोर अभाव है। यह उपन्यास इस वर्ग की उपस्थिति को उसकी व्यवहारिकता एवं भावनात्मक समस्याओं को पर्याप्त संवेदनशील ढंग से अंकित करता है। विनोद उर्फ बिन्नी उर्फ बिमली के माध्यम से लेखिका समाज के उस चेहरे को उजागर करती है, जो आधुनिक होने के बावजूद अपनी मानसिकता में रूढ़िवादी ही है।

उपन्यास का उद्देश्य थर्ड जेण्डर के अस्तित्व से जुड़े उन मूलभूत प्रश्नों का जायज़ा लेना है जिनसे अक्सर हमारा तथाकथित शिक्षित भद्र समाज आँख मिलाने से कतराता है। यह उपन्यास एक बेटे की तरफ से अपनी माँ को लिखे गए पत्रों का भावुक सिलसिला है। एक बेटा जो थर्ड जेण्डर बिरादरी का सदस्य है, परिवार से जबरन अलग किया गया किन्नर है। उस बेटे के दर्द को उपन्यास के प्रत्येक पृष्ठ पर साकार किया गया है। वह अपने पत्रों में प्रश्नों की झड़ी लगा देता है जो वास्तव में लेखिका के मन को परेशान करने वाले प्रश्न हैं जिन्हें वे अपने जागरुक पाठकों के समक्ष उछालती है। ये प्रश्न समाज की नियमावली निश्चित करने वाले मठाधीशों को बेबाक चुनौती देते हैं। उपन्यास का प्रमुख पात्र इन नियमों को तहस–नहस कर देना चाहता है क्योंकि वह इस समाज में थर्ड जेण्डर की कोटि से निकलकर मनुष्य की आम जिंदगी जीना चाहता है। केवल एक अंग के अभाव में उस व्यक्ति को मानव समाज से बहिष्कृत

कर पशु से भी बदतर जीवन जीने के लिए मजबूर करने की प्रक्रिया के विरुद्ध उपन्यास में एक के बाद एक सवाल उठाए गए हैं। वास्तव में लेखिका का उद्देश्य जीवन के सामाजिक पक्ष से वंचित होने वाले उस बेटे की अभावग्रस्त मानसिकता में छलकते दर्द को प्रकाशित करना है।

यह उपन्यास किन्नरों पर लिखे गए दूसरे उपन्यासों से इस मायने में अलग है कि इसमें दूसरे उपन्यासों की तरह किन्नरों के अल्प ज्ञात जीवन के छिपे पहलुओं का रोचक वृतांत पेश न करके मानवतावादी दृष्टिकोण से हिजड़ें होने की पीड़ा को हमारे समक्ष रखा है और यह उपन्यास इस दृष्टि अलग है क्योंकि इस उपन्यास का उद्देश्य किन्नर समुदाय के अस्तित्व की तलाश है। लेखिका ने उपन्यास का ऐसा कथानक उठाया है जो समस्त समाज को संदेश देता है खासकर किन्नर समुदाय को। विनोद किन्नर होते हुए अपने कष्टों और तकलीफों का रोना रोकर समाज से दया–अनुकंपा की याचना नहीं करता अपितु अपने पैरों पर खड़ा होने के लिए संघर्ष करते दिखता है अपितु वह राजनीति द्वारा उपलब्ध कराये अवसर का लाभ उठाकर अपने किन्नर समुदाय को भी ओढ़ी गई नियति से मुक्त होने का प्रबोध न देने के लिए प्रयास करता है। वह पढ़–लिखकर अपने पैरों पर खड़ा होने की जिद अपने घरवालों द्वारा किन्नर बिरादरी में फेंक दिये जाने के बाद भी नहीं छोड़ता। उपन्यास का उद्देश्य दूसरों की दया–अनुकंपा की जगह मेहनत की रोटी खाने और स्वाभिमान से जिंदगी जीने पर बल देने का रहा है। विनोद का मानना है कि जननांग विकलांगता बहुत बड़ा दोष है किंतु यह कोई ऐसी विकलांगता नहीं है कि अपनी मेहनत की रोटी इज्ज़त से न कमाई जा सके, "अपने श्रम पर जिओ। मनोरंजन की दक्षिणा पर नहीं। हिकारत की दक्षिणा जहर है, जहर। तुम्हें समाज से बाहर करने का जहर।"

उपन्यास 'नाला सोपारा' हिन्दी उपन्यासों में विशिष्ट शैली को लेकर लिखा गया महत्वपूर्ण उपन्यास है। लेखन के इस दौर में इस उपन्यास का आना जब भावनाएँ केवल दिखावा भर रह गई हैं, उस समय समाज की नब्ज को टटोलकर उसकी मानसिकता पर प्रहार करना, निसंदेह सराहनीय कार्य है। कथानक में शामिल किए पत्र रोचकता को तो बढ़ाते ही हैं, साथ ही थर्ड जेंडर वर्ग को, उसके कष्ट को नए नज़रिए के साथ देखने की समझ भी विकसित करते हैं।

उपन्यास के नायक विनोद की पीड़ा उपन्यास के पन्नो में इतनी गहराई से बयां होती है कि हर मन साक्षी भाव से उस पीड़ा को सोचने को मजबूर हो जाता है कि क्या किन्नर, थर्ड जेंडर या कोई अन्य शब्द, प्रचलित शब्द का स्थान लेकर, उसकी क्रूरता को कम कर सकता है। यहाँ ऐसे ही अनेक प्रश्न हैं – सामाजिक श्रेणी के बीच में धकेल दिए गए ये बीच के लोग आखिर क्यों मनुष्य होने से ही वंचित कर दिए जाते हैं। आखिर क्यों न उनके जन्म को सम्मान मिलता है, ना ही मृत्यु को? यह उपन्यास इस वर्ग की पीड़ा और अवमानना के दंश को तो उजागर करता ही है साथ ही अपील के माध्यम से आशा का भी संचार करता है। संभवतः यह अपील और उसके माध्यम से समझाइश ही हर व्यक्ति की चेतना में शुमार होकर समष्टि की चेतना बन सकती है। कितना क्रूर और वीभत्स है हमारा समाज कि किसी को महज़ शारीरिक कमी के चलते असामाजिक बना देता है। समाज कुंठित, हिंसक दोषी, क्रूर एकांगी और पिछड़ी मानसिकता को लिए होगा तो उसका दंश सबको भुगतना होगा। संवेदनाओं का क्षण हमारे समय की सबसे बड़ी क्रूरता है और इसी क्रूरता को नाला सोपारा अपने कथ्य में पूरी संवेदना और तार्किकता के साथ प्रस्तुत करता है और

यही इस उपन्यास का उद्देश्य भी है। यह उपन्यास एक नई बहस चलाता है, अंदर से कुरेदता है और अपने मनुष्य होने पर प्रश्नचिन्ह लगता है। हमारे आसपास के वे लोग जो सड़कों पर, व्यस्त चौराहों पर, बच्चे होने पर या घर में कोई अन्य उत्सव होने पर नाचने–गाने, आशीष देने चले आते हैं तब क्या हम उनके साथ वैसा ही व्यवहार करते हैं जैसे व्यवहार एक इंसान दूसरे इंसान के साथ करता है? नहीं करते तो इस उपन्यास के बिन्नी की आवाज़ ध्यान से सुनिये 'कन्याभ्रूण हत्या के दोषी माता–पिता अपराधी हैं। उससे कम दंडनीय अपराध नहीं जननांग दोषी बच्चों का त्याग।"

लेखिका अपने इस उपन्यास के नायक विनोद के माध्यम से पाठकों को यह संदेश देने में सफल रही है कि हिजड़ा होने को असामान्य जननांग विकृति के रूप में देखे जाने की अपेक्षा एक इंसान के ही रूप में देखा जाना चाहिए, "हम जो औरों की नज़रों में गलीज और असामान्य हैं, लेकिन कितने आम और सामान्य हैं, ठीक उनकी ही तरह संवेदनशील और भावुक, असुरक्षा से घिरे।" उपन्यास का अंत किंचित सुखांत है और उम्मीद जगाता है कि विनोद जैसे जागरुक हिजड़ों का घर वापसी का अभियान एक दिन जरूर रंग लाएगा। जैसे विनोद की माँ ने मरने से पूर्व ही सही लेकिन अपनी भूल का, अपने अपराध का परिष्कार करते हुए सार्वजनिक रूप से अपने किन्नर बेटे बिन्नी उर्फ विनोद उर्फ बिमली से माफ़ी मांगते हुए उसे अपनी संतान होने का अधिकार सुख दिया, वैसे ही एक दिन दूसरे किन्नर बच्चों के माँ–बाप भी अपने बच्चों की घर वापसी का, उन्हें निर्द्वंद्व हो स्वीकारने का साहस अर्जित कर पायेंगे।

वस्तुतः समाज को आवश्यकता है सोच बदलने की, संवेदनशील होने की, सोच बदलेगी तभी अभिभावक अपने लिंगदोषी बच्चों को किन्नरों के हवाले नहीं करेंगे। उन्हें कूड़े में नहीं फेकेंगे।

## 14.6 सारांश

निःसंदेह प्रस्तुत उपन्यास में विनोद उर्फ बिन्नी उर्फ बिमली के माध्यम से किन्नरों पर होने वाले पारिवारिक दबाव, उनके शोषण को चित्रित किया गया है। किन्नर विनोद की माँ उसके प्रति किये गये दुर्व्यवहार से दुखी होकर उसे घर लौटने का निवेदन, माफीनामा, समाचार–पत्रों में प्रकाशित करवाती है। वास्तव में यह अपील एक माँ की न होकर उन तमाम माताओं एवं परिवारों की है जिन्होंने अपने जननांग दोषी संतानों को घर से निष्कासन दे दिया है। उपन्यास की समीक्षा करते हुए मधुरेश कहते हैं, "चित्रा मुद्गल 'नाला सोपारा' में एक गहरी मानवीय अपील के साथ उपस्थित है। समाज में जैसे बलात्कृता स्त्री अपने किसी अपराध के बिना एक दोहरा दण्ड भुगतती है, अपने अपमान एवं यातना के साथ परिवार और समाज की उपेक्षा का दण्ड भुगतती है, लगभग वही स्थिति समाज में लिंग दोष से ग्रस्त बच्चों की होती है। अपने जिस दण्ड की सजा वे भुगतते हैं उसमें उनकी अथवा उनके माता–पिता की भी कोई भूमिका नहीं होती। अपने उपन्यास द्वारा लेखिका इस समस्या को उसके वास्तविक परिप्रेक्ष्य में मानवीय सहानभूति के साथ देखे जाने की अपील करती है।"

## 14.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

प्र.1 उपन्यास में अभिव्यक्त किन्नर जीवन से जुड़ी समस्याओं पर प्रकाश डालें।

उ0 _____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

प्र.2 नाला सोपारा में अभिव्यक्त किन्हीं दो समस्याओं पर चर्चा कीजिए।

उ0 _____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

प्र.3 नाला सोपारा उपन्यास की रचना किस उद्देश्य से हुई है – स्पष्ट कीजिए।

उ0 _____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

प्र.4 नाला सोपारा उपन्यास में लेखिका क्या संदेश देती है।

उ0 _____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

प्र.5 लेखिका के जीवन परिचय पर संक्षिप्त रूप से प्रकाश डालिए।

उ0 _____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

## 14.8 पठनीय पुस्तकें


1. पोस्ट बाक्स नं. 203 नाला सोपारा – चित्रा मुद्गल
2. चित्रा मुद्गल के उपन्यासों में नारी चित्रण – डॉ. शालिनी
3. थर्ड जेंडर के संघर्ष का यथार्थ – सं. डॉ. शगुफ्ता नियाज़
4. थर्ड जेंडर विमर्श – सं. शरद सिंह


******

# 'नाला सोपारा' का कथ्य और शिल्प

**15.0 रूपरेखा**

**15.1 उद्देश्य**

**15.2 प्रस्तावना**

**15.3 'नाला सोपारा' का कथ्य**

**15.4 'नाला सोपारा' का शिल्प**

**15.5 सारांश**

**15.6 कठिन शब्द**

**15.7 अभ्यासार्थ प्रश्न**

**15.8 सन्दर्भ ग्रन्थ/पुस्तकें**

## 15.1 उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययनोपरान्त छात्र निम्नलिखित बिन्दुओं से अवगत हो सकेंगे–

– 'किन्नर' को उपन्यास का कथ्य बनाने के पीछे लेखिका की मानसिकता।

– किन्नर जीवन के संघर्ष का बोध।

– थर्ड जेंडर के जीवन की सामाजिक एवं राजनैतिक कथा का ज्ञान

– पत्रात्मक शैली में व्यक्त संवेदना।

## 15.2 प्रस्तावना

भारतीय समाज अपनी मूल संरचना में प्रारम्भ से ही दो वर्गों में बँटा हुआ है और ये वर्ग लिंग के आधार पर निर्धारित हैं, जिसमें स्त्री और पुरुष ही मुख्यधारा में शामिल हैं। व्यक्ति का वर्ग जन्म से ही निर्धारित हो जाता है ऐसे में समाज का एक वर्ग वह भी है जिसे समाज 'तीसरी दुनिया', 'थर्ड जेंडर', 'किन्नर' या 'हिजड़े' के रूप में जानता व पहचानता है। यह वर्ग सदैव से समाज में व्याप्त रहा है किन्तु दुर्भाग्यवश हमेशा से इसकी उपेक्षा ही की गई है। समाज द्वारा इसकी उपेक्षा का कारण यह है कि यह वर्ग न स्त्री है और न ही पुरुष। वह इन दोनों लिंगों से इतर है जो अपनी जन्मजात विकृतियों या दुर्घटनावश उत्पन्न शारीरिक विकृतियों के कारण स्वयं को समाज में स्थापित करना चाहता है पर हम उन्हें प्रताड़ित कर समाज से बहिष्कृत कर देते हैं। माता–पिता अपने विकलांग, मानसिक रोगी, मानसिक रूप से मंद तथा अन्य असाध्य रोगों से ग्रस्त बच्चे को जीवित रखने में अपनी सारी ज़िंदगी लगा देते हैं, लेकिन जननांग दोषी बच्चे को ऐसे लोगों के हाथ सोंप देते हैं, जिन्हें वे जानते तक नहीं। यह एक प्रकार की सामाजिक विकृति है, जिस पर इक्कीसवीं शताब्दी में प्रश्न उठने शुरू हुए हैं। इनकी उपेक्षा और बदहाली को देखकर भारतीय संविधान में इन्हें 'तीसरे लिंग' अथवा 'थर्ड जेंडर' के रूप में मान्यता प्रदान की है किन्तु फिर भी इनका जीवन त्रासदी से पूर्ण है। चित्रा मुद्गल ने इसी तीसरे लिंग की व्यथा को अपने उपन्यास 'पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा' का कथ्य बनाते हुए सत्ता और समाज के आपसी गठजोड़ के मध्य अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहे तीसरी सत्ता के संघर्ष की मार्मिक अभिव्यक्ति की है जो इस विषय से सम्बंधित उपन्यासों की शृंखला में नवीन कलेवर के साथ नवीन पत्राचार शैली में रचित है। अपने उपन्यासों के लिए इन्होंने हर बार नई कथा–भूमि एवं उसके अपने विशिष्ट भूगोल की तलाश की है। उनकी इस प्रवृत्ति को उनके पहले उपन्यास 'एक ज़मीन अपनी' (1990) से लेकर अंतिम उपन्यास 'नाला सोपारा' (2016) तक देखा जा सकता है। इन दो उपन्यासों के मध्य उनके 'आवां' (1991) और 'गिलिगडु' (2002) उपन्यास प्रकाशित हुए हैं। कामकाजी महिलाओं का संघर्ष, ट्रेड यूनियन एवं गैर सरकारी संगठनों की भूमिका, जीवन का अंतिम पड़ाव और उसकी भावनात्मक संरचना के बाद 'नाला सोपारा' में उन्होंने समाज के उस हिस्से को कथ्य का विषय बनाया है जिसकी पहचान आमतौर पर 'हिजड़े' के रूप में होती है।

पारिवारिक उत्सवों एवं पर्वों पर इनकी उपस्थिति को प्रायः ही संदिग्ध दृष्टि से देखा जा सकता है। शास्त्रों में इनकी उपस्थिति चाहे शुभ मानी गई है, किन्तु समाज में इनके प्रति सामान्य मानवीय एवं संवेदनशील व्यवहार का अभाव ही है। लेखिका ने इसी वर्ग की उपस्थिति को, उसकी व्यवहारिकता एवं भावनात्मक समस्याओं को पर्याप्त संवेदनशील ढंग से वर्णित किया है जिसमें शिल्प का विशेष योगदान रहा है।

## 15.3 'नाला सोपारा' का कथ्य

प्रस्तुत उपन्यास के लेखन के प्रेरक बिन्दु के संबंध में वे लिखती हैं, ''लंबे समय से मेरे मन में पीड़ा थी। एक छटपटाहट थी, कि आखिर क्यों हमारे एक अहम् हिस्से को अलग–थलग किया जा रहा है। हमारे बच्चों को हमसे दूर किया जा रहा है। आज़ादी से लेकर अभी तक कई रूढ़ियाँ टूटीं लेकिन किन्नरों की ज़िन्दगी में कोई बदलाव नहीं

आया। क्यों, आखिर इनका दोष क्या है? यही सवाल था जो मुझे बेचैन करता था। 1974 में मैं मुंबई के नाला सोपारा में रहती थी तब मेरी मुलाकात एक इसी समुदाय के एक व्यक्ति से हुई जिसे किन्नर होने की वजह से घर से निकाल दिया गया था। यह उपन्यास उसी व्यक्ति के विद्रोह की कहानी कहता है। मैंने उसे अपने घर पर बहुत दिनों तक साथ रखा।''

चित्रा मुद्गल का 'पोस्ट बाक्स नं. 203 नाला सोपारा' उपन्यास का कथ्य मुम्बई के एक खाते–पीते परिवार के जननांग विकृति के शिकार बच्चे विनोद उर्फ बिन्नी की कहानी को हमारे समक्ष लाता है। विनोद के पिता हरीन्द्र की कालबा देवी में किराने की सबसे बड़ी दुकान है और उनके तीन बेटे हैं– सिद्धार्थ, विनोद और मंजुल। तीनों में से बड़ा बेटा सिद्धार्थ और सबसे छोटा मंजुल तो पूरी तरह सामान्य हैं किन्तु विनोद जननांग विकृति का शिकार है इसी कारण माँ वंदना उसके प्रति अधिक मोह रखती है।

विनोद एक अच्छे स्कूल का मेधावी छात्र है जिसके भविष्य को लेकर उसके माता–पिता ने अनेक सपने भी देखे हैं। उन्होंने विनोद को अनेक विशेषज्ञ डॉक्टरों को दिखाया, किन्तु किसी से कोई लाभ नहीं हुआ और वह इसी शारीरिक विकृति के साथ बड़ा होता गया। परिवार वाले उसकी सच्चाई को समाज से छुपाकर रखते हैं किन्तु हिजड़ों का सूचना तंत्र बहुत ही सक्रिय होता है जिस कारण उन्हें विनोद की खबर लग जाती है और वह उसे ले जाने उनके घर आ जाते हैं। घर वाले हिजड़ों को विनोद के स्थान पर उसके छोटे भाई मंजुल को दिखा देते हैं– ''देख लो एकदम नॉर्मल बालक है, यह।'' हिजड़े ताली पीटते वापस तो चले जाते हैं किन्तु खबर गलत होने पर फिर आने की दमकी देकर। इसी बीच विनोद का स्कूल जाना बंद कर दिया जाता है। जैसे कि हमेशा देखा जाता है कि हिजड़ा समुदाय अपनी प्रकृति के लोगों को ढूंढ ही लेते हैं इसलिए विनोद भी उनकी पकड़ में आ जाता है। परिवार वाले सामाजिक अपयश के भय से आवास बदल लेते हैं और सार्वजनिक रूप से यह घोषणा कर देते हैं कि एक यात्रा के दौरान दुर्घटना में विनोद की मृत्यु हो गई और उसके अवशेष तक नहीं मिले। यहाँ तक कि कहानी आम हिजड़ों के जीवन जैसी ही लगती है किन्तु बिन्नी अपनी माँ का पता लगाकर उनके साथ पत्र व्यवहार करता है। माँ भी परिवार से चोरी उसे पत्र लिखती है। यहाँ से उपन्यासकार ने विनोद की ओर से अपनी माँ को लिखी गई चिट्ठियों के माध्यम से हिजड़ा समुदाय के जीवन की अनगिनत त्रासदियों को प्रस्तुत कर गम्भीर संवेदनशीलता का परिचय दिया है।

माँ द्वारा लिखे गए जवाबी पत्र पृष्ठभूमि में ही रहते हैं क्योंकि विनोद द्वारा लिखे पत्रों से ही ज्ञात होता है कि माँ ने अपने पत्र में क्या लिखा था। ऐसा करके लेखिका ने उपन्यास को ठहराव से बचा लिया है और पाठक भी मानसिक रूप से निरंतर गतिमान रहता है। विनोद के पत्रों में अपनी माँ से बहुत सारे प्रश्न हैं किन्तु ये प्रश्न मात्र एक बेटे द्वारा अपनी माँ से किए गए प्रश्न नहीं हैं बल्कि एक निर्दोष व्यक्ति के समाज से किए गए प्रश्न हैं जो समाज को अपनी संकुचित मानसिकता पर विचार–विमर्श करने को विवश करते हैं।

चंपाबाई को सौंपे जाते समय विनोद की उम्र चौदह साल की थी। इस समय उसका दोहरा विस्थापन हुआ था अर्थात् जितना सामाजिक–सांस्कृतिक उतना ही भावनात्मक और परिवेशगत। विनोद जिस परिवेश में गया वहाँ धार्मिक आचार शास्त्र की जगह, बिरादरी के अपने आचार शास्त्र पर अधिक बल दिया जाता है। सामान्य परिवार में

रहने के कारण रोज़ नहाने की आदत को यहाँ उपहास की दृष्टि से देखा जाता। स्त्रीलिंग और पुल्लिंग को लेकर भी जब–तक उसे प्रताड़ित किया जाता रहा। यह वर्ग स्त्रीलिंग का उपयोग करते हैं इसलिए विनोद को भी स्त्रैण प्रवृत्ति को अपनाने के लिए ज़ोर दिया जाता, किन्तु वह पुरुष लक्षण और प्रवृत्ति वाला था। इसलिए वह पुरुष के रूप में ही अपनी पहचान कायम रखना चाहता है। जिसके लिए उसने इस वर्ग द्वारा दी गई सारी प्रताड़ना को भी सहा किन्तु अपनी पहचान को मिटने नहीं दिया, ''उनके लात घूसे, थप्पड़ और बातों में गर्म तेल–सी टपकती किसी भी संबंध को न बख्शने वाली अश्लील गालियों के बावजूद न मैं मटक–मटक कर ताली पीटने को राजी हुआ, न सलमे–सितारे वाली साड़ियाँ लपेटकर लिपिस्टिक लगा कानों में बुंदे लटकाने को''

बदलाव केवल विनोद के जीवन में ही नहीं हुआ, उसके परिवार में भी हुआ। वह भी कालवादेवी वाला अपना निजी मकान बेचकर नाला सोपारा में रहने चले जाते हैं। स्थान परिवर्तन की एक गहरी प्रतीक व्यंजना है– एक समृद्ध और सम्मानित बस्ती से नाले जैसे घृणित माहौल में पहुँचना। यह व्यंजना परिवार से अधिक विनोद के जीवन पर लागू होती है क्योंकि उसका जीवन ही नरक में परिवर्तित हुआ है। वह भी सामान्य बच्चों की तरह पढ़–लिखकर कुछ बनना चाहता था, लेकिन एक शारीरिक कमी ने उसकी पूरी दुनिया ही उजाड़ दी। जब भी वह दुखी होता तो 'बा' के साथ ज्योत्सना भी उसकी स्मृति में आ जाती। ज्योत्सना उसका प्रेम थी जिसके साथ वह सामान्य जीवन जीना चाहता था किन्तु परिस्थितिवश अब वह उसके लिए मर चुका था लेकिन विनोद के लिए वह अभी भी जिंदा है। इस दुनिया में विनोद को ज्योत्सना की तरह ही पूनम का प्रेम मिला है। पूनम, विनोद के हर निर्णय में सहयोग देती है। मुंबई से दिल्ली आ जाने पर दिल्ली से अलीगढ़ भाग कर जब विनोद इस नरकीय जीवन से मुक्ति का प्रयास करता है तो सरदार तितली बाई उसे पकड़ लेती है। विनोद के इस साहस के लिए उसे पीटा जाता है जिससे उसके सिर पर चार टांके लगते हैं और दो दांत भी हिल जाते हैं। उस समय पूनम ने उसे सहारा दिया और समझाया कि यहाँ उसके जैसी छूट किसी और किन्नर को नहीं मिली। इसलिए चुप रहकर यहाँ रहे। विनोद इस घटना के पश्चात् वहाँ से कभी भागा तो नहीं किन्तु वह नेक व भीख माँगने के पक्ष में कभी नहीं रहा। वह गाड़ियाँ धोकर मेहनत करता है लेकिन परंपरागत पेशे में नहीं आता। वह अपनी माँ को पत्र में लिखता है, ''कोशिश में हूँ बा। उनसे छिपकर कोई बड़ा काम सीख सकूँ ताकि किसी भी रूप में उन पर निर्भर न रहूँ। अधूरी शिक्षा आड़े आ जाती है। गाड़ियाँ मजबूरी में धोता हूँ। कहीं और भाग सकता नहीं।'' विनोद की मेहनत देखकर ही विधायक उसे नौकरी तथा संरक्षण देता है। वहीं रहकर वह कम्प्यूटर क्लास की पढ़ाई को भी पूरा करता है। विधायक का संरक्षण उसे नया जीवन देता है।

विधायक द्वारा विनोद को स्वीकारने और सुविधाएँ प्रदान करने के पीछे सोची–समझी रणनीति थी, जिसका उपयोग वह अनुकूल समय पर करते हैं क्योंकि वह विनोद द्वारा किन्नर दल के वोट प्राप्त करना चाहते थे। राजनीति में सफल होने के लिए राजनीतिक दल को ज्वलन्त समस्या चाहिए होती है और उस समय किन्नरों को आरक्षण देने का मुद्दा उठाकर वह वोट बैंक की राजनीति करते हैं किन्तु विनोद इस अवसर पर उनके कहे अनुसार न चलकर, अपने तर्कों से किन्नर समाज को शिक्षा के प्रकाश की ओर प्रेरित करता है, उनके आत्मसम्मान की बात करता है। वह किन्नर आरक्षण की अपेक्षा समाज से उनकी घर वापसी की अपील करता है। किन्तु जिस राजनीतिक दल ने उसे वोट

बैंक का माध्यम बनाया था उसे विनोद का समाज सुधारक रूप कैसे स्वीकार्य होता। दूसरा पूनम जोशी के साथ विधायक के भतीजे तथा उसके मित्रों द्वारा किया गया सामूहिक बलात्कार भी विनोद का काल बन जाता है। विधायक जानता था कि पूनम और विनोद के मध्य एक कोमल संबंध है। उसकी दुर्दशा को आधार बनाकर यदि विनोद ने अपने वर्ग को संगठित कर लिया तो उनका राजनैतिक कैरियर समाप्त हो जाएगा। इसलिए मार्ग की इस भयंकर बाधा को हटा देना ही उनके लिए सुरक्षित उपाय था। ऐसे में विनोद की माँ की तबीयत खराब होने की सूचना उनके षडयंत्र को एक नया मौका देती है। विनोद को मुंबई माँ से मिलने भेजा जाता है लेकिन उपन्यास का अन्त जिन दो समाचारों से हुआ है उससे दो बातें स्पष्ट होती हैं। एक में विनोद की माँ द्वारा बेटे की घर वापसी के लिए की गई अपील और दूसरे में मिठी नदी पर बेपहचान मिली किसी किन्नर की लाश वाला समाचार जो सीधे विनोद की हत्या की ओर संकेत करता है।

निःसंदेह प्रस्तुत उपन्यास विनोद उर्फ बिन्नी उर्फ विमली के माध्यम से किन्नरों के साथ की गई पारिवारिक एवं सामाजिक उपेक्षा को सामने लाता है। यह उपन्यास इस वर्ग की पीड़ा और अवमानना के दंश को तो उजागर करता ही है साथ ही अपील के माध्यम से आशा का भी संचार करता है। कितना क्रूर और वीभत्स है हमारा समाज कि किसी को महज शारीरिक कमी के चलते, असामाजिक बना देता है। समाज कुंठित, हिंसक, दोशी, क्रूर, एकांगी और पिछड़ी मानसिकता को लिए होगा तो उसका दंश सबको भुगतना पड़ेगा ही। संवेदनाओं का क्षरण हमारे समय की सबसे बड़ी क्रूरता है और इसी क्रूरता को लेखिका ने 'नाला सोपारा' के कथ्य में पूरी संवेदना और तार्किकता के साथ प्रस्तुत किया है।

## 15.4 'नाला सोपारा' का शिल्प

यह उपन्यास कथ्य के साथ ही शिल्प की दृष्टि से भी विशिष्ट है। उपन्यास को पढ़ने के दौरान यह प्रश्न बार–बार उठता है कि चित्रा मुद्गल ने इस उपन्यास के लिए पत्र–शैली वाले जिस पुराने परम्परागत रचना–विधान को चुना है, उसका औचित्य क्या है? पूरी कथा विनोद द्वारा अपनी माँ वंदना को लिखे गए पत्रों के माध्यम से विस्तार पाती है। इसका भावनात्मक औचित्य माँ (बा) के प्रति बेटे का गहरा आत्मीय लगाव है। उसके शारीरिक दोष ने उसके प्रति माँ की ममता को और बढ़ाया है।

पत्र शैली में रचित इस उपन्यास की संपूर्ण कथा में कुल सत्रह (17) पत्र हैं जो विनोद द्वारा अपनी बा को लिखे गए हैं जिसमें सात पत्र मोहन बाबा नगर, बदलपुर, दिल्ली से हैं, दो पत्र लाजपत नगर दिल्ली से और आठ पत्र चण्डीगढ़ से प्रेषित किए गए हैं। इसमें माँ का लिखा एक भी पत्र नहीं है परन्तु विनोद के पत्रों में माँ की भावना व्यक्त हो जाती है। माँ को संबोधित करते हुए पत्रों की शृंखला से कथानक बुना गया है और पत्रों के माध्यम से ही कथानक का यह सूत्र मिलता है कि विनोद, माँ की विवशता और उसे कसाई के हाथ सौंपी गई बछिया की तरह बताकर अपनी आंतरिक पीड़ा व्यक्त करता है। पत्र शैली को चिंतन–प्रवाह या विचार–प्रवाह को अभिव्यक्त करने के लिए सर्वाधिक उपयुक्त माना जाता है। इस दृष्टिकोण से देखा जाए तो लेखिका ने इसके माध्यम से कथा–प्रवाह को व्यक्त करके एक अनुठी कथ्य कृति तथा शिल्प की दृष्टि से एक अनुपम कृति की रचना करने में सफलता हासिल की है।

उपन्यास में ऐसे प्रसंग भी हैं जिन्हें व्यक्त करते हुए भाषा भावात्मक हो गई है। जैसे आठवीं कक्षा के छात्र के रूप में परिवार से दूर होने पर विवश यह बेटा अपनी बीती ज़िंदगी को याद करता हुआ जब माँ से चिट्ठियों के माध्यम से बातचीत करता है तब यह भावुकता स्पष्ट दिखाई देती है। नवरात्री पर्व के आगमन पर लिखा गया पत्र, ''नवरात्रि में वह परी कौन–सा घाघरा पहनेगी डांडिया में, बेझिझक ऊपर मुझे दिखाने ले आती थी। पुराना कच्छी–घाघरा उसे छोटा–सा हो गया है। ये वाला नया है। भुज वाली उसकी यशोदा फोइबा (फूफी) ने पार्सल से भेजा है, साथ में नए चलन का फुंदने वाला डांडिया भी।'' यहाँ भाषा विनोद की ज्योत्सना के प्रति भावुकता को पूर्ण रूप से व्यक्त करने में सफल हुई है।

यह उपन्यास समाज में अत्यंत बहिष्कृत व निकृष्टतम परिस्थितियों में संघर्षरत किन्नरों की जीवनचर्या पर आधारित होने पर भी, लेखिका ने गाली–गलोच का सीमित प्रयोग किया है। माँ व परिवार से बिछुड़ने का दर्द विनोद के मन में प्रतिपल रिसता रहता है और इस तकलीफ के साथ लेखिका की भावुक भाषा ने पूरा न्याय किया है। जैसे परिवार द्वारा उसे त्याग देने की पीड़ा का चित्रण– ''तुने, मेरी बा, तूने और पप्पा ने मिलकर मुझे कसाइयों के हाथ मासूम बकरी सा सौंप दिया। ...जिस नरक में तूने और पप्पा ने धकेला है मुझे, वह एक अन्धा कुआँ है जिसमें सिर्फ सांप–बिच्छू रहते हैं। सांप–बिच्छू बनकर वह पैदा नहीं हुए होंगे। बस, इस कुएँ ने उन्हें आदमी नहीं रहने दिया।'' वहीं दूसरी तरफ नौकरी पाने तथा किन्नरों के अस्तित्व के प्रश्न से जुड़े मुद्दों पर बात करते समय विनोद की भाषा उतनी ही दृढ़ और सुगठित हो जाती है जितनी पाठक को प्रभावित कर सके। जैसे किन्नर सभा को सम्बोधित करते हुए विनोद का प्रभावशाली स्वर– ''जननांग विकलांगता बहुत बड़ा दोष है लेकिन इतना बड़ा भी नहीं कि तुम मान लो कि तुम धड़ का मात्र वही निचला हिस्स भर हो। मस्तिष्क नहीं हो, दिल नहीं हो, धड़कन नहीं हो, आँख नहीं हो। तुम्हारे हाथ–पैर नहीं हैं। हैं, हैं, हैं, सब वैसा ही है जैसे औरों के हैं। यौन सुख लेने–देने से वंचित हो तुम, वात्सल्य सुख से नहीं। सोचो!

बच्चे तुम पैदा नहीं कर सकते मगर पिता नहीं बन सकते, यह किसने नहीं समझने दिया तुम्हें?

सुनो–पहचानो उन्हें। पहचानो। अपने श्रम पर जिओ।

मनोरंजन की दक्षिणा पर नहीं। हिकारत की दक्षिणा जहर है, जहर।

तुम्हें मारने का जहर।

तुम्हें समाज से बाहर करने का जहर।''

यहाँ विनोद का एक–एक शब्द किन्नरों में चेतना का संचार कर रहा है और पाठक वर्ग को सोचने पर विवश।

भाषा में वार्तालाप अर्थात् संवाद शैली का भी अनूठा रूप मिलता है। ये संवाद कथानक को साकार कर देती हैं। विधायक के यहाँ रहते हुए एक दिन विनोद को ज्योत्सना के अपने पास होने का आभास हुआ जिसके विषय में वह माँ को पत्र में लिखता है किन्तु संवाद के कारण ऐसा प्रतीत होता है कि सब वास्तविकता में हमारे सामने घट रहा है–

''घर में तैयार हो निकले, उस समय जनाब कंप्यूटर स्कूल में बिराजे हुए थे। जानती कैसे मैं कैसी लग रही हूं इस सलवार–कमीज़ में ? ...

'ऊंहू' कॉफी पीते हुए देखिए। टी.वी. पर देखते हैं जैसे दो लोग एक–दूसरे को।'

'दूध तो खतम हो गया था कॉफी' ...

'दूध को मारो गोली, यह नेस्कैफे है ... क्या कहते हैं, इनीसेंट।'

'इंस्टेट'। ...

उठना ही पड़ा

कॉफी मग हाथ में लेकर घूंट भरी।

भारी पलके झपझपाई।...

'ज्योत्सना! तू मारा रूम मा ?'

'ज्योत्सना... ज्योत्सना...''

लेखिका ने किन्नर परिवेश को व्यक्त करने के लिए गीतों का समावेश भी किया है क्योंकि किन्नर वर्ग में गीतों का विशेष महत्व है यदि उनका समावेश यहाँ न किया जाता तो किन्नर जीवन का चित्रण अधूरा रह जाता। यह गीत प्रायः पूनम द्वारा गाए गए हैं जैसे विनोद के समक्ष पूनम का यह गीत गाना– ''तू प्यार का सागर है, तेरी इक बूंद के प्यासे हम ... लौटा जो दिया तूने, चले जाएंगे जहां से हम, तू प्यार...'' विनोद के प्रति पूनम की भावूकता को व्यक्त करता है। ऐसे ही विधायक के भतीजे के जन्मदिन समारोह पर नाचने के लिए पूनम द्वारा जो गीत तिवारी जी को उसने गुणगुनाते हुए लिखवाए, उनका उल्लेख भी उनके मनोरंजन परक परिवेश को व्यक्त करता है। वहीं विनोद की माँ द्वारा गाई लोरी का उल्लेख भी हुआ है–

खम्मा वीरा ने जाऊं वारणे, रेडड लोल
एक तो सुहागी गगन चान्दलो, रेडड लोल
वीज सुहागी मारो वीर, रेडड लोल
खम्मा वीरा ने जाऊं...''

यह लोरी गुजराती भाषा में है जो गुजराती परिवेश के अनुरूप प्रयोग की गई है। भाषा में बिम्ब प्रयोग भी पाठक को उस चित्रण से पूर्ण रूप से जोड़ देता है और लेखिका जिस संवेदना को पाठक वर्ग तक पहूँचाना चाहती है उसमें सफल भी हो जाती है। माँ के पत्र को पाकर विनोद की प्रतिक्रिया का चित्रण बिम्बात्मक है जो शब्दों में भावों को साकार कर देता है–

''तेरी चिट्ठी मिली।

पढ़े बिना मैंने सैंकड़ों बार उसे चूमा था। ...

कलम की स्याही में बसी हुई है तेरे हाथों से पकने वाली स्वादिष्ट सब्जियों की कल्हार की सीजी गंध। दुखते माथे पर पीड़ा सोखती तेरी उंगलियों की रेशमी सहलाहट। एक भी सलवट छोड़े बिना स्कूल ड्रेस पर की गयी तेरी इस्त्री की छुअन।'' यहाँ स्पर्श और गंध बिम्ब के माध्यम से विनोद की भावुकता व्यक्त की गई है जो पाठक के हृदय को भी भावुक करती है। इसी तरह– 'सर्द हवा की रेशमी सरसराहटें मेरे बालों में उंगलियां फेर रही थीं।'' ''खचाखच भरे हॉल की आधी से अधिक सीटों पर किसी दैत्य की कलाइयों की कांटे उगी मजबूत पकड़ में कैद चीखते, पुकारते छूट भागने को छटपटाते, पछाड़े खाते मासूम बच्चे बैठे हुए दिखाई पड़े।'' आदि बिम्बात्मकता के उद्धाहरण हैं जिन्होंने कथा को सजीव कर दिया है। उपन्यास में अलंकारों का प्रयोग भी भाषा को अर्थवान बना देता है। अलंकारों में उपमा अलंकार का प्रयोग विशेष रूप से किया गया है इसके कुछ उद्धाहरण हैं–

'परी सी लग रही थी वह।', मन सुलगती–भीगी लकड़ियों सा धुआंता रहता है बा, बिलबिलाकर सुअर सा लोट गया ज़मीन पर, कसाई फिरकी सा घंटों नचवांएगे, उसका चेहरा पंखुड़ियों सा खिल आया।'' आदि उपमा अलंकार के सफल उद्धाहरण हैं। वही गुजराती, अंग्रेजी और बजारू शब्दों का प्रयोग पारिवेशिक विशेषताओं के प्रस्तुतीकरण में सहायक बन पड़ा है। सामान्य रूप से भाव प्रस्तुतीकरण हेतु बहुत ही सरल शब्दों का प्रयोग किया गया है ताकि भाव ग्राह्यता बाधित या क्लिष्ट न हो। विनोद गुजराती परिवार से संबंधित है इसलिए गुजराती पात्रों के चित्रण में गुजराती भाषा के शब्दों का प्रयोग हुआ है जेसे बा, पप्पा, दीकरा, मोटा भाई, कौन छै, छोकरा, छोकरी, मजा मा छे, टेपला आदि। दिल्ली एवं मुंबई की कथा होने के कारण इसमें अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग भी भाषा की आवश्यकतानुसार हुआ है। जैसे– फोन, सैलून, वारनिश, पब्लिक बूथ, पोस्ट बॉक्स, मोबाइल, एगजास्ट, हैंगर, कॉफी, इंस्टेट, मैटरनिटी होम, कंप्यूटर, फर्नीचर, लॉकअप, पुलिस, ग्रीटिंगकार्ड, राशनकार्ड, वोट, हॉल आदि शब्दों का प्रयोग परिवेशगत स्वाभाविकता का परिणाम है। वहीं किन्नर वर्ग द्वारा प्रयोग किए गए बजारू शब्द भी उनके परिवेश को ही स्पष्ट करते हैं। जैसे– लौंडा नाच, तगड़ी, फटीचर, सितमगर, रजा मुराद, पिल्लों की अंटी, आदि। लेखिका ने उपन्यास का अन्त नई शैली में किया है, वे लिखती हैं– ''प्रिय पाठकों, अत्यंत पीड़ा और खेद के साथ मैं आपको एक साथ दो दुखद समाचार पढ़वाना चाहती हूँ, ... कृपया आज यानी 27.12.2011 का टाइम्स ऑफ इंडिया उठा ले।''

समाचार एक में 'एक स्वर्गवासी माँ का माफीनामा, अपने किन्नर बेटे से घर वापसी की अपील।' माँ ने लिखा था कि मैं वंदनाबेन शाह सार्वजनिक रूप से घोषणा करती हूँ कि उन्होंने मझले बेटे विनोद शाह, जिसमें लिंग दोष होने के कारण बरसों पहले जबरन किन्नर चंपाबाई को सौंपकर दुर्घटना में उसकी मृत्यु होने का नाटक रचा था, लोकापवाद के भय से, उस भूल का परिष्करण करना चाहती हूँ।' वह विनोद से प्रार्थना करती है कि वह अपनी माँ को इस अक्षम्य अपराध के लिए क्षमा कर अपने घर वापस लौट आए। अपनी अधूरी शिक्षा पूरी कर, अपनी माँ का स्वप्नपूर्ण करे। वह यह भी जानकारी देती है कि उसके पिता हरीन्द्र शाह ने वसीयत में अपनी संपूर्ण संपत्ति में उत्तराधिकार तीनों बेटों–

सिद्धार्थ, विनोद एवं मंजुल को बराबर का हिस्सेदार बनाया है। माँ ने यह भी इच्छा जाहिर की, कि उसके शव को तबतक शवगृह में रखा जाए जब तक विनोद क्रियाकर्म के लिए न पहुँचे। वहीं दूसरे समाचार में एक किन्नर की हत्या का जिक्र किया गया है जो स्पष्ट रूप से विनोद की हत्या की तरफ संकेत करता है। इन दो समाचारों के साथ उपन्यास का अन्त एक नया प्रयोग है लेकिन अचानक समाचारों की संरचना पाठक को कुछ अटपटी–सी भी लगती है।

## 15.5 सारांश

अतः कहा जा सकता है कि सत्रह पत्रों के माध्यम से लगभग पाँच महीने की यह कथा मानो किन्नर समुदाय की पूरी जीवन गाथा कहती है। जिसमें भावुकता भी है, व्यंग्य भी हैं, व्यथा भी है, अनुमान भी और प्रश्न भी हैं। इन सभी के माध्यम से उपन्यास विस्तृत आकार लेता है। शिल्प की दृष्टि से अनूठी कृति होते हुए भी संरचना की दृष्टि से बहुत अलग है। इस उपन्यास में पत्र लेखन की बहुत पुरानी शैली को अपनाया गया है किन्तु यह इसकी सबसे बड़ी कमी भी बनी है क्योंकि कथा के विस्तार और व्यापक आयाम को सही से नहीं समेटा जा सका है। चरित्रों का विकास भी पूर्ण रूप से नहीं होता। कारण यह है कि इसमें मात्र विनोद के ही पत्रों का ब्यौरा है 'बा' के पत्र नहीं हैं। हालाँकि विनोद के पत्रों में बा के पत्रों का उल्लेख हुआ है किन्तु इससे शैली और भी जटिल बन जाती है क्योंकि 'बा' के पत्रों की जानकारी भी विनोद को ही अपने पत्रों में देनी पड़ रही है। विनोद अकेला ही एकालाप कर रहा है जिससे यह भी लगता है कि ये पत्र किसी पुत्र ने माँ को न लिखकर पाठकों के लिए ही लिखे हैं तभी ब्यौरे इतने विस्तार से खींचे जा रहे हैं। इस शैली की भी अपनी सीमाएँ हैं जो टूटती हुई प्रतीत होती हैं। साथ ही उपसंहार के रूप में समाचार–पत्रों का चित्रण यहाँ एक ओर नया प्रयोग है वहीं उपन्यास में जबरदस्ती थोपे हुए भी लगते हैं। फिर भी कथ्य की नवीनता उपन्यास को इन सभी दोषों से उबार लेती है।

## 15.6 कठिन शब्द

1. संरचना
2. किन्नर
3. जननांग
4. कलेवर
5. स्त्रैण
6. वीभत्स
7. औचित्य
8. निकृष्टतम

9. बहिष्कृत

10. एकालाप

## 15.7 अभ्यासार्थ प्रश्न

**प्र1) आलोच्य उपन्यास के परिप्रेक्ष्य में किन्नर जीवन पर प्रकाश डालें?**

उ0 _____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

**प्र2) 'नाला सोपारा' के कथ्य का विश्लेषण करें।**

उ0 _____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

**प्र3) 'नाला सोपारा' उपन्यास के शिल्प पर प्रकाश डालें।**

उ0 _____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

**प्र4) 'नाला सोपारा' की पत्रात्मक शैली पर चर्चा कीजिए।**

उ0 _____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

## 15.8 सन्दर्भ ग्रन्थ/पुस्तकें


1. हिन्दी उपन्यासो में किन्नर विमर्श – डॉ. मधु खराटे
2. हिन्दी उपन्यासों के आइने में थर्ड जेंडर – डॉ. विजेंद्र प्रताप सिंह
3. थर्ड जेंडर के संघर्ष का यथार्थ – सं. डॉ. शगुफ़ता नियाज़


******

# 'नाला सोपारा' के चरित्र

**16.0 रूपरेखा**

**16.1 उद्देश्य**

**16.2 प्रस्तावना**

**16.3 'नाला सोपारा' के चरित्र**

**16.3.1 प्रमुख पात्रों का चरित्र–चित्रण**

**16.3.2 गौण पात्रों का चरित्र–चित्रण**

**16.4 सारांश**

**16.5 कठिन शब्द**

**16.6 अभ्यासार्थ प्रश्न**

**16.7 सन्दर्भ ग्रन्थ/पुस्तकें**

## 16.1 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ के अध्ययनोपरान्त आप 'नाला सोपारा' उपन्यास के पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं से अवगत हो सकेंगे।

## 16.2 प्रस्तावना

श्रेष्ठ रचना का श्रेय उसके चरित्र निर्माण को जाता है। चरित्र के माध्यम से ही साहित्यकार मानव–मन की प्रवृत्तियों को उद्घाटित करता है। चरित्र कथा को विस्तार देते हैं क्योंकि उनके माध्यम से घटित घटनाएँ एवं उद्घाटित

भाव–विचार एक ओर यहाँ उसके चरित्र के गुण व दोष को हमारे सामने लाते हैं वहीं दूसरी ओर कथा को विस्तार देकर मुख्य उद्देश्य की पूर्ति भी करते हैं। इसलिए चरित्र के बिना कथा सम्भव नहीं। कथा में व्यक्त पात्रों की चारित्रिक विशेषताएँ ही रचना को उत्कृष्ट बनाती हैं। पात्रों के जीवन के उतार–चढ़ाव से ही पाठक के मनमस्तिष्क की रोचकता प्रभावित होती है। चित्रा मुद्गल कृत 'नाला सोपारा' उपन्यास भी उत्कृष्ट चरित्र निर्माण के कारण ही श्रेष्ठ रचना बन पाई है। इस कृति को साहित्य अकादमी पुरस्कार मिलना इसकी श्रेष्ठता को ही प्रदर्शित करता है।

## 16.3 'नाला सोपारा' के चरित्र

'पोस्ट बॉक्स नं. 203, नाला सोपारा' उपन्यास का केन्द्रीय पात्र विनोद है क्योंकि सम्पूर्ण उपन्यास की कथा विनोद के संघर्ष को ही व्यक्त करती है। चूँकि इस उपन्यास की पूर्ण कथा विनोद द्वारा अपनी 'बा' को लिखे गए पत्रों द्वारा व्यक्त हुई है इसलिए इस उपन्यास के प्रमुख पात्र– 'विनोद' और 'बा' हैं। इनके अतिरिक्त हरीन्द्र, सिद्धार्थ, ज्योत्सना, पूनम, विधायक, तिवारी आदि इस उपन्यास के गौण पात्र हैं जो विनोद के जीवन से संबंधित हैं। कुछ पात्र उसके जीवन संघर्ष के साथ संघर्ष कर रहे हैं तो कुछ उसके संघर्ष को और बढ़ा रहे हैं। इन सभी पात्रों का चित्रण कर लेखिका ने किन्नर वर्ग की व्यथा को व्यक्त करते हुए समाज में उनकी स्थिति सुधारने के समाधान प्रस्तुत किए हैं। इसलिए इन पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं पर दृष्टिपात करना आवश्यक है।

### 16.3.1 प्रमुख पात्रों का चरित्र–चित्रण

**विनोद :** विनोद उर्फ बिन्नी उर्फ बिमली 'नाला सोपारा' उपन्यास का प्रमुख पात्र है जो एक सशक्त रूप में हमारे सामने आता है। विनोद के चरित्र को उभारने वाली निम्नलिखित विशेषताएँ हैं–

**लिंग दोष :** विनोद मुम्बई के एक सम्पन्न परिवार में जन्मा जननांग विकृति का व्यक्ति है जो बचपन में तो सामान्य बच्चों जैसा बालोचित कर्त्तव्यों, खेलकूद तथा पढ़ाई में होनहार होता है किन्तु समय के साथ उसकी आंतरिक संरचना में प्राकृतिक बदलाव आता है जिससे उसे अपने असामान्य होने का बोध होता है। परिवार वाले चौदह वर्ष तक तो उसे किन्नर समुदाय से छिपाकर रखते हैं लेकिन अधिक देर वे इस सच्चाई को छिपाकर नहीं रख पाते। किन्नर समुदाय की धमकी के कारण लोकलाज के भय से वह विनोद को इस समुदाय को सौंपने हेतु विवश हो जाते हैं और विनोद को इस प्राकृतिक दोष के कारण अपने परिवार से अलग रहने की सज़ा भुगतनी पड़ती है। वह किन्नर जीवन को नरक मानता है इसलिए वह अपनी बा से प्रश्न भी करता है– ''तूने, मेरी बा, तूने और पप्पा ने मिलकर मुझे कसाइयों के हाथ मासूम बकरी सा सौंप दिया। मेरी सुरक्षा के लिए कोई कानूनी कारवाई क्यों नहीं की ?... जिस नरक में तूने और पप्पा ने धकेला है मुझे, वह एक अन्धा कुआं है जिसमें सिर्फ सांप–बिच्छू रहते हैं। सांप–बिच्छू बनकर वह पैदा नहीं हुए होंगे। बस, इस कुएं ने उन्हें आदमी नहीं रहने दिया।'' विनोद का उक्त कथन किन्नर जीवन के त्रासद अनुभव को हमारे सामने लाता है।

**स्वाभिमानी :** विनोद स्वाभिमानी किन्नर है। हिजड़ा समुदाय में स्त्रैण गुणों के अनुसार आचरण किया जाता है लेकिन विनोद पुरुष लक्षण एवं प्रवृत्ति वाला हिजड़ा है और वह इसी पहचान के साथ अपने अस्तित्व को बनाए रखना चाहता है। इस समुदाय द्वारा उसे स्त्रैण गुणों को अपनाने के लिए प्रताड़ित किया जाता है किन्तु वह सब सहन कर लेता है, पर स्त्रैण गुणों अनुसार आचरण नहीं करता। वह अपनी बा से कहता है, "उनके लात घूसे, थप्पड़ और बातों में गर्म तेल–सी टपकती किसी भी संबंध को न बख्शने वाली अश्लील गालियों के बावजूद न मैं मटक–मटक कर ताली पीटने को राजी हुआ, न सलमे–सितारे वाली साड़ियाँ लपेटकर लिपिस्टिक लगा कानों में बुंदे लटकाने को ..." इस प्रकार वह अपनी पहचान को बचाकर अपने स्वाभिमान की भी रक्षा करता है। वह नहीं चाहता था कि लोग उसकी कमी के कारण उस पर दया करें। यही कारण है कि विधायक के यहाँ नौकरी करने पर जब उसे आवश्यक सुविधाओं के नाम पर एक कीमती मोबाइल, लैपटाप और ऐसी ही कुछ अन्य चीज़ें मुहैया कराई जाती हैं तो वह इसी शर्त पर सब वस्तुएं स्वीकार करता है कि इनकी राशि उसके वेतन से काटी जाए। विनोद का ऐसा व्यवहार उसके स्वाभिमानी होने का ही परिचायक है।

**कर्मठ/मेहनती :** विनोद अपनी शारीरिक विकृति को अपनी कमज़ोरी नहीं मानता। वह मेहनत पर विश्वास करता है क्योंकि उसका मानना है कि जननांग विकलांगता बहुत बड़ा दोष है किन्तु यह ऐसी भी कोई विकलांगता नहीं है कि व्यक्ति अपनी मेहनत की रोटी इज्जत से न कमा सके। अपनी इसी सोच के कारण वह तुलसीबाई के हिजड़ा डेरे पर रहते हुए भी फरीदाबाद की उमंग सोसाइटी में रोज सुबह गाड़ियाँ धोने का काम करता है। उसके इसी कर्मठ व्यक्तित्व को देखकर स्थानीय विधायक उसे कम्प्यूटर संचालन का कोर्स करवाता है तथा अपने कार्यालय में नौकरी भी देता है। अपनी अधूरी पढ़ाई को भी वह इग्नू के माध्यम से पूरा करने में तत्पर दिखता है क्योंकि वह पढ़ाई पूरी कर अपनी अलग पहचान बनाना चाहता है। यह उसकी कर्मठता का ही परिणाम है कि वह स्त्रैण गुणों को अपनाकर दूसरों की अनुकंपा पर न जीकर, अपनी मेहनत के बल पर जीवन निर्वाह करता है। वह पत्र में बा को लिखता है, "कोशिश में हूँ बा। उनसे छिपकर कोई बड़ा काम सीख सकूँ ताकि किसी भी रूप में उन पर निर्भर न रहूँ। अधूरी शिक्षा आड़े आ जाती है। गाड़ियाँ मजबूरी में धोता हूँ। कहीं और भाग सकता नहीं।" विनोद की कर्मठता हर परिस्थिति में हार न मानने को प्रेरित करती है।

**कर्त्तव्यनिष्ठ :** विनोद चाहे कितनी भी विपरीत परिस्थितियों में रहा हो लेकिन उसने अपने कर्त्तव्य से कभी मुँह नहीं मोड़ा। हिजड़े का पारम्परिक जीवन चाहे वह स्वीकार नहीं कर पाता लेकिन उनके साथ रहते हुए वह उस डेरे के प्रति अपने कर्त्तव्यों का पालन भी करता है। उसका कहना है कि "उनका अन्न खाता हूँ तो उनके कुछ महत्वपर्ण काम मैंने अपने जिम्मे ले लिए हैं। सरकारी, गैर सरकारी अस्पतालों के जचकी वार्डों के चक्कर लगा नये जन्में बच्चों के घर–घाट के अते–पते नोट कर लाता हूँ ताकि वह उनसे बधावा उगाहने की रस्म पूरी कर सकें। हारी–बीमारी में अस्पताल लेकर दौड़ पड़ता है।" इसके साथ ही वह डेरे में रहने वाले सभी किन्नरों के खाते भी डाकखाने में जाकर खुलवा देता है। यह सब कार्य वह अपना कर्त्तव्य समझकर करता है जो उसके कर्त्तव्यनिष्ठ होने का स्पष्ट उद्धाहरण है।

**परिवार–स्नेही :** परिवार द्वारा त्यागे जाने पर भी विनोद परिवार से पूर्ण रूप से जुड़ा रहता है। अपनी माँ से उसे इतना स्नेह है कि वह माँ के प्रत्येक सुख–दुख से स्वयं को जुड़ा हुआ महसूस करता है। पत्र में वह लिखता है, ''तेरे पांव अब भी सूजते होंगे न बा। मैं उनकी उंगलियों को कैसे चटखाऊं। कैसे दूर करूं उनकी थकान। थककर डबल रोटी से सूज जाने वाले तेरे उन पांवों को मैं चूमना चाहता हूं। उनकी टीसें हर लेना चाहता हूं। उन्हें छाती से लगाकर सोना चाहता हूं।'' विनोद का उक्त कथन स्पष्ट करता है कि माँ से अलग रहने पर भी उसे उनके संसर्ग की अभिलाषा है। वह माँ को भगवान के समान मानता है इसलिए जब उसकी बा उसे कहती है कि मायूस होने पर तू ध्यान लगाया कर, तब वह कहता है, ''बा, मैंने वह कोशिश शुरू कर दी है। रोज नहाने के बाद मैं ध्यानमुद्रा में बैठ जाता हूं पर विचित्र है बा, ध्यान में तू आ जाती है– तेरे कृष्ण नहीं।'' भगवान के स्थान पर बा का दिखाई देना उसके स्नेह को प्रकट करता है। वह प्रत्येक बात पत्र के माध्यम से अपनी बा को बताता है। उसके मन में गहरा विश्वास है कि इस संसार में केवल उसकी माँ ही अपनी है, बाकी सब रिश्ते तो स्वार्थ पर टिके हैं। गहन अंधकार एवं निर्णायक स्थिति में भी वह माँ से राय लेना नहीं भूलता। माँ की गोद के बिना तो वह स्वयं को अधूरा मानता है। माता–पिता के प्रेम और परिवार की आत्मीय ऊष्मा से अचानक कटकर, चौदह वर्ष की वयः संधि पर, हिजड़ों के पूरी तरह अपरिचित और भिन्न संसार में विनोद का आगमन उसके लिए एक त्रासद अनुभव था किन्तु इस त्रासद अनुभव के उपरान्त भी वह परिवार के सदस्यों की चिंता करना नहीं छोड़ता। वह माँ से अनुरोध करता है कि वह उसे रोज फोन करने की अनुमति दे, ताकि वह परिवार के विषय में जान सके। उसे परिवार के प्रत्येक सदस्य की चिंता होती है। बड़े भाई का बा के साथ किया गया अभद्र व्यवहार उसे व्यथित करता है। गर्भवती भाभी तथा बीमार पिता की भी उसे चिंता रहती है। अपनी बा से उसका यह कहना– ''पप्पा का ब्लड प्रेशर नापती रहती है न, बा! ... तुझे और पप्पा को सीढ़ियां तो नहीं चढ़नी पड़तीं। कालबा देवी वाले घर की तरह लिफ्ट है न बिल्डिंग में। लिफ्ट न हो तो लिफ्ट वाला घर ले ले। पप्पा को पेसमेकर लगा है न? मोबाइल फोन इस्तेमाल करना भी ऐसे में मना है, लेकर तो नहीं दे दिया उनको।'' विनोद की पिता के प्रति चिंता एवं स्नेह को प्रदर्शित करता है जो इस बात का प्रमाण है कि स्थान की दूरी भी विनोद के स्नेह को कम नहीं कर पाई है।

**चेतनशील :** विनोद एक ऐसा चेतनशील प्राणी है जो केवल अपने जीवन को ही अलग दिशा नहीं देना चाहता बल्कि अपने सम्पूर्ण समुदाय की सामाजिक स्थिति को परिवर्तित करने की कामना रखता है। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए सर्वप्रथम वह शिक्षित होना चाहता है और अन्य को भी शिक्षित होने की प्रेरणा देता है क्योंकि उसका मानना है कि ''पढ़ाई ही हमारी मुक्ति का रास्ता है। कोई रास्ता ही नहीं छोड़ा गया है हमारे लिए।'' वह जननांग दोषी समाज की विसंगतियों और सीमित विकल्पों से भली–भाँति परिचित है, इसके बावजूद भी वह उनकी स्थिति में परिवर्तन की आकांक्षा रखता है। वह विरासत में मिले नरक को अभिशाप के रूप में न स्वीकारते हुए इससे मुक्ति का मार्ग खोजना चाहता है और इसके लिए किन्नर समुदाय व समाज की मानसिकता में बदलाव को आवश्यक मानता है। यह उसकी चेतनशील प्रवृत्ति ही है कि जब विधायक द्वारा उसे किन्नर समुदाय के सम्मुख आने का अवसर मिलता है तो वह विधायक की इच्छानुसार इस समुदाय को वोट बैंक की रणनीति का शिकार नहीं बनाता बल्कि इस अवसर को उनमें

चेतना का संचार करने, समाज की मानसिकता बदलने तथा सरकार के समक्ष इनके अस्तित्व संकट को सामने लाने में प्रयोग करता है। वह इस समुदाय में आत्मविश्वास एवं स्वाभिमान का संचार करते हुए कहता है– ''....शपथ लीजिए यहां से लौटकर आप किसी लिंगदोषी नवजात बच्चे–बच्ची को, किशोर–किशोरी को, युवक–युवती को जबरन उसके माात–पिता से अलग करने का पाप नहीं करेंगे... जलालत का नरक भोग कुछ नहीं सीखे आप?... इस अवमानना को झेलने से इंकार कीजिए। कुली बनिए। मिस्त्री बनिए, ईंट–गारा ढोइए, जो चाहे, सो कीजिए, पाएंगे मेहनत के कौर की तृप्ति।... आरक्षण निदान नहीं है। आत्मचेतना बुनियादी अधिकारों की मांग का पहला पायदान है।'' वह समाज से अपील करता है कि प्रत्येक लिंग दोषी संतान के परिवारवाले अपनी संतान का त्याग न करें क्योंकि कन्याभ्रूण हत्या से कम दंडनीय नहीं है जननांग दोषी संतान का त्याग। इन परिवारों से वह कामना करता है कि वे अपनी संतान की घर वापसी के लिए प्रयास करें। वह सरकार से भी यही माँग करता है कि वह ऐसे कानून बनाए जिससे अभिभावक बहिष्कृत बच्चों को अपने साथ रखें, माता–पिता में चेतना का निर्माण करे ताकि भविष्य में कोई भी लोकापवाद के भय से लिंग दोषी संतान को निष्कासित न करे। विनोद की यही इच्छा है कि तृतीय प्रकृति के तहत गिने जाने वाले जननांग दोषी समाज के हाशियाकृति, वंचित लोग अन्य नागरिकों की तरह पढ़े–लिखे और समाज की मुख्यधारा का हिस्सा बनें। उन्हें अदर्स की श्रेणी न देकर आरक्षित अथवा अनारक्षित श्रेणी में उनके जन्म के अनुरूप पहचान प्रदान की जाए। विनोद को इनका ताली पीट–पीटकर भीख माँगना स्वीकार्य नहीं, इसलिए वह इनमें चेतना द्वारा इनके आत्मसम्मान को जागृत करना चाहता है।

**प्रेमी** : प्रत्येक किन्नर भीतर से आत्मिक, मानसिक व अनुभूति के स्तर पर या तो स्त्री होता है या पुरुष। विनोद पुरुष प्रवृत्ति का है और यह उसके भीतर का पुरुष ही है जो पूनम जोशी के प्रति आसक्त होता है। वह उससे आत्मिक जुड़ाव महसूस करता है। जब वह आस–पास नहीं होती तब विनोद को उसकी कमी खलती है। इसी के साथ उसे बचपन की दोस्त ज्योत्सना की याद भी बराबर आती रहती है। अपनी माँ से अक्सर पत्र में वह ज्योत्सना के बारे में पूछता है, यहाँ तक कि वह माँ से यह भी कह देता है कि– ''...मैं कुछ बन जाता तो उससे ब्याह जरूर करता। सब कुछ बता देता उसे। कह देता, तू मुझसे फेरे भर ले ले। अपनी इच्छाएँ जीने के लिए तू स्वतंत्र है। बच्चा हम गोद ले लेंगे। गोद नहीं लेना चाहेगी तो जिससे मर्जी हो, बच्चा पैदा कर ले। खुशी–खुशी मैं उसे अपना नाम दूंगा। वे सारे सुख दूंगा जो एक बाप से औलाद उम्मीद करती है।'' विनोद की यह बात उसकी प्रगतिवादी सोच को दर्शाती है। उसके भीतर छिपी प्रेम भावना कहीं–न–कहीं यह संकेत भी देती है कि सदियों से चली आ रही हमारी सामाजिक संरचना में बदलाव होना चाहिए। दूसरा विनोद का प्रेम आत्मिक प्रेम को प्रकट करता है।

अतः कहा जा सकता है कि विनोद अपने कष्टों और तकलीफों का रोना रोकर समाज से दया–अनुकंपा की याचना नहीं करता। उसका चरित्र इतना उदात्त है कि वह केवल अपने पैरों पर ही खड़ा होने के लिए संघर्ष नहीं करता अपितु राजनीति द्वारा उपलब्ध कराएगे अवसर का लाभ उठाकर अपनी हिजड़ा बिरादरी को भी ओढ़ी गई नियति से

मुक्त होने का प्रबोधन देने के लिए प्रयास करता है। उसका चरित्र वस्तु स्थिति को स्वीकारने के साथ जीने के प्रति आशान्वित रहते हुए जीवन संघर्ष को स्वीकारने की चुनौती है तथा अपने श्रम के बल पर जीने का संदेश है।

**'बा' (वंदना बेन शाह)** : वंदना बेन शाह विनोद की माँ है जिसके लिए उपन्यास में विनोद द्वारा 'बा' का सम्बोधन किया गया है। यूँ तो वह अपने तीनों बेटों से प्रेम करती है लेकिन विनोद के प्रति उसका स्नेह अधिक प्रदर्शित हुआ है जिसका कारण विनोद का लिंग दोषी होना है। बेटे की इस शारीरिक विकृत को वह समाज से छिपाने का हर सम्भव प्रयास करती है क्योंकि वह जानती है कि जिस दिन यह सच्चाई सबके समक्ष आएगी, उसी दिन उसे बेटे से दूर होना पड़ेगा। उसे आशा है कि भविष्य में विज्ञान इस विकृति का भी कोई न कोई उपाय निकाल लेगा। वह बेटे को भी यही आशा देकर उसके आत्मविश्वास को बढ़ाती है– ''बावला', तूने यह भी समझाया था और छोकरों से तू अलग है। यह मान लेने में ही तेरी भलाई है, न किसी से बराबरी कर, न अपनी इस कमी की उनसे कोई चर्चा। समाज को ऐसे लोगों की आदत नहीं है और वे आदत डालना भी नहीं चाहते पर मुझे विश्वास है, हमेशा ऐसी स्थिति नहीं रहने वाली। वक्त बदलेगा। वक्त के साथ नज़रिया बदलेगा।... हो सकता है, भविष्य में इस अधूरेपन का भी कोई इलाज निकल आए।...'' माँ द्वारा विनोद को दिए गए इस संदेश से जहाँ समाज की रुढ़िवादिता का आभास होता है वहीं लैंगिक अक्षमता से ग्रस्त पुत्र को माँ की सांत्वना जीवन के प्रति आशान्वित भी करती है।

चौदह वर्ष बाद जब हिजड़ों को उनके घर में जननांग विकृति बच्चे के होने की खबर मिलती है और वह उनके घर उसे ले जाने के लिए आते हैं तब विनोद के स्थान पर उसके छोटे भाई को दिखाकर उस समय तो वह विनोद को बचा लेते हैं लेकिन हिजड़ों की दमकी के भय से वंदना बेन विनोद की और भी चिंता करने लगती है। वह विनोद के साथ रोज़ स्कूल जाने लगी। जब तक कक्षाएँ चलती रहती वह वहीं बैठकर उसका इंतजार करती, किन्तु शाटिका के दर्द के कारण वह अधिक देर ऐसा न कर सकी और विनोद का स्कूल जाना बंद हो गया। साथ ही घर में उत्पन्न हुए विरोध तथा लोकलाज के भय से जब विनोद को हिजड़ों के साथ भेज दिया गया तब माँ के लिए पुत्र वियोग शाटिका के दर्द से भी अधिक पीड़ादायक होता है। परिवार में कोई विनोद से संबंध नहीं रखना चाहता था लेकिन 'बा', विनोद को पत्र व्यवहार के लिए अपना निजी पोस्ट बॉक्स नं. देती है। इसी के आधार पर उपन्यास का शीर्षक 'पोस्ट बॉक्स नं. 203– नाला सोपारा' रखा गया है। परिवार से छिपकर विनोद से पत्राचार कर उसके दुख–दर्द में शामिल होना एक माँ के प्रेम को ही प्रकट करता है क्योंकि माँ के लिए सभी संतानें समान होती हैं जिसका जीवंत उद्धारण 'बा' के माध्यम से प्रकट होता है।

'बा' विवश होकर विनोद को स्वयं से अलग तो करती है लेकिन उसके मन में इसका अपराधबोध है जो उसे सुख से जीने नहीं देता। उसे सदैव यह अनुभव होता है कि उसने अनजाने में या मजबूरी में कोई अपराध किया है। इसलिए वह विनोद को घर तो नहीं ला सकती लेकिन उसके प्रति जुड़ाव से अपने अपराध बोध को कुछ कम करने का प्रयास करती है। वह विनोद से कहती है– ''तू विश्वास कर सकता है तो अपनी बा पर विश्वास न डिगने दे। तू जिस नरक से गुज़र रहा है, वहाँ मैं तेरे साथ नहीं मगर तेरे उस नरक की हर गली मेरी छाती से होकर गुज़रती है।''

यह विश्वास आमने–सामने नहीं वरन् चिट्ठियों के माध्यम से हो रहा है पर व्यक्त आत्मीयता माँ के संवादों को जीवंत बनाती है। बेटे के वियोग में बा, उसकी पसंद का खाना भी नहीं बनाती है। विनोद को केसर वाला श्रीखंड प्रिय था लेकिन जब से विनोद उनसे बिछड़ा तब से बा ने घर में श्रीखण्ड नहीं बनाया। वह नये घर में भी विनोद के स्कूल बैग और पानी की बोतल को दरवाज़े के पीछे लटकाकर रखती है क्योंकि उसने केवल बेटे को खोया नहीं उसके अभाव को झेला भी है। वह उसकी वस्तुओं को स्पर्श कर उसके अभाव को महसूस करना चाहती है।

विनोद परिवार से अलग रहकर दुखी है इस बात को जानकर बा उसे संदेश भेजती है कि जब भी अनमना अनुभव हो या उदास हो जाए उस समय ध्यान मुद्रा में बैठकर कृष्ण का स्मरण किया कर, ध्यान में बाँसुरी के स्वर तुझे आनन्द प्रदान करेंगे। ऐसा कहकर बा, बेटे के अकेलेपन को दूर करने का प्रयास करती है। सामान्यतः माँ अपने विकलांग बच्चे के प्रति अत्यधिक ममत्व रखती है ऐसे में जिस बच्चे को घर से निष्कासित कर कसाइयों के हाथ सौंप दिया हो उसके प्रति तो वह और भी अधिक ममतापूर्ण हो जाती है। कभी–कभी माँ की ममता उसे साहसी एवं विद्रोही भी बना देती है। बा भी ऐसी ही माँ के रूप में चित्रित है। समाज और घरवालों के दबाव के आगे झुकी बा आखिर में विनोद को न केवल सार्वजनिक स्वीकृति देती है बल्कि पिता को भी अपने ट्रांसजेंडर बेटे को स्वीकार करने के लिए सहमत कर लेती है। उपन्यास के अंत में अखबार में बेटे को घर वापस बुलाने का आग्रह और संपत्ति में हिस्सा देने की बात माँ के सबल पक्ष को सामने लाती है।

अतः कहा जा सकता है कि बा उस ममतामयी माँ के रूप में चित्रित हुई है जो अपनी कोख की खातिर समाज का भी विद्रोह कर देती है। उसके लिए उसकी संतान चाहे शारीरिक विकृति का शिकार ही क्यों न हो, पर वह उसे अपने पास रखना चाहती है। साथ ही बा का चरित्र उस माँ को हमारे सामने लाता है जो अपनी संतान के वियोग को सह रही हो।

### 16.3.2 गौण पात्रों का चरित्र–चित्रण

प्रमुख पात्रों के अतिरिक्त उपन्यास में गौण पात्रों की संरचना भी हुई है जिनका वर्णन विनोद के पत्रों में हुआ है। वैसे तो बा का चरित्र भी विनोद के ही पत्रों में उभरता है किन्तु उसे प्रमुख पात्रों में इसलिए रखा गया है क्योंकि यह उपन्यास माँ–बेटे की परस्पर संवेदना को व्यक्त करता है। गौण पात्रों द्वारा कथा का विस्तार हुआ है लेकिन पत्रात्मक शैली के कारण उनके चरित्र पूर्ण रूप से उजागर नहीं हो पाए हैं। प्रमुख गौण पात्रों में पूनम, सिद्धार्थ और विधायक ही आते हैं। इनके चरित्रों के जो बिंदु उभरकर सामने आए हैं उन पर यहाँ दृष्टिपात किया गया है।

**1. सिद्धार्थ** : सिद्धार्थ, हरीन्द्र शाह तथा वंदना बेन शाह का बड़ा बेटा है जिसे विनोद मोटा भाई कहकर पुकारता है। सिद्धार्थ विनोद की तरह हिजड़ा नहीं, बल्कि पूर्ण पुरुष है। वह सामाजिक अपयश के कारण विनोद को घर में रखने के पक्ष में नहीं है और जब विनोद को हिजड़ों को सौंप दिया गया तो फिर वह परिवार को भी उससे कोई संबंध नहीं रखने देता। वह भाई की एक कमी के कारण उसके प्रति असंवेदनशील हो गया है। वह विनोद को 'काली परछाई'

मानता है जिसका साया वह अपने घर पर नहीं पड़ने देना चाहता। विनोद के प्रति बा के स्नेह को देखकर वह उनपर क्रोध करते हुए कहता है– ''अपनी कोख से एक ही औलादा पैदा की है बा तूने? हमें कहीं से पड़ा उठाकर लाई है जो तू ...'' सिद्धार्थ का यह कथन उसके स्वार्थ को प्रदर्शित करता है क्योंकि वह केवल अपने बारे में सोच रहा है। विनोद और माँ की पीड़ा का उसे अहसास ही नहीं है। पत्नी की गर्भावस्था के दौरान तो वह माँ के कमरे में टंगी विनोद की तस्वीर पर भी आपत्ति जताता है क्योंकि उसका मानना है कि पत्नी के गर्भस्थ शिशु पर इसका गलत प्रभाव पड़ेगा। विनोद के जननांग दोषी होने के कारण वह इतना भयभीत है कि अपनी पत्नी की जल की जाँच के दौरान शिशु के जननांग पर विशेष ध्यान देता है ताकि वह ठीक से विकसित हो रहा है या नहीं? क्योंकि थोड़ी भी शंका होने पर वह बच्चा गिरवा देना चाहता था। वह तो बा से भी बेशर्मी की सीमा लांघते हुए पूछता है कि तुम्हारे या पापा के खानदान में पहले भी क्या कोई जननांग दोषी पैदा हुआ है। वह तो बेटे के दायित्व से भी मुख मोड़कर पत्नी संग उसके मायके रहने लगता है। जबकि बड़ा बेटा होने के नाते अपने बीमार माता–पिता के प्रति भी उसके कुछ दायित्व होते हैं किन्तु वह उनकी चिंता किए बिना अपने जीवन में ही व्यस्त रहता है।

**2. विधायक :** विधायक का चरित्र आज के भ्रष्ट नेता की तस्वीर सामने लाता है। प्रायः नेता अपने राजनीतिक पद पर बने रहने के लिए जनता के समक्ष अच्छाई का ढोंग रचते हैं लेकिन भीतर से उसी जनता की भावनाओं से खेलकर अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं। विधायक भी अपनी कोठी में ठीक साढ़े नौ बजे जनता दरबार लगाता है ताकि जनता की शिकायतें सुनी जा सकें। वह विनोद की भी सहायता करता है। उसे कम्प्यूटर क्लास में दाखिला दिलवाकर अपने कार्यालय में नौकरी भी देता है। यहाँ तक तो एक अच्छे नेता का रूप सामने आता है लेकिन किन्नर आरक्षण को वोट बैंक के लिए प्रयोग करना, उनके वास्तविक चरित्र को उजागर करता है तथा किन्नर विनोद की सहायता के पीछे उनकी राजनीतिक मंशा का भी बोध होता है। विधायक कितना भी भला और अपने बचपन की देश–विभाजन संबंधी पृष्ठभूमि के कारण मानवीय तत्व से भरपूर हो आखिर वह आज की राजनीति का ही प्रतिनिधित्व करता है। वह किन्नर समुदाय के लिए आरक्षण का विशेष प्रावधान करके न सिर्फ अपना और अपनी पार्टी का श्रेय चाहता है बल्कि इसमें उसे भावी चुनाव में वोट–बैंक की संभावनायें भी दिखाई देती हैं। इसलिए इस समुदाय को अपने पक्ष में करने के लिए वह इसी समुदाय के व्यक्ति विनोद को चुनता है जो उसकी स्वार्थी सोच को सामने लाता है। पूनम के साथ उसके अमेरिका से लौटे भतीजे और उसके साथियों का क्रूर व निर्मम व्यवहार तथा विनोद से मतभेद होने पर उसकी हत्या का प्रसंग विधायक के वास्तविक रूप को उभारता है जो इस बात को स्पष्ट करता है कि नेता के लिए उसका अपने पद पर बने रहना आवश्यक है जिसके लिए वह जनता की भावनाओं के साथ मन चाहा स्वांग भी रच सकता है और समय आने पर अपनी राह में आने वाली निर्दोश जनता की हत्या भी।

**3. पूनम :** पूनम किन्नर दल की नटखट नचनियाँ है जो पूर्ण रूप से स्त्रैण हावभाव और गुणों से परिपूर्ण है। एक बार वह जो निश्चय कर लेती है तो फिर उसे पूरा करके ही छोड़ती है। वह पढ़ना–लिखना सीखना चाहती है। जब विनोद सभी के खाते खुलवाता है तो उस समय पूनम इस बात पर अड़ गयी कि जब तक वह अपना नाम ठीक

से लिखना नहीं सीखती तब तक अपना खाता नहीं खुलवाएगी क्योंकि वह अँगूठा लगाने के पक्ष में नहीं थी। अपनी इसी जिद्द के चलते वह अपना नाम लिखना सीख जाती है। पूनम के पास नृत्य प्रतिभा भी है। विनोद पूनम की नृत्य प्रतिभा के विषय में अपनी बा को बताते हुए कहता है– ''उसका पदसंचालन गजब का है। अंग–प्रत्यंग में चपलता है। भाव–अभिव्यक्ति में गहराई। फिरकियां लेती है तो तकली सी मिनटों घूमती रहती है। चुम्बकीय आकर्षण में बंधे हुए मुग्ध दर्शकों को महसूस होता है, वह किसी अल्हड़ नदी के प्रवाह में तैर रहे हैं, कोई भी नृत्यांगना उसकी नृत्य प्रतिभा को देख उसकी मुरीद हुए बिना नहीं रह सकती ....''

पूनम सकारात्मक सोच के साथ जीवन निर्वाह करती है। उसकी इसी सकारात्मकता के विषय में विनोद माँ से कहता है– ''मन ही मन मैं उसके सकारात्मक स्वभाव का मुरीद हूँ। उसमें स्त्रियोजित ठुनक है, तो परस्परता को निबाहने का विवेकसम्मत धैर्य भी।..... त्रिशंकु अवस्था में जीने से इन्कार कर उसने स्वयं अपना लिंग अपनी मर्ज़ी से निर्धारित कर लिया है। वह भूल रही है और शायद पूरी तरह भूल जाना चाहती है कि वह एक किन्नर है।'' विनोद के प्रोत्साहन से वह 'उमंग सोसायटी' में गाड़ियाँ धोने का काम भी करती है।

पूनम के मन में विनोद के लिए प्रेम भावना है। वह विनोद का पूर्ण ध्यान रखती है जब वह रोज सुबह 'उमंग सोसायटी' में गाड़ियाँ धोने के लिए जाता है तब पूनम जल्दी उठकर उसके लिए चाय बनाती है। वह स्त्रैण गुणों से पूर्ण है इसलिए बस, ट्रेन में पूनम के हाथ पसारते ही सवारियाँ उसे पैसे देने लगती हैं। इसी कारण उसके पास पैसे रहते हैं, जब विनोद उससे कुछ रुपये की मांग करता है तब वह कहती है– ''हाय मेरे सलमान, मेरा सब ले ले नामुराद, पैसे क्या चीज़ है।'' इतना ही नहीं विनोद की आगे पढ़ने की इच्छा को जानकर वह विनोद को आठ हज़ार रुपये हाथ में पकड़ा देती है। पूनम की पहचान से ही विनोद को विधायक की सहायता और उनके कार्यालय में नौकरी मिलती है। विनोद के रहने के लिए विधायक ने एक कमरे की व्यवस्था भी की थी। पूनम जब भी उसके पास जाती उसके कमरे को व्यवस्थित कर दिया करती थी। वह विनोद की हर आवश्यकता का ध्यान रखती है। विधायक के फार्म हाउस में नृत्य प्रस्तुत करने के पश्चात् जब विधायक का भतीजा अपने चार मित्रों के साथ मिलकर पूनम का शारीरिक शोषण करते हैं और अस्पताल पहुँचा दी जाती है तब भी वह स्वयं पर घटित हुए भयंकर हादसे को विस्मृत कर विनोद को बा के बीमार होने की सूचना देकर उसे बा से मिलने के लिए भेजती है। पूनम का विनोद के प्रति जो प्रेम है उसमें भावना, उदात्तता और मनोवैज्ञानिकता है। वास्तव में लेखिका ने विनोद के पश्चात् पूनम का ही विस्तृत एवं गहराई से चरित्र–चित्रण किया है। उसके जीवन की त्रासदमयी स्थितियाँ पाठक को संवेदनशील बनाकर उनकी आँखों को नम करती हैं।

## 16.4 सारांश

उपन्यास में पात्रों का चरित्र–चित्रण किन्नर विमर्श के परिप्रेक्ष्य में ही किया गया है। इन चरित्रों के माध्यम से लेखिका ने समाज के तीसरे समुदाय की उपेक्षा और तिरस्कार का चित्रण किया है जो इस सच्चाई को सामने लाता है कि जिस प्रकार समाज में बलात्कृता स्त्री किसी अपराध के बिना अपने अपमान एवं यातना के साथ परिवार व समाज

की उपेक्षा का दोहरा दण्ड भोगती है, वही स्थिति समाज में लिंग दोष से ग्रस्त बच्चों की होती है किंतु इनके जीवन में भी परिवर्तन हो सकता है यदि समाज, सरकार तथा स्वयं इस वर्ग की मानसिकता परिवर्तित हो जाए। विनोद का चरित्र इसी परिवर्तित मानसिकता को प्रदर्शित करता है।

## 16.5 कठिन शब्द

प्रवृत्तियाँ

रोचकता

बालोचित

अनुकंपा

वय:संधि

आसक्त

आशान्वित

शाटिका

निष्कासित

गर्भस्थ

## 16.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

**प्र1 प्रमुख पात्रों का चरित्र–चित्रण कीजिए।**

उ0 _____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

**प्र2)** **गौण पात्रों का चरित्र–चित्रण कीजिए।**

उ0 _____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

**प्र3)** **विनोद का चरित्र–चित्रण कीजिए।**

उ0 _____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

_____

**प्र4)** **बा के चरित्र को स्पष्ट करें।**

उ0 _____

_____

_____

_____

_____

**प्र5) पूनम के चरित्र पर प्रकाश डालें।**

उ0

**प्र6) सिद्धार्थ का चरित्र–चित्रण कीजिए।**

उ0

**प्र7) विधायक के परिप्रेक्ष्य में नेता का रूप स्पष्ट करें।**

उ0

_____

_____

_____

_____

_____

_____

## 16.7 सन्दर्भ ग्रन्थ/पुस्तकें


1. हिन्दी उपन्यासो में किन्नर विमर्श – डॉ. मधु खराटे
2. हिन्दी उपन्यासों के आइने में थर्ड जेंडर – डॉ. विजेंद्र प्रताप सिंह
3. थर्ड जेंडर के संघर्ष का यथार्थ – सं. डॉ. शगुफ़्ता नियाज़


******